हमारे चुने हुए आलोचना-ग्रन्थ

आधुनिक हिन्दी साहित्य मे समालोचना का विकास	डा० वेकट शर्मा	20 00
आधुनिक हिन्दी कविता मे शिल्प	डा० कैलाश वाजपेयी	12 00
आधुनिक हिन्दी-काव्य मे विरह-भावना	डा० मधुरमालती सिंह	15 00
सूफीमत और हिन्दी साहित्य	डा० विमलकुमार जैन	8 00
हिन्दी कविता मे युगान्तर	डा० सुधीन्द्र	8 00
काव्य के रूप	गुलाबराय	5 00
सिद्धान्त और अध्ययन	गुलाबराय	6 00
अध्ययन और आस्वाद (पुरस्कृत)	गुलाबराय	7 50
हिन्दी काव्य विमर्श	गुलाबराय	4 00
मन की बाते (पुरस्कृत)	गुलाबराय	3 50
साहित्य समीक्षा	गुलाबराय	2 00
साहित्य की समस्याएँ	शिवदानसिह चौहान	10 00
साहित्य, शिक्षा और सस्कृति	डा० राजेन्द्रप्रसाद	5 50
भारतीय शिक्षा	डा० राजेन्द्रप्रसाद	3 50
हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति	स्नातक सुमन	3 50
आधुनिक हिन्दी साहित्य	स्नातक सुमन	2 00
साहित्य विवेचन	सुमन मल्लिक	7 00
साहित्य विवेचन के सिद्धान्त	सुमन मल्लिक	3 50
महादेवी वर्मा	शचीरानी गुर्टू	6 50
सुमित्रानन्दन पत	शचीरानी गुर्टू	6 50
हिन्दी के आलोचक	शचीरानी गुर्टू	8 00
हिन्दी नाटककार	जयनाथ 'नलिन'	7 00
कहानी और कहानीकार	मोहनलाल जिज्ञासु	4 00
वैचारिकी	शचीरानी गुर्टू	10 00
आलोचक रामचन्द्र शुल्क	गुलाबराय	8 00
आलोचना के सिद्धान्त	व्यौहार राजेन्द्रसिह	4 00
महाकवि सूरदास	नन्ददुलारे वाजपेयी	4 00
प्रेमचन्द जीवन, कला और कृतित्व	हसराज रहबर	8 00
प्रसाद जीवन, कला और कृतित्व	महावीर अधिकारी	8 00
प्रगतिवाद की रूपरेखा	मन्मथनाथ गुप्त	7 00
सुमित्रानन्दन पन्त कला, काव्य और दर्शन	नीरज	3 00
साहित्य के स्वर	उदयशकर भट्ट	3 00
नाटककार उदयशकर भट्ट	मनोरमा शर्मा	4 00

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली–6

गोरखनाथ
और
उनका युग

आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की
उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

रांगेय राघव

1963
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6

GORAKHNATH AUR UNKA YUG
by
Rangeya Raghava
Rs
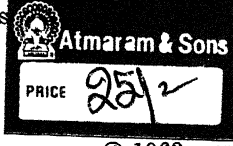
प्रकाशक
रामलाल पुरी, सचालक
आत्माराम एण्ड सस,
काश्मीरी गेट, दिल्ली-6

शाखाएँ
हौज खास, नई दिल्ली
माई हीरा गेट, जालन्धर
चौडा रास्ता, जयपुर
बेगमपुल रोड, मेरठ
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ
महानगर, लखनऊ-6
रामकोट, हैदराबाद
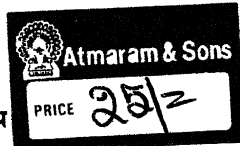
मूल्य
प्रथम सस्करण 1963

मुद्रक
राकेश प्रेस
दिल्ली

पूज्य गुरु

पं० बालेश्वरप्रसादजी शास्त्री

के

कर कमलों में

भूमिका

गोरखनाथ को समझने के लिए आवश्यक है कि उनके पूर्व और उत्तरकाल की एक स्पष्ट रेखा-चित्राकिनि परिस्थिति को अच्छी तरह समझ लिया जावे। हर्षवर्धन के बाद से लेकर मुसलमानो के आक्रमणो तक का समस्त समय या तो खण्ड रूप से देखा गया है या बहुत ही अस्पष्ट रूप से। वह समय कितना महत्त्व-पूर्ण था यह इतनी सरलता से नही कहा जा सकता। जिस प्रकार तुलसी के विषय मे जानकारी हासिल करने के लिए तत्कालीन राज्य व्यवस्था, राजनीति, धर्म तथा दर्शन, कला तथा अन्य विषयो का ज्ञान आवश्यक है, इसी प्रकार गोरक्ष के विषय मे भी आवश्यक हो जाता है। गोरक्ष चरित्र वास्तव मे प्राय उन 500 वर्षों का इतिहास है, या कहा जा सकता है कि उन 500 वर्षो का इतिहास गोरक्षनाथ के ही माध्यम से देखा जा सकता है। विद्वानो ने गोरक्षनाथ पर दृष्टिपात किया भी तो उन्हे उनका महत्त्वपूर्ण स्थान नही दिया, इसीसे इतिहास भी शृखला-बद्ध नही हो सका। मध्य युग के सधिकाल मे गोरक्ष को इतना महत्त्व देने का कारण है कि हमे उनके विषय मे प्राय न्यून-सी जानकारी है। शकर और रामानुज के विषय मे काफी ज्ञान है। इतिहास ने गोरख को भुला दिया। यह ठीक है या नही, इत्यादि प्रश्नो के विषय मे आगे विचार किया गया है। मैने यहाँ गोरक्ष के माध्यम से समस्त युग को नापने का विचार किया है अथवा यह कहना ठीक होगा कि समस्त युग के माध्यम से गोरख को नापने के कार्य का भार उठाया है। गोरख चरित्र के साथ मध्य युग का सधिकाल क्यो इस प्रकार सम्मिलित किया गया है इसका उत्तर समस्त पुस्तक मे बिखरा पडा है।

भारतीय इतिहास को यूरोपीय इतिहास की भाँति बर्बर, सामन्त तथा पूँजीवादी युग के रूप मे विभाजित नही किया जा सकता क्योकि भारत मे वैदिक काल से अब तक सामन्तवाद जीवित है। बहुधा ऐतिहासको से यह भूल हो रही है। यदि एक ओर धार्मिक दृष्टिपात होता है तो दूसरी ओर एकागी विद्वत्ता प्रदर्शन का प्रयत्न या फिर कही अतिराष्ट्रीयता सत्य को ढँकती है, तो कही विदेशी का विस्मय मात्र। प्रस्तुत पुस्तक इतिहास नही है। यह केवल एक विशेष युग की मुख्य विचारधाराओ का मनन है। उस काल के धार्मिक आन्दोलन वास्तव मे सामाजिक अथवा राजनैतिक आन्दोलन थे जिनकी नैतिकता दर्शन के सहारे चलती थी।

भारतीय सस्कृति जो इतनी बिखरी हुई दिखती है वह उसके राजाओ के इतिहास के कारण जो अभी तक इतिहासज्ञो की खोज का विषय रहा है।

भारतीय सस्कृति वास्तव मे इससे बहुत अधिक है। बहुत गहरी है। यह अनुभव होने पर जब भारतीय सस्कृति को देखा जाता है तो उसकी साधना का मूल-स्वर एक ही दिखाई देता है। यद्यपि यह विषय अभी तक धर्मप्रवण लोगो मे विवादास्पद है तथापि काफी स्पष्ट हो चुका है कि इस देश का इतिहास आर्यो से पहले प्रारम्भ होता है। इस दृष्टिकोण के सामने आते ही पर्दा आँखो के सामने से फट जाता है और पुस्तकालय मे बैठा विद्यार्थी जो सस्करणो के नाम रटता है या शब्दार्थ रटा करता है, यदि उसमे कुछ भी जिज्ञासा है तो इस ओर आकर्षित होता है कि वह अपने विषय को एक खण्ड मानकर न समझे, वरन् सबके सदर्भ मे रखकर उसे देखे। तब यह ज्ञात होता है कि भारतीय सस्कृति मे बहुत कुछ आर्येतर है और उसने भारतीय सस्कृति का अधिकाश निर्णीत या निर्माण किया है।

आवश्यक हो जाता है कि धर्मसाधना का विवेचन किया जाय और उसके प्रधान तत्वो को समझा जाय। पुस्तक मे इस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

उस समय क्योकि उत्पादन के साधनो मे भेद नही आए थे इसलिए मनुष्य को जीवन मे कोई नवीनता नही दिखी थी। वस्तुत सिद्धियो के चमत्कार की ओर आकर्षित होना इसी कारण उस युग मे अत्यन्त बल पकड गया था। उस युग की विशेषता को हमने सविस्तार देखा है।

पृष्ठभूमि मे तत्कालीन परिस्थितियो पर पहुँचे समाज की विचारधाराओ का विवरण दिया गया है, क्योकि गोरक्षनाथ का समय स्वय सदिग्ध है, इसलिए उनके पूर्ववर्त्तियो का काल निश्चित करना इनके काल निर्णय के बिना नही हो सकता। अत यह काम एक साथ किया गया है। गोरखनाथ के व्यक्तित्व मे उनके स्थानो का विस्तृत विवरण नही दिया गया है क्योकि आगे उनका सविस्तार वर्णन किया है। गोरखपुर के साथ गोरखनाम का विशेष सम्बन्ध प्रकट होता है किन्तु फिर भी लोगो ने उन्हे भुला दिया है। उनके विषय मे लोग गोरखधन्धा के अतिरिक्त बहुत कम जानते है। इसका कारण उनके विषय मे प्राप्त सामग्री का अभाव है। कुछ ग्रन्थ जिनका उनसे सम्बन्ध जोडा जाता है वे निश्चयपूर्वक उन्ही के नही कहे जा सकते। उनके सस्कृत ग्रन्थो मे (1) अमनस्क, (2) अमरौघ शासनम्, (3) अवधूत गीता, (4) गोरक्ष कल्प, (5) गोरक्ष कौमुदी, (6) गोरक्ष गीता, (7) गोरक्ष चिकित्सा, (8) गोरक्ष पचय, (9) गोरक्ष पद्धति, (10) गोरक्ष शतक, (11) गोरक्ष शास्त्र, (12) गोरक्ष सहिता, (13) चतुरशीत्यासन, (14) ज्ञान प्रकाश शतक, (15) ज्ञान शतक, (16) ज्ञानामृत योग, (17) नाडीज्ञान प्रदीपिका, (18) महार्थ मजरी, (19) योग चिन्तामणि, (20) योग मार्तंड, (21) योग बीज,

(22) योगशास्त्र, (23) योग सिद्धान्त पद्धति, (24) विवेक मार्तंड, (25) श्रीनाथ सूत्र, (26) सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, (27) हठयोग, (28) हठसहिता इत्यादि का उल्लेख मिलता है। इन ग्रन्थो मे अधिकाश अप्राप्य हे तथा सब उनके ही द्वारा रचित थे यह भी कहा नही जा सकता। इसके अतिरिक्त उनकी हिन्दी रचनाओ का सम्पादन डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित करवाया है। उसकी आलोचना हमने हिन्दी साहित्य प्रकरण मे की है।

गोरखनाथ पर जार्ज डब्ल्यू० ब्रिग्स तथा डा० मोहनसिह ने अग्रेजी मे पुस्तके लिखी है। अन्तिम पुस्तक अभी तक मेरे ज्ञान मे प० हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'नाथ सम्प्रदाय' है जो मेरे पास हस्तलिखित रूप मे है। मोहनसिह की पुस्तक प्रारम्भिक है किन्तु उसमे महत्त्वपूर्ण तथ्यो का प्रारम्भिक सकलन है। मोहनसिह ने अधिकाशत नाथ सम्प्रदाय को हिन्दी रचनाओ से देखा है। ब्रिग्स की पुस्तक मे तथ्यो की भरमार है। बहुत परिश्रम से लिखी गई है, किन्तु उसका दृष्टिकोण स्पष्ट ही एक जिज्ञासु मात्र का है, जिस पर बहुत कुछ अनुमान मात्र रह जाता है। उसका क्षेत्र काफी विस्तृत है। गोरखनाथी, सम्प्रदाय, मतभेद, स्थान, किंवदन्ती, साहित्य, इत्यादि काफी तथ्य सकलन है। प० हजारीप्रसाद ने नाथ-सम्प्रदाय को ऐतिहासिक तथा भारतीय धर्म साधना के दृष्टिकोण से देखा है और उनकी पुस्तक बहुत बडी विद्वत्ता की परिचायिका है।

इनके अतिरिक्त राहुल साकृत्यायन की वज्रयानी सूची और योग परम्परा मे प्राप्त किंवदन्तियाँ है। किन्तु इन सबके रहते हुए भी नाथ सम्प्रदाय पर जितना कम जाना जा सकता है यह इसी से ज्ञात होता है कि टेसीटरी के लेख से पीताम्बरदत्त बडथ्वाल तक विशेष उन्नति नही हुई है। ऐसी परिस्थिति मे विषय अत्यन्त कठिन हो जाता है।

विद्वानो ने गोरख को या तो हिन्दी के दृष्टिकोण से देखा है या फिर सस्कृत के। ऐसी कोई पुस्तक नही जिसमे दोनो दृष्टिकोणो को समान स्थान दिया गया है। गोरखनाथ वास्तव मे इस प्रकार बिखरे पडे है, उनका कोई स्थिर सम्बद्ध रूप नही है। इस प्रकार कडी जोडने की, ऐतिहासिक महत्त्व की, यह आवश्यकता मेरा ध्येय रही है। जोडने के लक्ष्य का यह अर्थ नही है कि तथ्यो के बाहर जाने का प्रयत्न किया गया हो। जब तक तथ्य अधिक प्राप्त नही होते तब तक विवशता है। गोरक्ष का इतिहास मे क्या स्थान है यह अकन नि सन्देह एक कठिन काम है जो सौभाग्य से मुझे करना पडा है, किन्तु जिसके योग्य सामर्थ्य होना एक व्यक्ति का नही, वरन् अनेक उद्भट विद्वानो का कार्य है। मैंने यहाँ रेखा-चित्र देने का प्रयास किया है। यह इस विराट

देश के 500 वर्षों का मनन है तभी इतनी दुरूहता का सामना करना पडा है। गोरखनाथ का युग भारतीय इतिहास की एक कडी है जो यदि हजारो वर्षों का परिणाम है तो उसका प्रभाव भी अनेक शताब्दियो का इतिहास है।

यक्ष प्रभाव को मैने काफी महत्त्व दिया है। यह भारतीय इतिहास का वह भूला हुआ विषय है जिसके बिना इतिहास समझा ही नही जा सकता। गोरख एक सधिकाल के व्यक्ति थे। सस्कृत और हिन्दी दोनो पक्षो मे उनको जॉचने की आवश्यकता थी इसीसे दोनो पर सविस्तार प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

योगी, दार्शनिक, धर्मनेता, पथ प्रवर्तक, हिन्दी भाषा के तत्सम प्रधान-रूप के प्रथम ग्रहण करने वाले गोरखनाथ नामक व्यक्ति को साधारण नेताओ की भाँति सोचकर भारतीय इतिहासकारो ने कुछ भी नही पाया है। अब इसे गम्भीरता से देखने पर लगता है कि यह व्यक्तित्व कितना कठिन, कितना युग प्रवर्तक और महान् था।

वह शक्ति का युग था। वुडराफ ने शक्ति के मातृ रूप मे अनेक तत्वो का सम्पादन किया है। उसमे सम्प्रदाय की धार्मिकता घुसी हुई है। अत कुछ ऐतिहासिक ढग से नही कहा जा सकता। फिर भी उनके कठिन प्रयत्नो से अनेक कठिनाइयाँ दूर हो जाती है। आद्या शक्ति की उपस्थिति से उन्होने देश-देशातरो की स्त्री-शक्ति-पूजा की विस्तृत तुलना की है :—

"आद्या शक्ति, गोधूलि देवता, अनेक पयोधरा जिसका आवरण कभी नही हटता, एलिआयसिस, काली, हेथोर, सैंबिला, इडा, त्रिपुर सुन्दरी, आयोनिक माता, शू की पत्नी तेफ जिसके द्वारा सृजन होता है, अफ्रोडाइट, अस्तरत जिसके उपवन कुजो मे बालीम थे, बेबिलोनिया की मिलिटा, बौद्ध तारा, मेक्सिको की इश, हेलेनिक ओसिया, पार्वती के समान विचरण करनेवाली अफ्रीका की सलम्बो, रोमन जूनो, जीवन विचार आदि की दीप्त स्वामिनी जिसका उत्सव अत्यन्त आनन्द से मनाया जाता था, मिश्री बस्त, असीरिया की माता सुस्कोथ, बेनाथ, उत्तरी फ्रिया, मूल प्रकृति, सैमिली, माया, इस्तर, देवताओ की सैतिक नीथ माता, कुण्डली, गुह्य महाभैरवी तथा अन्य · ।"

इस प्रकार हम देखते है कि आद्या शक्ति आयसिस, काली, हथोर, सैबिला, इडा, त्रिपुर सुन्दरी, आयोनिका मदर, तेफ, अस्तरत इत्यादि अनेक देवियाँ ससार के इतिहास मे पुज चुकी है। अधिकाश उन्ही जातियो मे स्त्री पूजा मिलती है जो आर्येतर थी और जिनकी सभ्यता बहुत प्राचीन हो चुकी थी। यह मुझे एक बहुत बडी शक्ति दिखाई देती है।

स्त्री-पूजा समाज और राजनीति की एक विशेष अवस्था मे प्राबल्य ग्रहण

करती है । इसका उदाहरण अंग्रेजी साम्राज्य के विषय मे एक अंग्रेज की ही उक्ति है ।

विमलानन्द स्वामी के नाम से टीका लिखकर अंग्रेजी मे अनुवाद करते हुए आर्थर एवेलान ने एक स्थान पर लिखा है .—

At the present tıme a measured use of wıne, flesh and so forth and a thorough respect for woman as for the Devata are partıcularly seen ın the cıvılızed socıety of the West Satısfied at thıs, the Mahadevı, who ıs the queen of queens has granted to the people of the West the lıght of scıence and sovereıgnty over the whole world पृ० 23 कर्पूरादिस्तोत्र ।

अर्थात् इस समय पश्चिम मे पचमकार प्रयुक्त है । मद्य, मास तथा स्त्री का सम्मान देवताओ के समान होने से पश्चिम के सभ्य समाज से महादेवी अत्यन्त प्रसन्न है । इसीसे उन्होने पश्चिम के लोगो को विज्ञान का आलोक और ससार पर अधिकार दिया है । हम यहाँ अधिकार के विषय मे बात करके महादेवी की कृपा के दूसरे पक्ष को नही दिखाना चाहते । स्थविर अगतिशील साम्राज्य को धर्मप्रवणता से देखने की यह प्रवृति हमारे आलोच्य काल की सबसे अधिक महत्त्व प्रगट करनेवाली अनुभूति है । याद रहे यह अंग्रेजी साम्राज्य पतनोन्मुख था । हम उसे गिरते हुए देख चुके है ।

तब गोरखनाथ को सकुचित रूप से देख लेनाँ सरल था । यही विद्वानो ने किया है । गोरखनाथ की बृहत्तर भारतीय साधना से तुलना करके उनको पहचानने का प्रयत्न नही किया गया था । मेरा विषय मात्र गोरखनाथ नही है । गोरखनाथ और उनका युग है । जिसे मैने निर्णीत करते समय भारतीय मध्य युग का सधिकाल कहा है । यहाँ इतिहासकारो की भाँति नाम गिनाने की चेष्टा नही की है । वरन भारतीय इतिहास की विशेषताओ पर विचार किया गया है । उस काल की अन्य विचारधाराओ से तुलना, वैष्णव, शैव, बौद्ध, जैन प्रभाव, इस्लाम तथा उच्च और निम्न जातियाँ, तत्कालीन राज-नीतिक, आर्थिक, धार्मिक, साँस्कृतिक, सामाजिक और दार्शनिक परिस्थितियाँ उनमे गोरक्ष उनसे गोरक्ष, और गोरक्ष से सब, इस साक्षेप दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न है ।

गोरक्ष को शकर के बराबर आसन पर देखकर विद्वानो से प्रार्थना है कि वे एकदम चौक नही उठे क्योकि तथ्यो ने इसी ओर मुझे पहुँचाया है । सबसे प्रधान तथ्य यह है कि गोरख जितने बडे व्यक्ति और योगी थे उतने बडे कवि न होने पर भी उनका हिन्दी साहित्य मे एक बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है जो कभी भुलाया नही जा सकता । विस्मय है, विद्वानो की दृष्टि उस ओर अभी तक

क्यो नही गई जबकि यह एक बहुत ही स्पष्ट बात है । गोरखनाथ का नाम कनफटा जोगियो के साथ जुडा हुआ है । वे जिसे शिष्य बनाते थे उसके कान फाडकर कुण्डल डाल देते थे । कबीर ने आगे इसका मजाक भी उडाया है, जब यह योगीरूप कच्चे सिद्धो के नाम से गिना जाने लगा था । किन्तु कनफटा मूर्तियाँ गोरखनाथ से पूर्व काल मे ही थी । इससे यही अनुमान होता है कि गोरख ने इस प्रथा को अपने सप्रदाय मे महत्त्व दिया, या वही छोटा सम्प्रदाय एक प्रभावशाली व्यक्ति को प्राप्त करके बहुत प्रसिद्ध हो गया ।

जो हो, योगी घरबारी और गृहस्थ भी होते है । जो योगी कान नही फडवाते वे औघड कहलाते है । योगियो की एक विशेष वेशभूपा है. जिसका आगे वर्णन किया गया है । ब्रिग्स और हजारीप्रसाद ने इसपर सविस्तार लिखा है । प० सुधाकर द्विवेदी ने जायसी की पदमावत का सपादन करते समय योगी वेश का वर्णन किया है और प्रत्येक योगी वेश की विशेषता का उल्लेख किया है । नि सदेह यह सज्जा एक अत्यन्त रोचक और आकर्षक रूप है ।

अब भी कनफटे योगी देश के भिन्न-भिन्न भागो मे फैले हुए है । अनेक जातियो पर उनका प्रभाव है । उनके अनेक स्थानो पर मठ है । यह सब पुस्तक मे वर्णित है । नाथ सप्रदाय को सिद्ध मत, सिद्ध मार्ग, योग मार्ग, अवधूत मत, अवधूत सप्रदाय आदि के नाम से भी पुकारा जाता था । नाथ शब्द मे 'ना' का अर्थ है अनादि रूप और 'थ' का अर्थ है (भुवनत्रय को) स्थापित करना 'ना० स०' । नाथ सप्रदाय के कनफटो को दर्शनी साधु भी कहा जाता । दर्शनियो मे जो बिलकुल नगे रहते है वे मद्य और मास पीते और खाते है । कान की मुद्रा से ही उन्हे यह नाम दिया गया है । यह मुद्रा धातु या हाथी दात की होती है । सोना भी काम मे आता है । मुद्राधारी 'कुण्डल' और 'दर्शन' दो नाम से ज्ञात है । दर्शन का सम्मान अधिक है । कुण्डल को पावित्री भी कहते है ।

नाथ सप्रदाय के विभिन्न योगियो ने विभिन्न मत चलाये हैं । कहा जाता है मत्स्येन्द्रनाथ ने चार सप्रदाय चलाये है—गोरखनाथी, पगल या अरजनगा (रावल), मीननाथ सिवनोर, पारसनाथ पूजा, अतिम दो जैन है । योगिसप्रदाया-विष्कृति के अनुसार गोरक्ष के अनेक शिष्य थे जिन्होने अपने सप्रदाय चलाये । जिन मे चर्पट उल्लेखनीय है । गृहस्थ योगियो से बयनजीवी जातियो—ताती, जुलाहे, गडरिये इत्यादि का अधिक सम्बन्ध पाया जाता है । जोगियो मे हिन्दू और मुसलमान दोनो होते है । आजकल वे दुनियादारी के काम करते हुए भी पाये जाते है । अधिकाश स्थानो पर हिन्दू योगियो को नीच जाति समझते है । उनके हाथ का नही खाते-पीते । ब्रिग्स और हजारीप्रसाद ने इस विषय पर विस्तार से लिखा है । हम आगे केवल इसका उल्लेख करेगे, क्योकि मेरा

ग्रनुमान है कि योगी सप्रदाय के विभिन्न भेद होते हुए भी मुख्य व्यक्ति गोरखनाथ है। ग्रत उन्ही के सम्बन्ध मे बहुत-सी बाते ग्राजाएँगी।

गोरखनाथ स्वय ग्रथगत ज्ञान मात्र प्राप्त करके सतोष कर लेनेवालो के विरुद्ध थे। वे साधना पथ पर चलनेवाले थे। वे उन क्रातिकारियो मे थे, जिन्होने ब्राह्मणवाद ग्रौर सामतवाद मे मनुष्य की बराबरी का दावा किया था। ग्रागे हम देखेगे कि वह क्राति किस प्रकार समाज मे पराजित हो गई किन्तु ग्रखाडो, साधु ग्रौर योगियो मे पलती रही।

मतो ग्रौर मप्रदायो की साधना के दृष्टिकोण से जाँच किये बिना वास्तव मे ग्रध्ययन उनके ग्रनुसार पूर्ण नही है। हम तर्क करते है, सब कुछ कहते-लिखते है, गोरखनाथ इन सबसे ग्रधिक दुरुह थे। वे बुद्धि को मानते है कि वह सर्वतोपरी है। भावना का कोई काम नही। किन्तु साधना को वे उससे भी बडा स्थान देते है। तब कहा जा सकता है कि ग्रभी तक गोरखनाथ को ऊपर ऊपर से देख लिया गया है।

इतिहास का युग-विशेष इस प्रकार साधना से परिलिप्त था यह क्या कम ग्राश्चर्य का विपय है। इस समय चीन का भी प्रभाव पडा था। तत्कालीन साधना मे क्या हेय था, क्या श्रेय, इसका वास्तविक निर्धारण तब हो सकता है जब उसी साधना के दृष्टिकोण से उसे परखा जाय। यह विषय विद्वानो के लिए ग्रत्यन्त रोचक ग्रौर गभीर सिद्ध हो सकता है। मैने उसके ग्रार्थिक, ग्रौर बाह्य स्वरूप से सामाजिक प्रयत्न को देखा है। कहाँ तक किससे ब्रह्मानद होता था, इसका कही भी ग्रनुभव नही किया है। ग्रत. व्यक्तिपक्ष से उसके हेय-श्रेय पर तनिक भी ननुनच नही की है। केवल सामाजिक पक्ष मे सापेक्ष दृष्टि से उसपर ग्रपने विचार प्रगट किये है। प्राचीन साधना उत्कृष्ट ही थी या निकृष्ट ही यह हमारे ग्रालोच्य विपय के ग्रतर्गत नही है। सभवत ब्रह्मानद प्राप्त करने वाला ग्रथ नही लिखता ग्रौर लिखता भी तो वही जैसे कि उस युग से चलकर ग्राज हमे प्राप्त हुए है। इसी रहस्य की भावना से ग्रसित युग हमारा ग्रालोच्य काल है, जिसके सबसे बडे नेता गोरखनाथ थे, जिनका प्रभाव समझना ग्रत्यत कठिन काम है। पूरनभगत, रसालू गूगा, भरथरी, गोपीचद, मैनावती, मत्स्येन्द्र, जालधर के सम्बन्ध की ग्रनेक किंवदतियो को मैंने नही लिया, केवल उनका ही उल्लेख किया है, जिनकी ग्रधिक ग्रावश्यकता थी। उस काल मे योगतत्र, वज्रयान, कालचक्रयान, शाक्त सप्रदाय भेद, शैव मत के विभिन्न भेद, कापालिक, रसेश्वरमत, त्रिपुर सप्रदाय, दत्तात्रेय, सहजिया सप्रदाय इत्यादि का महत्त्व था इसीसे इनका उल्लेख किया गया है। यही वास्तव मे उस काल का ग्रधेरा भाग है। चक्र, नाडी, पद्म, प्राणायाम, इत्यादि पारिभाषिक विस्तारो को सभाव्यरूप से ही देखा गया है, क्योकि यह ग्रपने ग्रापमे इतना महान् विषय

है जिसका कोई अत नही। समस्त साधना इन्ही पर तो केन्द्रित थी। गोरख इनसे सम्बद्ध होते हुए भी बृहत्तर भारतीय साधनाके निकट क्यो थे यह आगे वर्णित है।

इस युग मे बहुत कुछ ऐसा अद्भुत लगता है जिसे या तो साफ-साफ समझा नही जाता या फिर इस्लाम के सिर मढ दिया जाता है। पूर्ववर्त्तियो के अध्याय मे मैने उन कुछ 'क्रम विशेषो' का परिचय दिया है जिनके विषय मे विद्वानो ने कुछ नही कहा है। इस कडी को छोड देना ठीक नही मालूम देता।

'दर्शन और योग' के अध्याय मे मैने पहले गोरखनाथ से पूर्व आर्य-सामाजिक व्यवस्था मे स्वीकृत कुण्डलिनी-महत्त्व का परिचय दिया है। तदनन्तर ही नाथ सप्रदाय से सम्बन्धित कुण्डलिनी का उल्लेख है। जहाँ तक वेदान्त, साख्य इत्यादि के परिचय का प्रश्न है मैने केवल उसकी रूप-रेखा दी है। मेरा विशेष जोर इस ओर रहा है कि उसका सामाजिक रूप समझा जाय और इसी से शकर और रामानुज दोनो को लेकर उनकी गोरक्षनाथ के मत से तुलना की गई है।

'व्यक्ति' वाले अध्याय मे दत-कथाओ की भी प्रचुर सहायता ली गई है। वही तो, प्राप्त परम्पराएँ है। गोरखनाथ ऐतिहासिक व्यक्ति थे, इसके अतिरिक्त और कुछ भी विशेष नही मिलता और परम्पराओ मे से कुछ भी फटककर निकाल लेना क्या सहज है ?

नाथ सप्रदाय को भारतीय धार्मिक साधना की लम्बी यात्रा मे एक छोटी मजिल अथवा अग मान लेने से, यह आवश्यक है कि भूमिका मे ही उन मुख्य तथ्यो को उपस्थित कर दिया जाय, जिनको यथास्थान आगे तालिकाओ और सूचियो द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है। पुस्तक मे ऐसी तीन सूची है।

इस देश मे आर्यो के आने के पहले अनेक आर्येतर जातियाँ थी। उनमे मुख्य विभाजन करने पर दो प्रभाव स्पष्ट दिखाई देते है। एक, यक्ष जाति का प्रभाव। दूसरा, प्राय अन्य सभी जातियो की धार्मिक साधना का प्रभाव। इस परिस्थिति मे आर्य आए। अब इन तीन मे परस्पर जो भेद था वह इतिहास-निर्माण मे अपना काम करने लगा।

दार्शनिकता के क्षेत्र मे आर्यो मे मुख्य रूप से आनन्दवाद था। यक्षो मे विलासवाद का प्राधान्य मिलता है और शेष आर्येतरो मे दु खवाद का प्रभुत्व। इस विभाजन का आधार मैने प्रथम अध्याय मे विवेचना का विषय बनाया है। शक्ति की पूजा उस समय थी, परन्तु आर्यो मे वह पुरुष पराक्रम रूप मे मुख्य थी, तो यक्षो मे स्त्रीरूप मे मुख्य, और आर्येतरो मे पुरुष की ही शक्ति की उपासना थी, परन्तु यह आर्यो का 'पुरुष' नही था। यह नीरस था, भय

की स्वीकृति थी और उसी का अधिक प्राधान्य भी था। योग और तप प्रारम्भ मे आर्यो मे नही था। निश्चय से नही कहा जा सकता कि यक्षो मे यह था या नही, परन्तु आर्येतरो मे था इसमे अब कोई सन्देह नही है। प्रकृति की उपासना के क्षेत्र मे आर्य के लिए सरलता थी, स्वाभाविकता थी, और वह उससे एक मस्ती का भाव प्राप्त करता था। यक्षो मे उद्दीपन का काम करती हुई यह प्रकृति वासना को जागृत करती थी और आर्येतरो मे प्रकृति को रहस्य समझा जाता था। इस रहस्य मे भय की छाया थी और उससे भूत आदि की भी प्रधानता थी। उस समय इन तीनो जाति-समूहो मे अन्धविश्वास प्रचलित थे। सब कुछ देखकर आर्य विस्मय करता था। उसे अज्ञान का भय था। जिसे नही समझ पाते उसी से हमे एक अनजाना भय होता है। यक्षो मे जादू-टोना भी था, सिद्धि के भी प्रयत्न चलते थे। परन्तु आर्येतरो मे यह अधिक उग्र रूप मे था। वह भय सदैव एक अज्ञात रहस्य की ओर आकर्षित करने वाला था। और यही से अपने मे 'अपौरुषेय शक्ति' भरने के लिए जो उसने चमत्कारो की सिद्धि का प्रयत्न किया, वही आगे चलकर तन्त्र के रूप मे प्रकट हुआ।

इस देश मे जब तीनो जाति-समूह मिले और इनका एक-दूसरे के निकट ही रहना हुआ, तब सम्मिश्रण होना, एक पर दूसरे का प्रभाव पडना आवश्यक था। और यही हुआ भी, परन्तु रहस्य की खोज नही रुकी। एक ने दूसरे से लिया और दिया भी। परन्तु धार्मिक साधना की केवल आत्मा और मन तक ही सीमा होती तब तो और बात थी। जातियो का अपना रक्त गर्व, एक-दूसरे पर शासन करने की प्रवृत्ति, अपने विश्वासो को सर्वश्रेष्ठ समझने का अभिमान इत्यादि अनेक ऐसे तथ्य भी निरन्तर काम करते रहते हैं जो सामाजिक प्रभाव डालते है और वे प्रभाव अपने लिए दार्शनिक पृष्ठभूमि खोजने के लिए धर्म की आड लेते है।

जब आर्य प्रभाव भारत मे नही था, तब यहाँ के निवासियो के पारस्परिक भेद मुखर थे और उनका द्वन्द्व चलता था, इसका आभास मिलता है। प्रथम अध्याय मे इसकी ओर इगित किया गया है। परन्तु आर्यो के आने के बाद यह समाज मे दूसरे ही ढग का द्वन्द्व उपस्थित हुआ।

आर्यो ने अपनी एक अलग सामाजिक व्यवस्था बनाई। स्वाभाविक ही हुआ कि सब ने उसे स्वीकार नही किया। आर्य जातियाँ विजयिनी थी, उनको इसका सुयोग मिला कि वे अपने को औरो पर हावी करने का प्रयत्न करती। इसका सामाजिक रूप यह रहा कि यद्यपि आर्यो की भाषा पर यहाँ की भाषाओ का प्रभाव पड़ा, परन्तु अन्ततोगत्वा आर्य भाषा सब पर छा गई। रीति-रिवाज, रहन-सहन, सब मे हारे हुए लोगो का भी प्रभाव पडा।

परन्तु स्वय आर्य-सामाजिक व्यवस्था मे भी आन्तरिक विरोध पड गए थे, जैसे पहले आर्येतरो मे थे। अब उन सब का एक सिरे से विकास हुआ।

आर्य-सामाजिक व्यवस्था मे ब्राह्मण धर्म का प्रतीक आस्तिकवाद है। इसमे हमे ब्रह्म के सगुण तथा निर्गुण दोनो रूप प्राप्त है। वेद, उपनिषद्, शैव, वैष्णव, सभी इसमे मिलते है। कितनी जातियो के मिलन से यह रूप बने, कितना आदान-प्रदान हुआ उसे जानना अत्यन्त कठिन है। किस प्रकार इस निरन्तर विकास मे यह प्रयत्न कि अपने को औरो से कुछ सामजस्य स्थापित करके रखा जाय, चलता रहा, इतिहास का एक रोचक विषय है। दूसरी ओर क्षत्रिय और वैश्यो की अधिकार तृष्णा बढ रही थी। उपनिषद् काल मे वह खूब बढी थी, पर साख्य मे कुछ अलग हुई और 'नास्तिकवाद' (ब्राह्मण के शब्दो मे) बन बौद्ध, जैन आदि सप्रदायो के रूप मे फूट निकली। इन सब के आगे चलकर अनेक भेद हुए। इस सब को मैंने आर्य-सामाजिक व्यवस्था मे इसलिए रखा है कि यह परस्पर चलने वाला सघर्ष वस्तुत इतना व्यापक नही था, जितना समझा जाता है। इतिहास ही इसका साक्षी है। उधर आर्य-सामाजिक व्यवस्था के बाहर भी आस्तिकवाद और नास्तिकवाद का परस्पर सघर्ष चल रहा था और इनका भी आर्य-सामाजिक व्यवस्था पर बराबर प्रभाव पडता जा रहा था। व्रात्य, अघोर, काला मुख, कापालिक, तथा दूसरी ओर लोकायत इत्यादि थे। इनमे आस्तिक नास्तिक को अधर्म का स्रोत समझते थे। धीरे-धीरे इनके भी अनेक भेद हो गए।

ईस्वी छठी शताब्दी से हमारे सामने एक नया रूप उपस्थित होता है। तन्त्र, शक्ति पूजा, योग और विलासवाद का प्रभुत्व उस समय सब पर छा गया। यह क्या वस्तु थी, ऐसा क्यो हुआ, इसका आगे विस्तार से विवेचन किया गया है। इतना अब स्पष्ट हुआ, कि आर्य-सामाजिक व्यवस्था मे स्थित सम्प्रदाय, तथा दूसरी ओर उससे बाहर स्थित सम्प्रदाय सभी उसमे प्रभावित हुए। इस बीच मे बौद्धमत अपने नए रूपो, वज्रयान और काल-चक्रयान मे भी इसी से प्रभावित हो रहा था।

ब्राह्मण-द्वेष बहुत बढ गया था। दक्षिण से ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान हो रहा था। उस समय भारत मे इस्लाम की छाया गिरने लगी थी। बहुधा प्रश्न होता है कि जब भारत मे अनेक जातियाँ आई, और मिल गई, तब इस्लाम ही क्यो अलग रह गया। इसका आगे विवेचन किया गया है। परन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है यह जानना कि इतने विविध वैचित्र्यो के देश मे जहाँ नाना विश्वास तथा रीति-रिवाज थे, कैसे सब जातियो ने इस्लाम के प्रति एक ही रुख अख्तियार किया? बडी जाति हो, या छोटी, सब ने ही इस्लाम को कैसे छेक दिया?

यही गोरक्षनाथ को समझना आवश्यक है। यक्षवाद तो शाक्त उपासना थी जिसने आर्य-सामाजिक व्यवस्था के भीतर तथा बाहर बौद्धो पर प्रभाव डाला। इनके अतिरिक्त और मिले-जुले जो लोकायत, सौर, गाणपत्य, चीनाचार आदि सप्रदाय थे वे भी प्रभावित हुए। शिव तो आर्य-सामाजिक व्यवस्था के भीतर और बाहर दोनो जगह स्वीकृत थे, निस्सन्देह अपने भिन्न रूपो मे। बौद्धो मे अवलोकितेश्वर की उपासना थी।

आर्य चिन्तन का काश्मीर त्रिक् सप्रदाय, लोकायत सौर, गाणपत्य, चीनाचार तथा दोनो शिव और अवलोकितेश्वर और तत्कालीन कौल मार्ग, कापालिक मत सब ऐसे परस्पर मिले हुए है कि उनको अलग-अलग कर देना सहज नही है।

कुण्डलिनी, योग, चक्र, पद्म, नाडी, ज्ञान, बलि, तत्र, देवियो की उपासना, शक्ति पूजा, श्मशान का महत्त्व, सिद्धि के प्रयत्न और योनि पूजा का प्राधान्य मिलता है। स्त्री को अपनी साधना के क्षेत्र से बाहर रखने वाले भी कुछ मत अवश्य थे। इसी वन मे जालधर मिलते है। मार्कण्डेय का हठयोग गोरखनाथ के हठयोग का पूर्ववर्त्ती है, पर उसके विषय मे कुछ ज्ञात नही है तभी मैंने उसे अलग ही रखा है।

और यहाँ आकर दो मुख्य विभाजन हुए। सब का सार छनकर गोरखनाथ उठा, और उधर योग की प्राचीन धारा जो आर्यो मे पूर्णरूपेण स्वीकृत थी, वह पातजल योग दर्शन उसके सामने खडा था।

ब्राह्मण समाज पर छाने लगा था। अब्राह्मण समाज पराजित होता जाता था। ब्राह्मण समाज के नियम को रूढ करता जाता था। उस समय विजयी इस्लाम उत्तर से घुसा और दक्षिण से भक्ति का उदय हुआ जिसने नए रूपो मे ब्राह्मणवाद को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया।

यह एक महान् युग था। इस प्राचीन देश की पुरानी व्यवस्थाएँ जो गल चुकी थी फिर ठोस रूप धारण करने के भीम प्रयत्न मे लग गई।

इस हल-चल के युग मे भक्ति, योग, हठ, निर्गुणमत, प्रेम, सब को लेकर यहाँ की निम्न जातियो अर्थात् वर्गों ने मुक्त होने का प्रयत्न किया। फकीरी मुसलमान अपने ढग से अपना प्रचार कर रहे थे।

उधर वे बौद्ध प्रभाव स्थित तथा आर्य-सामाजिक व्यवस्था के बाहर स्थित सप्रदाय जो किसी भी प्रकार ब्राह्मण व्यवस्था को स्वीकार करने को तत्पर नही थे, इस्लाम को मुक्ति का मार्ग समझकर सामूहिक रूप से दीक्षा ले-लेकर मुसलमान हो गए। और दूसरी ओर भक्ति की आड मे जो सहूलियतें ब्राह्मण ने निम्नवर्गो को दी उनका प्रभाव पडने लगा। ब्राह्मण धर्म का श्रेष्ठतम आधार सामतवाद था, इस पर आगे विस्तारपूर्वक विचार किया

गया है। और इस समय तुलसीदास तथा अन्य भक्तो के दर्शन होते है जो वास्तव मे उच्च वर्गीय हिन्दू जातियो की विजय के प्रतीक है। ये वर्ग मुसलमानो से झुके, पर इतनी अजीब तरह से कि उसको समाज से अलग कर दिया। अपनी निम्न जातियो को मामूली सहूलियतें देकर दबाए रखा।

और समाज मे यह नया द्वन्द्व चला। एक ओर सब हिंदू थे। दूसरी ओर शासक होकर भी इस्लाम हिन्दू समाज से बहिष्कृत था इसमे काफी हाथ इस्लाम की असहिष्णुता का था। यहाँ की व्यवस्था मे बाहर से आई अनेक जातियाँ मिलकर रहती थी। पर उसका एक मूल्य था। उन्हे ब्राह्मण को सर्वश्रेष्ठ मानना आवश्यक था। इस्लाम ने इसे स्वीकार नही किया और इसलिए हिन्दू और मुसलमान अपने को अलग-अलग समझते रहे। यह द्वेष समस्त रीतिकाल भी नही ढँक सका क्योकि उस समय तो उच्चवर्गीय समाज, हिन्दू हो या मुसलमान, उसके लिए अलग-अलग रहना ही फायदेमन्द था। ब्राह्मण झुकता तो उसका गौरव नष्ट हो जाता और इस्लाम झुकता तो इस विराट् समुद्र मे लहर की तरह खो जाता। रीतिकाल मे फिर विलासवाद छाया। इस समय हमे सब ओर ह्रास के चिन्ह दिखाई देते है—काव्य हो, चित्रकला हो, अथवा सामाजिक जीवन हो। जैसे सब कुछ डूब रहा है, धीरे-धीरे डूबता चला जा रहा है। विकास के चिह्न फिर 1857 ई० से प्रारभ होते हैं। भारतीय इतिहास के प्राचीनकाल और मध्यकाल के बीच का सधियुग कितना महत्त्व-पूर्ण है इसका यहाँ हमे कुछ आभास मिलता है। यह युग व्यक्तियो का नही, राजाओ का नही, वरन् उन साधनाओ के आवरण मे छिपी सामाजिक शक्तियो का है जो अपने अधिकारो के लिए जागरूक होकर लड रही थी। यह युग उस युग की पृष्ठभूमि है जिसमे भारतीय उच्चवर्गो को निम्नवर्गीय समाज को पराजित कर देने मे सफलता मिली। यही उस वृक्ष के बीज मिलते है जो आगे चलकर बडा हुआ और समस्त वर्ग सघर्षो को ब्राह्मण विजेता ने राजन्यवर्ग से मिलकर जातियुद्ध अर्थात् देशी और विदेशी जाति के सघर्ष मे बदल दिया। विदेशी स्वय इसके लिए कितना उत्तरदायी था यह हमारे आलोचना काल के बाहर का विषय है।

अन्त मे मैं शातिनिकेतन के गुरुजनो का आभार स्वीकार करता हूँ जिन्होने मुझे अपने ज्ञानकोषो से लाभ उठाने की आज्ञा दे दी। प० हजारीप्रसाद ने न केवल विश्वभारती तथा हिन्दीभवन की सहायता प्रदान की वरन् अपने गुरुतर ज्ञान से जो मुझे आलोक दिया वह न होता तो क्या मैं अल्पज्ञ इतना बड़ा साहस करता। इससे अधिक मैं क्या लिख सकता हूँ, उनकी नाथसप्रदाय नामक पुस्तक हस्तलिखित रूप मे मेरे उपयोग मे आरही है।

श्री० बनारसीदास जैन, एम० ए०, डी० फिल० (लदन) की कृपासे मुझे

जैन मदिर पट्टी से चौरगीनाथ की प्राणसकली प्राप्त हुई जिसके लिए उन्हे मै धन्यवाद देता हूँ। इनके अतिरिक्त अनेक पुस्तकालयो, विद्वानो तथा कुछ कनफटे योगियो ने जो मुझे सहायता दी है, मेरे काम मे रुचिपूर्वक हाथ बँटाया है उसे मै क्या कहूँ। शिव-डमरू से प्रतिध्वनित शब्दो को पाणिनि की भाँति सूत्रो मे बाँध सकूँ इतनी सामर्थ्य भला मुझमे कहाँ।

प्रो० हरिहरनाथ टडन को धन्यवाद देकर मै उनके गुरुत्व को घटाना नही चाहता।

पुस्तक मे सम्मान सूचक 'जी' शब्दो का अभाव मिलेगा यह असम्मान की प्रवृत्ति नही। मुझे ज्ञान के क्षेत्र मे कालिदासजी के स्थान पर कालिदास अधिक सम्मानित लगता है।

गोरक्षनाथ जो जीव के विषय मे कह गए हैं वह उनके ऊपर लिखने वाले के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। तदैव मैं उनके वे शब्द यहाँ उद्धृत करके अपनी सीमाओ का उल्लेख कर देना उचित समझता हूँ।

राति गई अधि राति गई बालक एक पुकारे,
है कोई नगर मे सूरा बालक का दुष निवारे।
दिसटि पड़ैते सारी कीमति कीमति सबद उचारै,
नाथ कथै अगोचर बाणी ताका बार न पारै॥

—गोरखबानी, पृष्ठ 80

—रांगेय राघव

क्रम

पूर्ववर्त्ती

वज्रयान की परिणति । नाथ सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि, गोरख के पूर्ववर्त्ती। गुरु परम्पराएँ। परम्पराओ पर विचार । किवदन्तियो और दतकथाओ की परीक्षा। मत्स्येन्द्र, गोरखनाथ, जलधरनाथ, चर्पटनाथ, लकुलीश, अन्यनाथ, नाथचद, अन्यसिद्ध, गोरक्ष की ऐतिहासिकता, गूगा। मत्स्येन्द्री जाति, नेपाल कथा, रसालू, अन्य निकट सबधित व्यक्ति, गोपीचन्द, भर्तृहरि, चौरगीनाथ, शकर, गोरक्ष का समय, रामानुज, पूर्ववर्तियो का उत्तरी भारत तथा दाक्षिणात्य मे प्रभाव, सम्प्रदाय की रूप-रेखा, शक्ति प्रभाव ।

वज्रयान की परिणति

(भिक्षु) एक ओर योग से अपनी मानसिक शक्ति को विकसित करने लगे, उधर भक्तो मे श्रद्धा बढाने (वे) नाना हठ, त्राटक क्रियाओ तथा तत्र-मत्र की वृद्धि के साथ-साथ सहस्रो नये देवी-देवताओ की सृष्टि करने लगे। इनसे भी सहस्रो वर्ष पूर्व मिस्र, असुर, यवन आदि देशो मे हम भैरवी चक्रो का प्रचार देखते है। इन्होने बुद्ध के नाम पर नये साधनो के साथ इन बातो को पेश किया।[1]

इसके साथ ही ध्यान देने योग्य है कि शूद्र भी साख्य योग मे द्विजन्माओ की भाँति समान अधिकारी मान लिये गए थे। अछूत भी स्वीकृत थे।

नाथ सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि, गोरखनाथ के पूर्ववर्त्ती

नाथ सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि मे जहाँ एक ओर यह था, दूसरी ओर शाक्त मत था, तथा शिव के अनेक मत भी थे। झारपाटन की गुजरात की लकुलीश की मूर्ति सातवी शताब्दी की निर्धारित की गई है। लिग तथा कूर्म पुराणो मे लकुलीश का शिव के अवतारो मे नाम गिनाया गया है।

योग की इस पृष्ठभूमि पर भारत मे अनेक प्रकार के सम्प्रदाय फूट निकले थे। जब सामाजिक धर्म से मन का सतोष होना बन्द हो चुका था व्यक्ति ने अपने लिए नये साधनो की खोज प्रारम्भ कर दी थी। इसमे यदि कही सामजस्य का रुझान दिखाई देता है तो दूसरी ओर अलग होकर अपने-आपको और भी दुरूह कर देने का। गोरखनाथियो के विषय मे दुरूहता का आक्षेप लगाया जाता है।

गुरु परम्पराएँ

अनेक ग्रन्थो मे इन सिद्धो का विवरण प्राप्त होता है। यह विवरण सदैव ही सुलझे हुए नही मिलते। वरन् कही-कही इनका परिणाम इसके बिलकुल विपरीत दिखाई देता है, पहले परम्पराओ को देखा जाए। हठयोग प्रदीपिका मे प्रधान सिद्धो के नाम इस प्रकार दिये हुए है :—आदिनाथ, मत्स्येन्द्र, शावर, आनन्द भैरव, चौरगी, मीन, गोरक्ष, विरूपाक्ष, विर्लेशम, मन्थान भैरव इत्यादि…… ……।[2]

---

1. पुरातत्व निबन्धावली, राहुल साकृत्यायन।
2. श्री आदिनाथ मत्स्येन्द्र शावराऽऽनन्द भैरवा।
   चौरगी मीन गोरक्ष विरूपाक्ष विलेशमा·।।

मत्स्येन्द्र का नाम यहाँ काफी प्रारम्भ मे ही आ जाता है, किन्तु मीन नाम यहाँ अलग दिया हुआ है। शिवदिन केसरी के शिष्य मालुनाथ ने सम्प्रदाय परम्परा पर चौदह श्लोक दिये है, छह का अर्थ इस प्रकार है—1 प्रथम मे आदिनाथ को नमस्कार, 2 निरालम्ब देश मे अनुपम राजा मत्स्येन्द्र को , 3. दीनो के उद्धार के लिए दौडते-फिरते गोरखनाथ , 4 अनाहत शिगी, लाखो मुद्रा जिनसे निकलती है, ऐसे गैनीनाथ को···, 5 निवृत्तिनाथ को , 6 ज्ञाननाथ को।

गोरखपथियो के मत से 9 नाथ है—1 एकनाथ, 2 आदिनाथ, 3. मत्स्येन्द्रनाथ, 4. उदयनाथ, 5. दडनाथ, 6 सत्यनाथ, 7 सन्तोषनाथ, 8 कूर्मनाथ, 9 जालधरनाथ। सुधाकर द्विवेदी द्वारा लिखित इस नाथ परम्परा मे गोरखनाथ का कोई जिक्र नही है। मत्स्येन्द्रनाथ वही है, जो नेपाल मे हुए है और सस्कृत मे जिन्हे मत्स्येन्द्रनाथ कहते है। मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, कारिणपानाथ, गहनिनाथ, चर्पटनाथ, रेवननाथ, भागनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचन्द-नाथ—ये दस योगिसम्प्रदायाविष्कृति के अनुसार सम्प्रदाय के मूल पुरुष माने जाते है। इनके शिष्य-प्रशिष्य 84 सिद्ध हुए। द्वापर के अन्त मे ईश्वर-वियोग हो गया तब समय को नाश की ओर जाते हुए देखकर धार्मिक जनो ने प्रार्थना की। महादेव ने नारद को बदरिकाश्रम जाकर नवनारायण को योग-मार्ग का द्वार उद्बोध करने का आदेश देने को भेजा। नवनारायण जड भरतादि.... ऋषभ राजा के पुत्रो से नारद ने जाकर सवाद कह सुनाया। कविनारायण, करभाजननारायण, अतरिक्षनारायण, प्रबुद्धनारायण, आविर्होत्रनारायण, पिप्पलायननारायण, चमसनारायण, हरिनारायण, द्रमिलनारायण—ये विरक्त ब्रह्मनिष्ठ पुरुष थे। ये सब जाकर विष्णु से मिले, उन्हे लेकर शिव के पास गए। शिव ने कहा इनको चाहिए कि जहाँ-तहाँ भारत मे अवतार धारण कर ससारानलतप्त हृदय मुमुक्षुजनो को उद्धृत करे। हम भी जिसमे हमारा भेद जानना अनुचित होगा फिर गोरखनाथ नाम का व्यक्ति प्रकट करेंगे, इसमे 'फिर' शब्द का क्या अर्थ है यह स्पष्ट नही होता। इस प्रकार पृथ्वी पर ये

मन्थानो भैरवो योगी सिद्धिर्बुद्धश्च कथडि ।
कोरटक सुरानन्द सिद्धपादश्च चर्पट ॥
कानेरी पूज्य पादश्च नित्यनाथो निरजन ।
कपाली बिन्दुनाथश्च काकचडी श्वराह्वय ॥
अल्लाम प्रभुदेवश्च घोडाचोली च टिण्टिणि ।
भानुकी नरदेवश्च खड कापालिकस्तथा ॥
रत्यादयो महासिद्धा हठयोग प्रभावत ।
खडयित्वा कालदड ब्रह्मा॰ विचरन्ति ते ॥

—हठयोगप्रदीपिका, उपदेश 1, श्लोक 5-9।

अवतार हुए और कविनारायण स्वय मत्स्येन्द्रनाथ हुए और उन्होने शिव से दीक्षा ली। स्वय शिव गोरक्षनाथ हुए और मत्स्येन्द्र से दीक्षा ली। करमाजन-नारायण स्वय जालेन्द्रनाथ हुए और शिव से दीक्षा ली। यहाँ स्पष्ट नही लिखा है। प्रबुद्धनारायण कारिणापानाथ हुए, जिन्होने ज्वालेन्द्रनाथ से दीक्षा ली। शायद कण्हपा या कृष्णाचार्य के लिए योगी चन्द्रनाथ ने कारिणापा का प्रयोग किया है क्योकि कारिणापानाथ का उल्लेख स्पष्ट नही होता। पिप्पलायननारायण चर्पटनाथ हुए और उन्होने मत्स्येन्द्र से दीक्षा ली। चमसनारायण जो रेवननाथ हुए उन्हे भी मत्स्येन्द्र ने ही दीक्षा दी। हरिनारायण भर्तृनाथ हुए, गोरक्षनाथ ने उन्हे दीक्षा दी। द्रमिलनारायण गोपीचन्दनाथ हुए जिन्हे ज्वालेन्द्रनाथ ने दीक्षा दी। इनके अतिरिक्त एक नागनाथ का भी उल्लेख है, जिन्हे सम्भवत गोरक्ष ने ही दीक्षा दी, किन्तु उनपर और कोई प्रकाश नही डाला गया। धर्म मगल मे मीननाथ, गोरक्षनाथ, हाडिया तथा कालूपा सिद्ध है, हाडी एक डोम था।

शाबरी परम्परा मे आध्यात्मिक परम्परा इस प्रकार है —नागार्जुन, शबर, इन्द्रभूति, तिलोपा, नारोपा, नागार्जुन, शबर, लुइपा, जालधरी, कृष्ण, शबरी, लुइपा, दारिकपा, लीलापा, बिरुव, मत्स्येन्द्र, शबर, चौरगी, मीन तथा गोरक्ष।

हठयोग परम्परा के अनुसार विरूपाक्ष, चर्पटी, लुइ, चर्पटी, कुक्कुरी, मीन, लुइ, नागार्जुन, शबर, लुइ, चर्पटी के नाम गिनाये जाते है।

तिब्बती परम्परा[1] के अनुसार निम्नलिखित नाम गिनाये गए है — जालधरी, कृष्ण, गुह्य (?) विजयपा (?), तिलोपा तथा नारोपा। गोरक्षोपनिषद् के अनुसार महानन्द देवता, इच्छा, ज्ञान, क्रिया, पिड, ब्रह्माण्ड, जगत्रय, आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, उनका पुत्र उदयनाथ। दडनाथ, सत्यनाथ, सन्तोषनाथ, कूर्मनाथ, भवनार्जि गोरक्षनाथ गिनाये गये है।[2] गुरुओ की तीन परम्परा है।[3] दिव्यौघ, सिद्धौघ तथा मानवौघ। प्राय प्रत्येक नाम आनन्दनाथ से अन्त होता

---

1 चक्रसवर तत्र।

2 आदौ देवा महानन्दो निर्ममे देवता स्वय,
तस्मादिच्छा सुसम्पन्ना इच्छा ज्ञानं तथा क्रिया,
ततो व्यथा वरारोहे पिड ब्रह्माड बुदबुदम,
अव्यक्ताव्यक्त भावेन विचरामि जगत्रयम
एव श्रीगुरू आदिनाथ• मत्स्येन्द्रनाथ इत्यादि तस्य गोरखनाथ ईश्वर सन्तान •
आदि ब्रह्माण सूक्ष्म वेदी अद्वैतोपर सदानन्द देवता। अनाहत शृंगी खेचरी मुद्रा।

3 महानिर्वाण तत्र।

है। दिव्यौघ मे महादेवानन्दनाथ, महाकाल, भैरव, विघ्नेश्वर, सिद्धौघ मे ब्रह्मानन्दनाथ, पूर्णदेव, चलचित, चलाचल, कुमार तथा मानवौघ मे विमलानन्दनाथ, भीमसेन, सुधाकर, नीलानन्द, गोरक्ष, भोजदेव, विघ्नेश्वर, हुताशन, समय, नकुल। दिव्यौघ के नाम विशेष महत्त्वपूर्ण लगते है। शिवोपासक विभिन्न मतो के नाम की ओर इगित होता है। भैरव सम्प्रदाय नाथ सम्प्रदाय के भीतर का नही है। विघ्नेश्वर गणेश के लिए उपयुक्त होता है। परवर्ती काल मे सम्मिश्रण का फल इस प्रकार लिया जा सकता है।

सबसे आदि[1] मे कालिका देवी है। फिर महादेवी, महादेव, त्रिपुर, भैरव दिव्यौघ है। तदनन्तर ब्रह्मानन्द, पूर्णदेव, चलचित, चलाचल, कुमार, क्रोधन, वरद, स्मरदीपन, माया, मायावती सिद्धौघ है। मानवौघ मे विमल, कुशल, भीमसेन, सुधाकर, मीन, गोरक्ष, भोजदेव, प्रजापति मूलदेव, अवतिदेव, विघ्नेश्वर, हुताशन, सन्तोष, समयानन्द, कालिका गुरु है। सब सिद्धो के नाम के बाद आनन्दनाथ जोडना है, स्त्रियो के अम्ब। तारागुरुओ[2] मे ऊर्ध्वकेश, व्योमकेश, नीलकठ,

---

1 तात्रदौ कालिकादेवी तस्या श्रृणु गुरूक्रमम्।
महादेवी महादेव त्रिपुरश्चेव भैरव ।।
दिव्यौघा गुरव प्रोक्ता सिद्धौघान कथयामिते।
ब्रह्मानन्द पूर्णदेवश्चलचित्तश्चलाचल ।।
कुमार क्रोधनश्चैव वरद स्मरदीपन।
माया मायावती चैव मानवौघान श्रृणु प्रिये ।।
विमल· कुशलश्चैव भीमसेन सुधाकर।
मीनो गोरक्षकश्चैव भोजदेव प्रजापति ।।
मूलदेवो वन्तिदेवो विघ्नेश्वर हुताशनौ।
सन्तोष समयानन्द कालिका गुरव स्मृत ।।
दिव्या वसति खे नित्य सिद्धा भूमा विहायिच।
मानवौघा मान्वेषु ममरूपधरा सदा ।।
स्त्रियोपि गुरूपाश्च अम्बान्ता परिकीर्तिता।
आनन्दनाथ शब्दान्ता गुरव सर्व सिद्धिदा ।। —भाव चडामणि।

2 अथ तारा गुरून वक्ष्ये
ऊर्ध्वकेशो व्योमकेशो नीलकठो वृषध्वज ।।
दिव्यौघा सिद्धिदा वत्स सिद्धौघान श्रृणु तत्वत।
वशिष्ठ कूर्मनाथश्च मीननाथो महेश्वर ।।
हरिनाथो मानवौघानथ वक्ष्यामि सद्गुरून्।
तारावती भानुमति जाया विद्या महोदरी ।।
सुखानन्द परानन्द पारिजाता कुलेश्वर·।
विरूपाक्ष केररीच कथित तारिणी कुलम् ।।
आनन्दनाथ शब्दान्ता गुरव सर्वसिद्धिदा।
स्त्रियोपि गुरुरूपाश्च देव्यता परिकीर्तिता ।। —ताराविद्या, पुरश्चर्यार्णव—प्रथम खन्ड।

वृषभध्वज दिव्यौघ है। वसिष्ठ, कूर्मनाथ, मीननाथ, महेश्वर, हरिनाथ सिद्धौघ है। तारावती, भानुमती, जया, विद्या, महोदरी, सुखानन्द, परानन्द, पारिजात, कुलेश्वर, विरूपाक्ष, केररी मानवौघ है। स्त्रियो के नाम के अन्त मे देवी जोड देना है।

षोडषी[1] गुरु क्रम मे आनन्दनाथदेव, परप्रकाशक, परशिवदेव, परशक्ति, कौलेश्वर, शक्तिदेव, कुलेशान, कामुक दिव्यौघ है। भोगक्रीड, भैरव, समय, देवसहज सिद्धौघ है। गणेश, विष्णु, विमल, सहज, भुवन, नील, सुप्रिय मानवौघ है। दुर्गागुरुओ मे [2] परमात्मा, परानन्द, परमेष्ठी, महादेव, कृष्ण, काल, कलानाथ दिव्यौघ है। इनके नाम का अन्त भैरव से होता। नारद, काश्यप, शम्भु, भार्गव, कुल कौलिक, ये सिद्धौघ प्रसिद्ध है। रुद्राचार्य, क्षमाचार्य, घवनाशन, कुमारीश, शक्तिधर, घनानन्द, प्रकाशक, हरिशर्मा, विष्णुशर्मा, दत्तात्रेय, प्रियवद, बहुला, शाकिनीदेवी, चर्यानाथ कहलाते है। इन नामो मे बहुत-से नाम आगे भी मिलेगे और प्राय उनमे अधिक भेद नही है। घूम-फिरकर एक-से ही नाम बार-बार मिलते है। स्त्रियो का गुरु होना विशेष महत्त्वपूर्ण है।

डा० बागची[3] ने कौलज्ञान की सिद्ध तथा गुरु पक्ति पर विस्तारपूर्वक विचार करके यह बताया है कि यद्यपि वे आज पहचाने नही जा सकते तथापि निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट हो जाते है।

---

1 श्री षोडश्या गुरु क्रमम् ।
आनन्दनाथ देवश्च परप्रकाशकस्तथा ॥
तत परशिवो देव॰ परशक्तिस्तत पर ।
कौलेश्वर शक्तिदेव कुलेशानश्च कामुक ॥
सिद्धौघान् कथयिष्यामि भोगक्रीडश्च भैरव ।
समयो देवसहजो मानवौघान् ॥
गणेशो विष्णु विमलो सहजो भुवनस्तथा ।
नीलश्च सुप्रिय पश्चात् कथिता गुरुव॰ क्रमात् ॥ —श्रीविद्या गुरव ।

2. परमात्मा परानन्द परमेष्ठो महोदय ।
कृष्ण काल कलानाथो दिव्यौघा भैरवान्तिक ॥
नारद॰ काश्यप शम्भुर्भार्गव कुलकौलिक ॥
एते पच महादेव सिद्धौघा परिकीर्तिता ।
रुद्राचार्य॰ क्षमाचार्य घवनाशन सज्ञक ।
कुमारीश शक्तिधरो घनानन्द प्रकाशक॰ ।
हरिशर्मा, विष्णुशर्मा, दत्तात्रेय प्रियवद
बहुला शाकिनी दैवी चर्यानाथ प्रकीर्तित ।
—दुर्गा गुरु पक्ति, पुरश्चर्यार्णव, प्रथम खड ।

3 कौलज्ञान निर्णय, पृष्ठ 58 ।

कुछ सिद्धो की क्षेत्रो मे पूजा होती थी। जैसे करवीर, महाकाल, देवीकोट्य, वाराणसी, प्रयाग, धरित्र, एकाम्र, अट्टहास और जयन्ती कोकणैपाइद, कलमबाइ, नागाइ, हरसिद्धाइ, कम्बरी, मगलाइ, सिद्धाइ, बचाइ, शिवाइ, इचाइ, आइ, विराइ, त्रिभुवनाइ और वराहरूपाइ।

वे सिद्ध जिनकी कामाख्या, पूर्णगिरि, ओडियान तथा अर्बुद-जैसे पीठो मे पूजा होती थी—महालक्ष्माइपाद, कुसुमानगाइ, शुक्लाइ, प्रलम्बाइ, पुलिन्दाइ, शबराइ, कृष्णाइ, धवलाइ, हिडिम्बाइ, माहमाइ··· ·· ।

पुराने सिद्ध मृष्णिपाद, प्रवतार, सूर्य, द्युति, ओम, व्याघ्र, हरिणि, पंचशिखी, कोमल, लम्बोदर।

भैरव ने कहा है कि मत्स्येन्द्र उन्ही का निर्गत स्वरूप है, अत इस सम्बन्ध मे इन्ही स्वरूपो का नाम दिया गया है जिनका योगिनीकौल से सम्बन्ध है। विश्वपाद, विचित्र, श्वेत, भृंग, भट्ट, श्रीकठ तथा रुरु कुछ और नाम है जो आगे आ जाएँगे।

कामाख्या गुह्य सिद्धि मे भी गुरुओ के नाम दिये हुए है। श्री श्रीकान्तदेव, श्री खगीशनाथ इत्यादि। और भी लोचननाथ, चर्यानाथ, मातगीशनाथ, मच्छेन्द्रनाथ, उग्रनाथ, ह्रयानन्दनाथ, कुडलानन्दनाथ, चक्रानन्दनाथ, चन्द्रानन्दनाथ, किन्तु यहाँ गोरक्ष का नाम नही है। इसके अतिरिक्त एक और सूची मे यह नाम है—किरणानन्दनाथ, श्री गजबेधीनाथ, श्री लकानन्दनाथ, श्री यक्षानन्दनाथ, श्री मत्स्येन्द्रनाथ, श्री आज्ञाप्रभावदेव, श्री व्योमानन्दनाथ, श्रीलघुप्रबोधदेव, इत्यादि।

ऊपर दिव्यौघ पक्ति मे भैरव का नाम आ चुका है। यहाँ भैरव और वेताल की उत्पत्ति के विषय मे जान लेना उचित है। शिव के गौरी द्वारा दो पुत्र हुए। जब गौरी राजा चन्द्रशेखर की स्त्री रानी सारामती के शरीर मे घुस गई। इन दो पुत्रो मे एक का नाम भैरव हुआ। दूसरे का वेताल। वेताल का मुख बन्दर जैसा था।[1] शिव का भयानक स्वरूप भैरव जब कुत्तो को वाहन बनाकर चलाता है तब वह बटुक कहलाता है। दत्तात्रेय के साथ भी कुत्ते रहने की तकथा पुराण मे मिलती है। इसके अतिरिक्त भी भैरव के अनेक अन्य स्वरूप है, जैसे कालभैरव, नकुलेश्वरभैरव।[2] नकुल शब्द शिव के नकुलीश सम्प्रदाय से मिलता है। भैरव के अन्य रूप है: असिताग, चड, कपाली, क्रोध, भीषण, उन्मत्त, रुरु, सहारी।

शबर तन्त्र मे 24 कापालिक, 12 गुरु तथा 12 शिष्यो के नाम दिये हैं।

1. कालिका पुराण, अध्याय 14।
2. महानिर्वाणतन्त्र, आर्थर एवेलॉन।

कुछ शिष्य प्रसिद्ध नाथ तथा सिद्ध है।[1] गुरु—आदिनाथ, अनादिनाथ, कालनाथ, अतिकालनाथ, करालनाथ, विकरालनाथ, महाकालनाथ, कालभैरवनाथ, बटुकनाथ, भूतनाथ, वीरनाथ, श्रीकठनाथ। गुरुओ मे प्राय सभी नाम शिव के ही है। शिष्यो मे नागार्जुन, जडभरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरक्षनाथ, चर्पटनाथ, अद्वयनाथ, वैराग्यनाथ, कबधारी, जालन्धर तथा मलयार्जुन का उल्लेख है।

'बौद्धगान ओ दोहा' मे 84 सिद्धो का वर्णन है। मीननाथ प्रथम है। दूसरे गोरखनाथ, तीसरे चौरगीनाथ, छठे हालिपा (हाडिपा), तेरहवे कण्ह तथा उन्नीसवे जालन्धर है।

भास्करराय का मत अन्य तन्त्रो से भिन्न है। सभी नाम यहाँ भी आनन्दनाथ जुडकर समाप्त होते है। दिव्यौघ मे ऊर्ध्वकेशानन्दनाथ, व्योमकेश, नीलकठ, वृषभध्वज तथा सिद्धौघ मे वसिष्ठ, मीननाथ, हरिनाथ, कुलेश्वर, विरूपाक्ष, महेश्वर, सुख तथा पारिजात है।

कौलावली तन्त्र मे 12 गुरुओ के नाम है: विमल, कुश, भीमसेन, मीन, गोरक्ष, भोजदेव, मूलदेव, रतिदेव, विघ्नेश्वर, हुताशन, समरानन्द, सन्तोष।[2] यह सब मानवौघ है। नेपाली परम्परा से प्रकट होता है कि ब्राह्मण तन्त्रो को नवनाथो ने ससार के सम्मुख प्रकट किया था, जो यह थे—प्रकाश, विमर्श, आनन्द, ज्ञान, सलय (?), स्वभा (?), प्रतिभा तथा सुभग। नारद परिव्राजक उपनिषद् मे अवधूत गोरख का उल्लेख है, जिनके पूर्ववर्ती अनेक हुए थे। वे है—श्वेतकेतु, ऋभु, निदाघ, जडभरत, वृषभ, दुर्वासा, सम्वर्तक, सनत्सुजात, वैदेह, जनक, वातसिद्ध, शुक, वामदेव, दत्तात्रेय, रेवतक। दत्तात्रेय का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त श्री ज्ञानेश्वर चरित्र मे प० लक्ष्मण रामचन्द्र पागारकर ने ज्ञाननाथ तक की परम्परा गिनाई है। आदिनाथ, उमा, मत्स्येन्द्र, जालन्धरनाथ, मत्स्येन्द्र से गोरक्ष तथा चौरगी। गोरक्ष से गहिनी (गैनी), निवृत्ति तथा ज्ञानदेव दूसरी ओर जालन्धरनाथ से कानिकनाथ और मैनावती (गोपीचन्द की माता) का उल्लेख है।

यही तुकाराम की शिष्या बहिनाबाई (1627 सम्वत् से 1700 सम्वत्) ने गुरुपरम्परा दी हैं। बागची ने इसे उद्धृत किया है। किन्तु ब्रिग्स की सूची मे मीननाथ का उल्लेख नही है। वहाँ—ज्ञानेश्वर, सच्चिदानन्द, विश्वम्भर,

---

1. गोपीनाथ कविराज, एस० बी०, वाल्यूम 4।

2 विमल कुशरश्चैव भीमपेन सुसाधक
मीनो गोरक्षयश्चैव भोजदेव प्रकीर्तित·
मूलदेवो रन्तिदेवो विघ्नेश्वरो हुताशन
समरानन्द सन्तोषोमानवौघा· प्रकीर्तिता।—कौलावली तत्र, पृष्ठ 76

(1485—1533), कृष्णाचार्य, राघव, चैतन्य, केशवचैतन्य, बाबाजीचैतन्य, तुकोबा तुकाराम) 1608—1649) का उल्लेख और जोडकर सूची को समाप्त कर दिया गया है।

गोरक्ष सिद्धान्त सग्रह मे नवनाथ इस प्रकार गिनाये गए है—नागार्जुन, जडभरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, चर्पट, कन्थाधारी (कन्थाडि) तथा जालन्धर। वर्णरत्नाकर नामक ग्रन्थ के प्रणेता ज्योतिरीश्वर मिथिला के राजा हरिसिह (1300 स०—1321) के दरबार मे रहते थे। उनकी सूची के अनुसार भी मीननाथ, गोरक्ष, चौरगी, हालिपा (हाडिपा), कण्ह तथा जालन्धर का स्थान बौद्धगान औ दोहा से[1] मिलता-जुलता है। विशेष उल्लेखनीय इन दो सूचियो मे यही है कि जालन्धर और हाडिपा अलग-अलग व्यक्ति के रूप मे माने गए हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार योगनाथ अथवा बिन्दुनाथ तदनन्तर आदिनाथ, फिर मीननाथ और तब गोरक्षनाथ का नाम है।

परम्पराओ पर विचार

परम्पराओ के सूत्र अलग-अलग है और वे भिन्न-भिन्न काल मे हेर-फेर के उपरान्त प्राप्त होते । परवर्ती विचारधाराओ के प्रभाव से मुक्त है, ऐसा निश्चय के साथ नही कहा जा सकता क्योकि धर्म की नई धाराएँ प्रारम्भिक परम्पराओ से सदैव ही मेल खानेवाली नही रह गई थी। इन विभिन्न परम्पराओ से मोटे तौर पर हमे अनेक बातो की जानकारी मिलती है। गुरुओ की तीन परम्पराओ मे दिव्यौघ मे वस्तुत विभिन्न मत थे। उनमे परस्पर क्या भेद था, यह आज गिना सकना कठिन है। बहुत सम्भव है केवल बाह्य रूप का ही थोडा-बहुत भेद रहा हो।

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। उन्होने पहले वर्णरत्नाकर की नाथ सिद्धो की सूची की राहुल साकृत्यायन की गगा पुरातत्त्वाक मे प्रकाशित वज्रयासियो की सूची से तुलना की है। वर्णरत्नाकर मे वास्तव मे ८४ के स्थान पर केवल ७६ नाम दिये गए है। बाकी का उल्लेख क्यो नही है यह नही कहा जा सकता। यह लेखक का प्रमाद समझा जा सकता है। किन्तु ऐसा अधिक सम्भव है कि परवर्त्ती काल मे 84 शब्द सख्या का उपयोग सम्मानसूचक समझा गया होगा। यह बात अन्य धर्मो से विवाद के स्थान मे तुलनीय स्वरूप से देखने पर स्पष्ट हो जाती है। वज्रयानी सिद्धो

---

1 कौलज्ञान निर्णय मे सिद्धों की सूची इस प्रकार है—
श्री विश्वपादान, श्री विचित्रपादान, श्वेत, भट्ट, महेन्द्र, बृहीश, बिध्य, शबर, महेन्द्र चन्द्र, चन्द्र, हिडिनि, समुद्र, लवण, दुम्बर, देवे, धीवर, सिद्दल, ओगिनी इत्यादि—अनेन सदृश ज्ञान न भूयो न भविष्यति।

मे अनेक नाथसिद्धो का नाम आता है । हजारीप्रसाद के अनुसार वर्णरत्नाकर की सूची के निम्नलिखित नाम तुलनीय होकर समान दिखाई देते है ।

1 मीनपा 2 गोरक्षपा 3 चौरगीपा 4 चवरि (जवरि) अजपालिपा 5 सन्तिपा 6 मेदनीपा (हालिपा ?) 7 कुडलिपा (कुद्धलिपा) 8 डेगिपा (धौगिपा ?) 10 विरसा 12 कमरिपा (कामरिपा) 13 कण्हपा 14 कनखलापा (योगिनी) 15 मेखलापा (योगिनी) 18 धोम्भिपा 19 जालन्धरपा (जालधारक) 22 नागार्जुन 25. अचिन्तिपा 26 चम्पकपा 31 चर्पटीपा (पचरीपा) 32 भदेपा 34 कमरिपा (कबलपा) 36 धर्मपा 37 भद्रपा 44 शान्तिपा 46 भिखनपा 47. शबरीपा 48 थगनपा 51 कुमरिपा 55 शलिपा (शीलपा) शृगालीपाद ? 59 नागाबोधिपा 66. भलिपा 69 कपाल (कमल) पा 79 मणिभद्र (योगिनी) ।

वज्रयानी सिद्धो की सूची मे इन नामो का होना कुछ प्रकट करता है । वज्रयान की आगे की अवस्था मे सहजयान प्रमुख था । सहज का नाथ परम्परा पर प्रभाव था । दोनो सूचियो मे नामो की समानता का तात्पर्य यही है कि उक्त नाथ सिद्ध पहले सहजयानी थे तदुपरान्त नाथ हो गए । सहजयानी परम्परा उनके महत्त्व को घटा नही सकी अत नही त्याग सकी । यह भी सम्भव है कि समसामयिक रूप मे उस समय तक इतना स्पष्ट विभाजन नही हो पाया था । सूक्ष्म विरोधो का महत्त्व अधिक नही माना गया । यह आवश्यक नही है कि नाथ सम्प्रदाय का स्वरूप भी सदैव वही रहा जो गोरक्षनाथ ने निर्धारित किया । पूर्ववर्त्ती और परवर्त्ती तथा समसामयिक नाथियो मे भी परस्पर भेद थे, यह भी इससे लक्ष्य होता है । नाथसिद्धो मे गोरक्ष के सब ही पूर्ववर्त्ती शेष रहे हो यह विश्वास भी तनिक कुठित होता है । योग एक व्यक्तिगत सिद्धि का माध्यम होने से प्राय प्रत्येक सिद्ध के आत्मानुभव मे भेद हो जाना कोई अद्भुत बात नही है । प्रारम्भ से कबीर के बाद तक आत्मानुभव की ही जो प्रधानता गाई गई है, वह इस बात की पुष्टि करती है । अत यह कहना सत्य से बहुत दूर न होगा कि गोरक्ष के पूर्ववर्त्ती मोटे तौर पर यदि परस्पर बहुत दूर न थे तो सूक्ष्म भेदो पर उनकी कुछ असमानता अवश्य थी । नाथसिद्धो की सूची मे गोरक्ष का स्थान दूसरा है । सहजयानी सिद्धो मे उन्हे नवॉ स्थान दिया गया है । मीननाथ नाथसिद्धो मे सर्वप्रथम गिनाये गये है, किन्तु सहजयानी परम्परा मे उनका आठवॉ स्थान है । कहॉ तक यह दोनो सूचियॉ समय और अनुक्रम से बनी है यह नही कहा जा सकता । अधिकाशत तो किंवदती और सुनी-सुनाई परम्परा पर ही इनका आधार है ।

तदुपरान्त प० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने वर्णरत्नाकर गोरक्ष सिद्धान्त सग्रह, महार्णव तन्त्र, योगिसम्प्रदायाविष्कृति, हठयोग प्रदीपिका तथा सुधाकर चन्द्रिका

के ऊपर दिये नाथसिद्धो की एक सूची बनाई है जिसमे उन्होने अक्षय से प्रारम्भ कर हालिपा तक 137 सिद्धो के नाम दिये है । यदि नवनाथो, कापालिको, ज्ञान-नाथ के गुरुसिद्धो और वर्णरत्नाकर के चौरासी नाथसिद्धो को नाथ परम्परा मे मान लिया जाय तो 14वी शताब्दी के आरम्भ होने के पूर्व लगभग 125 सिद्धो के नाम उपलब्ध होते है ।[1] तन्त्रो मे मानव गुरुओ का उल्लेख इसलिए नही किया गया है क्योकि उनके नाथसिद्ध होने मे सन्देह है ।

कौलावली तन्त्र मे मीन तथा गोरक्ष को गिना देना इसी ओर इगित करता है कि सम्भवत यह सब मानवौघ गुरु एकदम ही नाथसिद्ध नही थे । ऊपर भेदो के विषय मे बात की जा चुकी है ।

इस सूची मे नाम गिना दिये गए है । मत्स्येन्द्रनाथ को 100वाँ स्थान दिया गया है तथा 108 सख्या पर हठयोग प्रदीपिका, गोरक्ष सिद्धान्त सग्रह, योगि-सम्प्रदायाविष्कृति तथा वर्णरत्नाकर मे उल्लिखित मीन का नाम है ।[2] सूची से यह प्रकट नही होता कि पूर्ववर्त्ती और परवर्त्ती नाथसिद्धो को किस रूप मे रखा जा सकता है । (प्राय सभी स्रोतो से देखकर) गोरक्षनाथ 35वे स्थान पर है तथा गाहिनीनाथ 33वे स्थान पर रखे गए है ।

सूची अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथा अनेक उलझनो को सुलझाने मे सहायता दे सकती है ।

इस प्रकार अनेक महत्त्वपूर्ण तथा इससे विपरीत सिद्धो के नाम प्रकट होते है जिनके समय की एक ओर सीमा निर्धारित ही है । उनका 1300 ई० के पूर्व होना अवश्य उल्लिखित है ।[3]

किंवदन्तियो और दन्तकथाओ की परीक्षा

मत्स्येन्द्रनाथ, जालन्धरनाथ, गोरक्षनाथ तथा कानिपा का नाम प्राय सभी सूचियो मे मिलता है । इससे यह प्रकट होता है कि इनका सर्वमान्य होना स्वयसिद्ध-सा है । इनका काल नियत होने पर अन्यो का पूर्ववर्त्ती तथा परवर्त्ती मे विभाजन कुछ सीमा तक सरल हो जाएगा । मत्स्येन्द्र प्रथम पुरुष है । क्षीर-सागर के तट पर विष्णु मत्स्य बनकर शिवपार्वती की बात मे हुँकारी भरने लगे । शिव इस बात को पहचान गये, तब मत्स्य के उदर से निकलकर कुमार-रूप विष्णु ने आदेश कहा । यही मत्स्येन्द्रनाथ थे ।[4] मत्स्येन्द्र घूमते हुए अयोध्या

1 नाथ सम्प्रदाय ।

2 सूची अक्षरादिक क्रम से लिखी हुई है ।

3. नाथ सम्प्रदाय ।

4. योगिसम्प्रदायाविष्कृति ।

की ओर जयश्री नामक नगर मे पहुँचे, वहाँ विजयध्वज राज्य कर रहा था। वहाँ एक सहबोध ब्राह्मण अपनी सद्वृत्ति पत्नी के साथ रहा करता था। मत्स्येन्द्र ने स्त्री को नि सन्तान देखकर उसे खाने के लिए एक फल दिया। ब्राह्मणी ने जाकर पडोसिन को यह वृत्तान्त सुना दिया। पडोसी ने कहा न जाने कहाँ का जोगडा था। ये कनफटे वैरागी है। ऐसा मन्त्र फूँककर भभूत देते है कि कोई खा ले तो उसकी सुध-बुध खो जाए और कुतिया बनकर इनके पीछे-पीछे घूमा करे। ब्राह्मणी ने फल को फेक दिया। 12 वर्ष बाद मत्स्येन्द्र उधर ही आए। उन्होने फेक दिये जाने के वृत्तान्त को सुनकर, जाकर गढे को देखा, जहाँ फल फेका गया था वहाँ एक 12 वर्ष का बालक था। वही गोरक्ष था। गोरक्ष मत्स्येन्द्र के साथ चल पडा, तब मत्स्येन्द्र ने कृपा करके उस ब्राह्मणी को दूसरा बालक दिया जिसका नाम नाथवरद रखा। यह नामकरण गोरक्ष ने किया।[1]

मत्स्येन्द्र

प्रबोधचन्द्र बागची के अनुसार मत्स्येन्द्र पहले ब्राह्मण थे किन्तु बाद मे वे मत्स्येन्द्र कहलाते थे। इसका कारण यह था कि वे कैवर्त का कार्य करने लगे थे। पवित्र कुलागम निगल जाने वाली मछली को मार देने के कारण उन्हे ऐसा नाम दिया गया।[2] कार्तिकेय ने कुलागम चुरा लिया। भैरव ने उसका उद्धार करने का प्रयत्न किया। जब वे अपने स्वरूप मे नही कर सके तब उन्होने मछली का रूप धारण किया। अत नाम मत्स्येन्द्र पडा।[3] इससे यह प्रकट होता है कि मत्स्येन्द्र यद्यपि ब्राह्मण थे किन्तु कुलागम के लिए उन्होने अपना ब्राह्मणत्व त्याग दिया था और वे इस पथ पर चल पडे थे।

गोरक्षनाथ

शिव और चार सिद्ध स्वय परमात्मा से उत्पन्न हुए थे। वे सिद्ध निम्न-लिखित है। मीन, हाडिपा, गोरक्षनाथ, कनुफा। बगाली किवदन्ती के अनुसार गौरी नामक एक कन्या हर को दी गई। गोरक्ष, मीनके और कनुफा हाडिपा के सेवक हो गए। मीन ने एक बार शिव जब पार्वती को उपदेश दे रहे थे छिपकर पीठिका के नीचे से सब सुन लिया। उस समय वह मत्स्य के रूप मे थे। उन्हे इसके लिए शाप मिला। गोरक्ष-मात्र ही पवित्र रह सके।

अधिकतर किवदन्तियो मे मत्स्येन्द्र के छिपकर उपदेश प्राप्त करने तथा मत्स्य रूप से सम्बन्धित होने के तथ्य इस विषय पर कुछ प्रकाश डालते है। डा० मोहन

---

1 योगिसम्प्रदायाविष्कृति।

2 कौलज्ञाननिर्णय 60/37।

3 वही, पृष्ठ 11। अह स धीवरो देवी अह वीरेश्वर प्रिये।

सिह ने इस मत का प्रतिपादन किया है कि सम्भवत आध्यात्मिक पक्ष मे यह दो विशेष अवस्थाएँ हैं जिनके नामो पर इन दो की अभिव्यक्ति की गई हो। किन्तु उन्होने अपने मत की पुष्टि मे कोई विशेष तथ्य नही दिये है। मत्स्येन्द्र का मत्स्य के किसी रूप या सम्बन्ध से सग्रथित होना निकटतर प्रतीत होता है या परवर्त्ती काल मे जलमग्न वेद को मत्स्यावतार की भाँति निकाल लाने वाली शक्ति के सामने से इन किवदन्तियो को जन-कल्पना मे आधार मिला। छिपकर सुनने से इगित होता है कि मत्स्येन्द्र वास्तव मे किसी अन्य सिद्धान्त को माननेवाले थे। वे शिव स्वरूप से अत्यन्त प्रभावित होकर इस ओर आकृष्ट हुए, किन्तु उन्हे दीक्षा अत्यन्त कठिनता से मिली। इस चरित्र का आगे का कथानक गोरक्षकनाथ के साथ लेने मे अधिक सरल सिद्ध होगा।

कौलज्ञाननिर्णय, आकुल वीर तन्त्र (ए और बी), कुलानन्द और ज्ञान-कारिका मे मच्छघ्रपाद, मच्छेन्द्रपाद, मत्स्येन्द्रपाद और मीनपाद, मच्छेन्द्रपाद, मत्स्येन्द्र, मछिन्दरनाथ आदि नाम आते है।[1] हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस विषय पर काफी प्रकाश डाला है। मत्स्येन्द्र का चित्त की चपल वृत्तियो के पर्याय मे प्रयोग आता है। बौद्ध सिद्धो मे मत्स्य प्रज्ञा का वाचक था। अत आप इसी निर्णय पर पहुँचे है कि मीननाथ और मत्स्येन्द्र एक ही व्यक्ति के दो नाम है। दीपकर श्रीज्ञान 1038 ई० के सम्बन्ध से जिन लुईपा का समय ज्ञात होता है उन्हे वे मत्स्येन्द्र से अलग व्यक्ति स्वीकार करते है। मत्स्येन्द्रनाथ का मत्स्येन्द्र सहिता नामक योग साधन पर ग्रथ बताया जाता है।[2] अब यह प्राप्त नही होता, अत इस ओर से सहायता की कोई आशा नही रहती।

एक कथा के अनुसार[3] मत्स्येन्द्र गडात्ययोग मे जन्मे। पिता ने अशुभ समझकर उन्हे समुद्र मे फेंक दिया। वहाँ उन्हे एक मछली खा गई। श्वेतदीप के सम्यक् पर्वत पर शिव पार्वती को रहस्य कथा सुनाने लगे। मत्स्य चुपचाप नीचे छिपकर सुनता रहा। जब शिव और पार्वती चलने लगे तो इसने गगन मे बढकर कहा—मुझे अब ज्ञानयोग हो गया है। शिव ने प्रसन्न होकर कहा—तू विप्र है। मत्स्य से निकल आ। पार्वती ने प्रसन्न हो उसे अपने साथ ले लिया और मदार पर्वत पर ले गई। जब मत्स्य मे से कुमार निकला तब शिव ने उसका नाम मत्स्यनाथ रख दिया। बगाल के धर्मदेव सम्प्रदाय मे सृष्टि उत्पत्ति की यह कथा मानी जाती है कि मत्स्येन्द्रनाथ (मीननाथ) चार अन्य सिद्धो के सहित आदिदेव या आदिनाथ के गड़े हुए मृत शरीर से निकले थे। गोरखबानी मे

1. नाथ सम्प्रदाय।
2. योगिसम्प्रदायाविष्कृति।
3. स्कद पुराण, नगर खड (26, 36, 512)।

कई स्थानो पर मत्स्येन्द्र को आदिनाथ (निरजन या धर्म) तथा (मनसा का पुत्र) कहा गया है।[1]

मत्स्येन्द्र एक भृगुवशीय ब्राह्मण का पुत्र था। पिता ने अपशकुन समझकर उसे समुद्र मे डाल दिया। यहाँ अपशकुन का कोई वर्णन नही दिया गया है। बालक को एक मत्स्य ने खा लिया। शिव ने जब पार्वती को दीक्षा दी, तब शुक ने उसे सुना। शुक (शुकदेव=व्यासदेव के पुत्र) द्वापर के अन्त मे हुए। अत: कथा तभी सुनाई गई। अत द्वापर के अन्त मे योगी समाज की प्रतिष्ठा हुई, अर्थात् नाथपथ की। तभी मत्स्य मे से शिव ने मत्स्येन्द्र का उद्धार किया।[2]

अयोध्या मे मत्स्येन्द्र ने एक राजा को राम के दर्शन कराये। सूर्य को भी अपने बल से पृथ्वी पर उतार दिया। राजा के दास जब राजा की खोज करते हुए आये तब उन्होने मत्स्येन्द्र को श्मशान मे सानन्द बैठे हुए देखा।[3]

मत्स्येन्द्र मध्यप्रदेश मे भ्रमण करते हुए गगा, यमुना नदियो के मध्यस्थ देश मे आ पहुँचे, फिर हस्तिनापुर गए। वहाँ वृहद्रथ राजा के पुत्र्येष्ठि यज्ञ मे भाग लिया। वृहद्रथ कुरुवशातर्गत पुरुवश मे हुआ था जो युधिष्ठिर की अपेक्षा 23वाँ राजा था। यज्ञ के फलस्वरूप एक बालक हुआ जो अतरिक्ष नारायण का अवतारी था। मत्स्येन्द्र ने बालक को चुटकी-भर विभूति खिलादी जो कोई जान न पाया। मत्स्येन्द्र चले गए। राजा ने बालक को (गौतमबुद्ध की तरह) अछूता पाला। लडका बडा हुआ। समय आने पर उसने पूछा विवाह क्या है। जब उसे बताया गया तब वह क्षणिक आनन्द का विरोधी निकला। उसने ससार-चक्र मे फँसना अस्वीकार कर दिया। वह मगलप्रद मुहूर्त मे रूपातर धारण कर घर से निकल गया। गगातट पर घूमता हुआ हिमालय पहुँचा। वहाँ एक गुफा मे बैठकर आराधना करने लगा। दावाग्नि प्रस्फुटित होने पर जब वन जलने लगा तब भी अग्नि ने उसे यज्ञ मे अपना पुत्र जानकर जलाया नही और उसे शिव के समीप ले गया। शिव ने लडके को स्वय दीक्षा दी और कुडल पहनाये और उसे ज्वालेन्द्रनाथ नाम दिया। शिव ने उससे कहा, मातड पर्वत पर होकर जाना। वहाँ के नागवृक्ष और सूर्यकुड के दर्शन करने का बहुत ही माहात्म्य है और उसे बदरिकाश्रम तप करने भेजा। ज्वालेन्द्रनाथ बदरिकाश्रम मे अजपा नामक हसमत्र के ध्यान मे लवलीन हो गए। मत्स्येन्द्र ने बारह वर्ष बाद आकर वहाँ उस तपस्या मे बद्ध आसन को खुलवाया।[4]

---

1 सुकुमार सेन, प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, टीकमगढ, 1946।

2 योगिसम्प्रदायाविष्कृति।

3 वही।

4 वही।

जालन्धरनाथ

ज्वालेन्द्रनाथ के अनेक नाम है। उन्हें हाली या हाडिपा नाम से भी मिला दिया जाता है। शिव उदयनाथ ने रुद्रगण, एक योगी तथा अपनी शक्ति से एक दूसरे दुरात्मा जालन्धर को जन्म दिया। दुरात्मा को फिर वे सत्पथ पर लाये। जालन्धर ने दो शिष्य बनाए—एक मत्स्येन्द्रनाथ, दूसरा जालन्धरीपा। दूसरे ने पा पथ चलाया तथा मत्स्येन्द्रनाथ ने गोरक्षनाथ को अपना शिष्य बनाया। उसी कथा मे मत्स्येन्द्र की उत्पत्ति तथा गोरक्ष के गोबर से जन्म लेने के सम्बन्ध मे भी कहा गया है। इस कथा मे पा पथ के भिन्न रूप से चलने पर प्रकाश डाला गया है। ज्वालेन्द्र के सम्बन्ध मे किवदतियो की कमी नही है।

आप एक बार चन्द्रभागा तीर पर पहुँचे। फिर काश्मीर गए। जहाँ गहनिनाथ और नागनाथ अपने शिष्यो को दीक्षा दे रहे थे। यही आपने समाधि ली। ज्वालेन्द्रनाथ ने कारिणपानाथ को दर्शन दिलाने के लिए देवताओ का आह्वान किया। देवताओ की भीड उनके बुलाते ही आकर इकट्ठी हो गई, जो देवता नही आए ज्वालेन्द्रनाथ ने उन्हे प्रमत्त जानकर दड दिया।[1] ज्वालेन्द्रनाथ के प्रबल प्रताप से स्वय देवता तक भयभीत दिखाये गए है।

जालन्धर की किवदतियो मे गोपीचन्द तथा भर्तृहरि का नाम बहुत ही उल्लिखित होता है।

चर्पटनाथ

जालन्धर ने चातिकनाथ रामसिह नामक गौड जातीय राजा को कालिय नदी के तीर पर ईश्वर दर्शन कराये थे। दडावती के आदिपुरी नगर के रक्त नामक पर्वत पर आपने तपस्या की थी। युगधर के खेत मे आपकी शक्ति से हीरे-पन्नो की खेती उग आई। एक जन्ममूक को उन्होने कवि बना दिया। कचन पर्वत पर योगी जालन्धर ने राजा रेनुक को एक खड्ग दिया जो नितात अद्भुत था। अपने बल से राजा रेनुक को उन्होने ब्रह्माड के दर्शन करा दिये। 'चारण' नामक व्यक्ति को 'दल' नामक पुत्र होने का वरदान दिया। रघुवश के एक राजा को अकेले लडने योग्य बना दिया, जिसका किसी बादशाह से युद्ध हुआ था।[2] यह युद्ध शायद यवनो से हुआ था। उसका भी इगित मिलता है। किन्तु यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि ये यवन मुसलमान ही थे। शेपाली मे जालन्धर ने अग्निधानी जलाई जहाँ एक राजकुमार को रामचन्द्र

1. योगिसम्प्रदायाविष्कृति।

2 एस० बी० वाल्यूम 6, गोपीनाथ कविराज।

जालन्धरनाथ

ज्वालेन्द्रनाथ के अनेक नाम है। उन्हें हाली या हाडिपा नाम से भी मिला दिया जाता है। शिव उदयनाथ ने रुद्रगण, एक योगी तथा अपनी शक्ति से एक दूसरे दुरात्मा जालन्धर को जन्म दिया। दुरात्मा को फिर वे सत्पथ पर लाये। जालन्धर ने दो शिष्य बनाए—एक मत्स्येन्द्रनाथ, दूसरा जालन्धरीपा। दूसरे ने पा पथ चलाया तथा मत्स्येन्द्रनाथ ने गोरक्षनाथ को अपना शिष्य बनाया। उसी कथा मे मत्स्येन्द्र की उत्पत्ति तथा गोरक्ष के गोबर से जन्म लेने के सम्बन्ध मे भी कहा गया है। इस कथा मे पा पथ के भिन्न रूप से चलने पर प्रकाश डाला गया है। ज्वालेन्द्र के सम्बन्ध मे किवदतियो की कमी नही है।

आप एक बार चन्द्रभागा तीर पर पहुँचे। फिर काश्मीर गए। जहाँ गहनिनाथ और नागनाथ अपने शिष्यो को दीक्षा दे रहे थे। यही आपने समाधि ली। ज्वालेन्द्रनाथ ने कारिणपानाथ को दर्शन दिलाने के लिए देवताओ का आह्वान किया। देवताओ की भीड उनके बुलाते ही आकर इकट्ठी हो गई, जो देवता नही आए ज्वालेन्द्रनाथ ने उन्हे प्रमत्त जानकर दड दिया।[1] ज्वालेन्द्रनाथ के प्रबल प्रताप से स्वय देवता तक भयभीत दिखाये गए है।

जालन्धर की किवदतियो मे गोपीचन्द तथा भर्तृहरि का नाम बहुत ही उल्लिखित होता है।

चर्पटनाथ

जालन्धर ने चातिकनाथ रामसिंह नामक गौड जातीय राजा को कालिय नदी के तीर पर ईश्वर दर्शन कराये थे। दडावती के आदिपुरी नगर के रक्त नामक पर्वत पर आपने तपस्या की थी। युगधर के खेत मे आपकी शक्ति से हीरे-पन्नो की खेती उग आई। एक जन्ममूक को उन्होने कवि बना दिया। कचन पर्वत पर योगी जालन्धर ने राजा रेनुक को एक खड्ग दिया जो नितात अद्भुत था। अपने बल से राजा रेनुक को उन्होने ब्रह्माड के दर्शन करा दिये। 'चारण' नामक व्यक्ति को 'दल' नामक पुत्र होने का वरदान दिया। रघुवश के एक राजा को अकेले लडने योग्य बना दिया, जिसका किसी बादशाह से युद्ध हुआ था।[2] यह युद्ध शायद यवनो से हुआ था। उसका भी इगित मिलता है। किन्तु यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि ये यवन मुसलमान ही थे। शेपाली मे जालन्धर ने अग्निधानी जलाई जहाँ एक राजकुमार को रामचन्द्र

1 योगिसम्प्रदायाविष्कृति।

2 एस० बी० वाल्यूम 6, गोपीनाथ कविराज।

नामक तलवार दी जिससे वह यवनो तथा पितृहता जोय वर्ग से लडा।[1] इस जोय शब्द का वास्तविक उच्चारण क्या है यह भी कुछ सदिग्ध-सा ही प्रतीत होता है। यादव जाति के कुछ भाटी भी जालन्धर की सहायता से पराजित हुए थे। जालन्धर के शिष्यो मे चर्पटनाथ का भी नाम आता है।

चर्पटनाथ

अनत वाक्य मे चर्पट को राजा कहा गया है। चर्पट की रचनाओ से यही लगता है कि वे परवर्ती काल मे हुए थे, क्योकि गोरख की रचनाओ से उनकी भाषा का भेद परवर्त्ती भाषा के समान होने से यही इगित होता है। चर्पट का समय उनके शिष्य साहिलवर्मा से, जो पजाब की पहाडियो मे चम्बा रियासत का राजा था, लगभग 920 ई० से कुछ पूर्व ज्ञात होता है। रजबदास ने चर्पट का चारणी के गर्भ से उत्पन्न होना लिखा है। गोरख शतक मे चर्पट मछदर के शिष्य कहे गए है।[2] प० सुधाकर द्विवेदी ने चर्पट शब्द का अर्थ मूर्ख (जो जबरदस्ती जोर से दूसरे की चीज छीन ले) लिखा है। नाथ साधुओ मे ऐसा नाम उनकी कीर्ति पर कुछ प्रभाव डालता-सा दिखाई देता है।

लकुलीश

971 ई० तिथि का एक लेख एक मन्दिर के सग्रह मे पाया गया है। उससे यही निश्चित होता है कि यह नाथ सम्प्रदायवालो का मन्दिर था। बप्पा के सिक्के पर कुडलधारी योगी का चित्र है। पीछे गाय है। गोरक्षा की भावना का इगित होता है। फलीट का उदाहरण देकर बताया गया है कि वह एकलिग लकुलीशो का मन्दिर है। गोरक्ष का लकुलीशो के साथ नाम है।[3]

अन्यनाथ नाथपद

दूतीयाग मे नाथदेव पद की[4] उपस्थिति से यह ज्ञात होता है कि 'नाथ'

---

1 एस० बी० वाल्यूम गोपीनाथ कविराज।

2. चारिणामध उत्पन्नो चरपटानाथो महामुनी।
उतिम योग धारण तस्मात् कि ज्ञाति कारणम्। —डा० बडथ्वाल

3 ब्रिग्स, गोरखनाथ एण्ड कनफटायोगीज,

4 श्रीउड्डीशपद दत्वा देवीमुड्डीश्वरी तत·।
नाथदेव पद दत्वा श्रीरक्तावा ततो वदेत
श्रीचर्यानाथमालिख्य पादश्रीपादुका तत,
पूजयामीत्युड्डियाने पूजयेद्धृदि सुव्रते
श्रीपादच समालिख्य जालधरपदतत,
महापीठ समालिख्य नादहीना रमा तत
जालेश्वरीपद दत्वा देविजालोशमालिखेत्।
नाथदेवपद दत्वा श्रीजालाम्बा पद्र तत

सम्प्रदाय का कोई रूप इससे अवश्य सम्बन्धित था। चर्यानाथ, श्रीपूर्णनाथ, उड्डीशनाथ, कामेश्वरनन्दनाथ तथा मित्रीशनाथ नामक नामो का सकेत मिलता है जो परवर्त्ती काल मे दूतीयाग के अभिन्न अग हो गए है। दूतीयाग का अर्थ, स्त्री के शरीर को समस्त शक्ति पीठो का एक आसन बना देना है।[1] इसी सम्बन्ध में जालन्धर का भी नाम आता है। जालन्धर पद के विषय मे यह नही कहा जा सकता कि यह जालन्धर व्यक्ति के सम्बन्धोत्पन्न पद व्याख्या है, या जालन्धर नामक शक्ति पीठ का कोई अभ्यास है जिस पर उसका नाम पड गया है। किन्तु इस प्रकार की कापालिकी साधना मे जालन्धर का नाम कोई अद्भुत बात नही है। यह जालन्धर के मत पर विचार करते समय प्रगट हो जाएगा।

जालन्धर का उल्लेख पद्मपुराण मे भी है। किन्तु वह जालन्धर हमारा उल्लेख्य नही है। आर० सी० मजूमदार के अनुसार कही-कही जालन्धरी (जालन्धर) का उडीयान के इन्द्रभूति के शिष्य के रूप मे वर्णन आता है। कही गोपीचन्द कथा से हाडिपा से वे एक कर दिये जाते हैं। ग्रुनवेडेल के अनुसार जालन्धर थाट भूमि के एक ब्राह्मण थे। तारानाथ ने उन्हे कृष्णाचार्य का गुरु तथा समसामयिक कहा है और गोपीचन्द कथा के हाडिपा से उनका सम्बन्ध जोड दिया है। तारानाथ और सुम्पा के अनुसार उनका वास्तविक नाम सिद्ध बालपाद था किन्तु नेपाल और कश्मीर के बीच किसी स्थान मे रहने से उनका नाम ऐसा पड गया। नगर थाट सिन्ध मे था जहाँ वे एक शूद्र व्यापारी के घर उत्पन्न हुए थे। वे उद्यान, नैपाल, अवती तथा चाटी ग्राम गए जहा गोपीचन्द विमलचन्द का बेटा राजा था।[2] डा० मोहनसिह ने भी इस बालपाद का उल्लेख किया है। गोपीनाथ कविराज ने भी इसका वर्णन किया है।[3]

श्रीशष्ठीशपद दत्वा नाथदेवपद तत ।

देवीश्रीपाद श्रीपूर्णनाथ देवपद तथा।
श्रीचामुडापदमामाष्य देवी श्रीपदमा लिखेत्
उड्डीशनाथमालिख्य देवपादपद तत ।
श्रीपादुका ततो दत्वा कामेश्वरीपद तत
देवीश्रीपद्माभाष्य कामेश्वरानन्दनाथच्च।
श्रीमहापदमाभाष्य तुष्टाम्बाश्रीपदतत.
मित्रीशनाथभःभाष्य पादश्रीपादुकातत ।

—दूतीयागविधि, सप्तम् तरग:, पृष्ठ ६००, पुरश्चर्यार्णव:।

1 शक्ते' सर्वशरीर यत् पीठ पूर्ण गिरिर्मत । —वही, पृष्ठ ६००।

2. हिस्ट्री आफ बगाली लिटरेचर, पृष्ठ 344-45 अध्याय 11, वाल्यूम 1।

3. गोपीनाथ कविराज, एस. बी, वाल्यूम, 60।

राहुल के अनुसार जालन्धर ब्राह्मण थे। कनुफा तथा मत्स्येन्द्र इनके शिष्य ने। कूर्मपा आपके गुरु थे। बलदेव प्रसाद का मत मत्स्येन्द्र और जालन्धर के सम्बन्ध मे इससे मिलता-जुलता ही है। जालन्धर पा (दूसरा नाम हाडी पा)। तारानाथ इन्हे धर्मकीर्ति का समकालीन मानते है। इन्होने पद्मवज्र के ग्रन्थ पर टीका लिखी तथा ये हेवज्रतन्त्र के अनुयायी थे। घटापाद के शिष्यसिद्ध कूर्मपाद की सगति मे आकर वे उनके शिष्य बन गए। इनके तीन पट्ट शिष्य थे। मत्स्येन्द्रनाथ, कण्हपा तथा ततिपा।

अन्य सिद्ध

ततिपा अथवा टेण्डणपा का राहुलजी ने देवपाल (विग्रहपाल) के समय (809=49=54) के अनुसार 845 ई० का समय लगाया है। ततिपा कुल के कोरी थे। राहुल ने इन्हे ब्राह्मण भी लिखा है। हजारीप्रसाद द्विवेदी टेण्डणपा को इनसे अभिन्न समझना ठीक नही मानते। ऊपर नागार्जुन का नाम परम्पराओं का विचार करते समय आ चुका है। नागार्जुन के विषय मे यह निश्चित नही है कि वह एक थे या अधिक। हजारीप्रसाद ने दो की ओर अपनी नाथ सम्प्रदाय मे इगित किया है। डाक्टर मोहनसिंह ने वोगेल को उद्धृत करते हुए 10वी सदी बताया है। अलबेरूनी मे नागार्जुन का सिद्ध रूप मे उल्लेख करते हुए उन्हे अपने से एक सौ वर्ष पूर्व हुए होगे ऐसा ही अदाजा लगाया है। अर्थात् लगभग 930 ई०।[1]

गोरक्ष की ऐतिहासिकता

तारानाथ के अनुसार बौद्धरूप मे गोरक्ष का नाम अनगवज्र है किन्तु हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार रमणवज्र, नवनाथो मे गोरक्षनाथ को एक आदि स्थल पर जो नही गिनाया है उसका कारण यह बताया जाता है कि गोरक्षनाथ (श्रीनाथ) से ही नवनाथों की उत्पत्ति बताई जाती है। इन्ही से ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश भी जन्मे हैं। विचारणीय बात है कि नवनाथो मे से एक भी न होकर भी गोरक्षनाथ मत्स्येन्द्र के शिष्य ही होते हैं।

पोथी रतन ज्ञान मे भी एक परम्परा दी हुई है। मछदर, गोरख, रतननाथ,[2]

---

1 डा० बडथ्वाल ने नागार्जुन और मत्स्येन्द्र के एक ही होने की सम्भावना प्रगट की है। भोटिया ग्रथों में नागार्जुन श्री पर्वत के निकट धान्य कटक के निवासी बताये जाते हैं। यह कारण स्पष्ट नही है।

1 मोहनसिह, डा० होरोविटज के अनुसार उनकी 12वीं सदी में मृत्यु मानते है। गोरखनाथ और बाबा रतन योगियों के 12 सम्प्रदायों के गुरु माने जाते है। पजाब, तिला में यह गाथा प्रसिद्ध हे। मत्स्येन्द्र के विषय में यह कहा जाता है कि वे बुद्ध की आज्ञा से नैपाल

धर्मदास, विशनदास, नरपत, लखमनदास, धर्मदास, गुरदास, जोधाराम, मथुरादास, सैनदास, भवानीदास, पजाबदास, या सिद्धबाई, गुसाई हरदास, गुसाई सेनदास, रतनज्ञान के लेखक ब्रह्मदास ।[1] गोरख, बाबा फरीद से मिले थे, जो 1244 मे गिरनार आये थे और 1266 मे जिनकी मृत्यु हो गई। वहाँ गोरख का मठ है।

गूगा

गूगा नामक व्यक्ति से गोरख का सम्बन्ध उनके ऊपर प्रकाश डालता है। गूगा के पूजक नीच जाति भगी, चमार है। पजाब मे गोरखनाथियो की समाधियो के पास ही उसकी समाधि है। गूगा की तिथि पर आगे विस्तारपूर्वक विचार किया जावेगा।

मेवाड मे बप्पा की तलवार अभी तक ससम्मान सुरक्षित रखी है। कहा जाता है कि यह उन्हे गुरु गोरखनाथ ने दी थी। गुरु गोरख के आशीर्वाद तथा शक्ति के कारण तलवार मे चट्टानो को काट देने की शक्ति थी। बप्पा के विषय मे कथा है कि उनका पालन जगलो मे हुआ, जहाँ वे गोरख को मिले और उनसे उन्होने तलवार प्राप्त की। जालन्धर ने भी तलवार दी थी। घटना मे ऐक्य और सामजस्य है। बप्पा का समय 8वी सदी लगाया जाता है। बप्पा गुहसेन की नवी पीढी पर था। गुहसेन की माँ पुष्पावती चन्द्रावती के परमार वश की थी जिसका अन्तिम राजा हूण था (ब्रिग्स)। आगे हूण राजा का उल्लेख फिर आवेगा।

कहा जाता है कि जब महाभारत के भीमसेन बर्फ पर मूर्छित पडे थे गोरख ने उन्हे चेतन किया और उन्हे गगा के मैदानी प्रदेश तथा भूटान का राजा बना दिया। एक और कथा के अनुसार गोरक्ष ने इन्हे नेपाल का राजा बना दिया। अलबेरूनी ने लिखा है (तिब्बती वश) ब्राह्मण राजा सामद (सामत), कमलू, भीम, जैपाल, (जयपाल) आनन्दपाल, तिरोचनपाल (त्रिलोचनपाल) ने राज्य किया है। शेषोक्त राजा सन् 412 हिजरी (सन् 1021 ई० मे) और उसका पुत्र भीमपाल इसके पाँच या छ वर्ष बाद (सन् 1026 ई० मे) मारा गया था।

मत्स्येन्द्रीय जाति

त्रिशूलगगा के समीप भगवान् नीलकण्ठ (एक जलाशय मे एक स्वाभाविक अडाकार शिला है) यात्रा करने आये थे। गोरक्ष से वहाँ मत्स्येन्द्रीय जाति

गए थे। कहीं बाहर से आये थे। कामरूप से सभवत. । कामाख्या में मन्दिर भी है। नासिक में कहते है कि मत्स्येन्द्र, मुक्तिनाथ नैपाल से आये थे। धर्मनाथ नामक गोरखनाथी दीनौधर कच्छ में 1382 ई० में आया था।

1. मोंहनसिह, गोरखनाथ एण्ड मिडिवियल हिन्दू मिस्टिसिज्म।

के लोगो ने आकर प्रार्थना की। यह जाति अभी तक नेपाल मे है।[1] लोगो ने कहा कि वर्तमान राजा महीन्द्रदेव बौद्धो का अधिक सत्कार करते है और हमे घृणा की दृष्टि से देखते है। गोरक्ष ललितपाटन के समीप जाकर भोगमती गगा पर ठहरे। कपाली लोगो के तथा योगेन्द्र के पारस्परिक परामर्शानतर आपने वर्षा बन्द करदी। तब आपको प्रसन्न करने के लिए मत्स्येन्द्र की यात्रा प्रचलित की गई। योगी चन्द्रनाथ ने इस उत्सव का वर्णन किया है कि वर्ष के पहले दिन मूर्ति को स्नान कराने के अनतर राजा की तलवार आपके चरणो मे रखकर पूजी जाती है। वहाँ एक मास तक निवास करने पर किसी शुभ मुहूर्त और पुण्य दिन मे मूर्ति वापस लाई जाती है। यहाँ वि० स० 420 मे वसतदेव या वसतसेन को नैपाल की गद्दी पर आपने प्रतिष्ठापित किया। इसी से गोरखा जाति का वपन हुआ। योगी चन्द्रनाथ ने पटियाला राज्यातर्गत भटिडा लायब्रेरी के नैपाल के इतिहास तथा मुरादाबाद निवासी प० बलदेवप्रसाद कृत इतिहास को भी उद्धृत किया है।

नैपाल कथा

नैपाल मे बौद्ध परम्परा की कथा मे मत्स्येन्द्र को अवलोकितेश्वर माना है। गोरख गुरु से मिलने नैपाल आये जो कमरी पर्वत पर रहते थे। गोरख न जा सके। नौ नागो को कछुवे के नीचे दबाकर 12 वर्ष के लिए बैठ गए। अकाल पड गया। राजा नरेन्द्रदेव के गुरु बन्धुदत्त अवलोकितेश्वर को मक्खी बनाकर लाये और बुगमा मे देवता को प्रतिस्थापित किया। गोरख का और कोई उल्लेख नही आता। वशावली पुराण के अनुसार मत्स्येन्द्र गोरख से मिलने वरदेव के समय आये। 8वी सदी का मध्यकाल, लेवी वरदेव के पिता नरेन्द्रदेव का वही समय बताते है। (ब्रिग्स)

किन्तु ब्राह्मण कथा के अनुसार गोरख एक बार नेपाल गए जहाँ उनका ढग से आदर तथा सत्कार नही किया गया। क्रुद्ध होकर उन्होने मेघो को बन्दी बना दिया तथा उन पर जमकर बैठ गए। वही अकाल पडा। सौभाग्य से गुरु मत्स्येन्द्र उधर से आ गए और शिष्य को गुरु की अभ्यर्थना मे उठना पडा जिससे बादल निकल भागे और वर्षा हो गई।

मत्स्येन्द्रनाथ लाललोकेश्वर के रूप मे पूजे जाते है। सानु मीननाथ नाम से उनके छोटे भाई की पूजा होती है। बागची का मत है कि मत्स्येन्द्र और बुगमा के लोकेश्वर को 14वी शताब्दी मे मिलाकर एक कर दिया गया। नरेन्द्रदेव के काल मे मत्स्येन्द्र का कोई उल्लेख नही किया गया किन्तु बन्धुदत्त की बुगमा यात्रा का वर्णन किया गया है। बागची समझते है कि उक्त साहित्य 15वी शताब्दी तक लिखा गया होगा।

1. योगि सप्रदायाविष्कृति।

ब्रिग्स के अनुसार गोरख ने नेवारियो के शासन का अन्त करवाया था और गोरखो को भूमि दी। 12 वर्ष का अकाल, गोरखनाथ ने अपनी शक्ति दिखाने के लिए ही डाला था।

रसालू

अब कुछ निकट सम्बन्धितो को भी देखना ठीक होगा। रसालू जालन्धर का शिष्य था। अनेक सम्बन्धो मे रसालू का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। वह एक चौहान राजा का पुत्र था। राजपूतो के बगर नामक स्थान के एक राजा को वह गोरक्ष के प्रसाद से प्राप्त हुआ था। वह लगभग 1150 ई० सन् मे जीवित था। वह पृथ्वीराज चौहान का समसामयिक था। 1024 ई० मे वह महमूद गजनी से युद्ध करते हुए मारा गया। यह एक भीषण योद्धा था।[1] 1884 मे टेम्पल ने रसालू को 8वी सदी का प्रमाणित किया है। 712 की महम्मद बिन कासिम की सन्धियो मे इसका नाम आता है। (ब्रिग्स)

पजाब मे कागडा नामक स्थान पर दुर्गा का प्रसिद्ध मन्दिर महमूद गजनी ने 1009 ई० मे लूटा था। इस प्रकार रसालू का समय 1009 ई० भी हो सकता है।

अन्य निकट सम्बन्धित व्यक्ति

गोरक्ष के विषय मे अनेक तथ्य है। यदि यह मान लिया जाए कि भर्तृहरि छठी शताब्दी मे था,[2] तो गोरख का काल छठी शताब्दी से भी पूर्व का नियत हो जाता है। गोरक्ष रानी लूना चमारी, आसाम (अथवा उडीसा) की रानी सुन्दरन झॉग के रॉझा (13वी शताब्दी), दिल्ली के रायपिथौरा के समसामयिक राजपूताना के गूगा पीर, पेशावर के बाबा रतन (11वी या 12वी शताब्दी) पश्चिमी भारत की ओर चले जाने वाले धर्मनाथ, राजा अजयपाल तथा वेनपाल, कपिल मुनि तथा बाल नाथ, हजरत मुहम्मद (छठी शताब्दी) लुहारीपा, सिद्ध इस्माइल, जायसी के पद्मावत के नायक रतनसेन के गुरु थे।[3]

यदि अजयपाल गुर्जर सोलकी था तो उसका समय 1173 ई० मिलता है।[4] तथा इस्माइली (मुल्तान) का समय 871—1000 ई० तक हो सकता है।

---

1 एस बी वाल्यूम 6, गोपीनाथ कविराज।

2- आर्कियौलौजिकल सर्वे आफ मयूरभज।

3 मोहनसिंह, गोरखनाथ एण्ड मिडीवियल हिन्दू मिस्टिसिज्म।

4 राहुल साकृत्यायन, हिन्दी काव्य धारा, अन्तिम चार्ट।

5. वही।

मोहनसिंह ने सूफी इस्माइल का उल्लेख किया है जो 1005 मे लाहौर आकर बसा, किन्तु यदि जफर सादिक के पुत्र इस्माइल से तात्पर्य है तो वह 762 मे मरा था। इस्माइल-अल-समानी ने 900 ई० मे खुरासान को, ट्रासोजियाना मे जीतकर मिला लिया था।

पूर्वोक्त रामचद्र तलवार का (जालन्धर के सम्बन्ध मे) यदि नाम सामजस्य से किसी प्रकार (गुर्जर) प्रतिहार गहडवाल (कन्नौज) वश से सम्बन्ध हो सकता है तो नागभट्ट द्वितीय (815 ई०) के अनन्तर रामभद्र का ही नाम आता है। राजा हरिश्चन्द्र का समय 1193 ई० है जो गहडवाल वश मे हुआ। गुर्जर वश मे सारगदेव का समय 1275 ई० है। नाथसिद्धो मे कुछ राजाओ का होना इगित होता है। यदि हरिश्चन्द्र और सारग सिद्ध का इनसे कुछ सम्बन्ध होता है तो यह समय निकलता है।

गूगा का गोरक्षनाथ से भी सम्बन्ध है। गूगा औरगजेब से लडा था। (1659-1707 ई०) गूगा फिरोजशाह से लडते हुए मारा गया (1351-1388 ई०) शाह दिल्ली का अधिपति था। टाड के अनुसार गूगा एक राजपूत था जो महमूद गजनी से लडता हुआ मारा गया (1024 ई०) । फीरोजपुर की किवदन्ती के अनुसार वह चौहान था। बिजनौर की किवदन्ती के अनुसार वह पृथ्वीराज चौहान का समसामयिक था जो 1192 ई० मे मुहम्मद गौरी से लडते हुए मारा गया। हिसार के 200 मील दक्षिण-पश्चिम मे गूगा के वशज गूगावत राजपूत बताये जाते है। अभयसिह के समय (1720-50) मे निर्मित मन्दौर मे एक चट्टान पर कुछ मूर्तियाँ है जिनमे 16 योद्धा है। जोधपुर के रावो की उस प्राचीन पीठिका मे गूगा घोडे पर सवार दिखाया गया है। गूगा मारवाड या वीर योद्धा था। वह मुस्लिम फकीर होने के पूर्व चौहान था, जिसका दूसरा नाम जहरा पीर भी था।[1]

यदि गूगा गुवक का अपभ्रश है तो चौहान वश मे गुवक प्रथम तथा द्वितीय दोनो ही विग्रहराज द्वितीय से बहुत पूर्व हुए थे जिसका समय 973 ई०

---

1 गूगा की कथाओं में गोरख का प्रभाव सापों पर भी चलता है। चन्द्रनाथ योगी ने भी कारिणापानाथ के सम्बन्ध में सॉपों का उल्लेख किया है। डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल का मत है कि कानपा या कणेरी जालन्धर का शिष्य था। हालोपाव कानपाव का ही दूसरा नाम है। टुची को उद्धृत करके आपने बताया है कि कणेरी का असली नाम आर्यदेव था। नाथरूप मे कणेरी वैराग्यनाथ कहलाते है। वज्रयानी ग्रथों में भी उनका नाम मिलता है। सम्भवत वे पहले नागार्जुन के शिष्य रहे हों। तदनन्तर मच्छिन्द्र के हो गये हों, नाथपथियों में सपेरों का पथ आधा ही गिना जाता है, क्योंकि इन्होंने योग मार्ग छोडकर आजीविका को ही प्रधानता दे डाली है। डा० बडथ्वाल में कणेरी की एक हिन्दी रचना का भी उल्लेख किया है।

है। कुल मिलाकर 100 पूर्व माना जा सकता है। जिसके द्वारा लगभग 973 ई० समय निकल आता है।

गोपीचन्द

गोपीचन्द का समय भी काफी उलझन डालता है। डा० कालिदास नाग के अनुसार 12वी शताब्दी तक गोरक्ष से गोपीचन्द के योगदीक्षा प्राप्त करने की कथा गुजरात मे प्रसिद्ध हो चुकी थी। भावे का मत है कि 12वी सदी मे महाराष्ट्र मे नाथ सम्प्रदाय फैल चुका था। उसे उज्जैन, रगपुर, धारा नगरी, कचनपुर का राजा कहते है। सुधाकर द्विवेदी का मत है कि यद्यपि लोग अपने गीतो मे गोपीचन्द को बगाले का राजा कहकर गाया करते है तथापि बगाले मे इस कथा का अल्प, और और ही प्रकार से प्रचार होने से, और राजपूताने मे तथा मालवा प्रान्त मे इस आख्यायिका का विशेष प्रचार होने से हो सकता है, यह गोपीचन्द राजपुताने या मालवे का कोई राजा रहा हो।

चन्द्रनाथ योगी का मत है कि गोपीचन्द की राजधानी धारा नगरी है जो कि मध्य प्रदेशीय मालवा प्रान्तस्थ माँडूगढ के समीप है, वे वग देशस्थ हेला-पाटन मे उसको नही समझते। गोपीचन्द की एक बहन चम्पावती चीन-बगाल मे ब्याही थी।[1] कचनपुर के राजा का समय 11वी शताब्दी है।[2]

हालदार के अनुसार पजाबी किंवदन्तियो मे गोपीचन्द उज्जैन का राजा है किन्तु उसका घर गौड बगाल है। गौड के विषय मे विद्वानो मे स्वय मतभेद है। कितने ही लोग ऐसे प्राचीन काल मे मध्य प्रदेश के निकटस्थ मानते है, हिन्दी किवदन्ती समान कहती है। बागची महोदय ने मराठी और गुजराती किंवदन्तियो की परीक्षा करके इस तथ्य का निष्कर्ष निकाला है कि गोपीचन्द गौड बग के तिलकचन्द्र का पुत्र था। बगाली परम्परा के अनुसार गोपीचन्द्र विमलचन्द्र का पुत्र था जो स्वय मालवा के राजा भर्तृहरि का भाँजा था।

गोपीचन्द बगाले के राजा थे। भर्तृहरि की बहन मैनावती इसकी माता थी। मैनावती के गोपीचन्द और चन्द्रावती, दो सन्तान हुईं। भाई के साथ मैनावती ने गोरक्ष से दीक्षा ली। चन्द्रावती का ब्याह सिंहल द्वीप के राजा उग्रसेन से हुआ। बालकराम जोगीसर के अनुसार बगाल के चन्द्रनगर के राजा से हुआ। समय 1027 ई० है। पिता के मर जाने पर गोपीचन्द भोग मे पड़ गया। माता के समझाने पर जालन्धर से दीक्षा ले कजरीवन गया। सिद्ध हो गया। पीछे से चन्द्रावती को भी योगिन बनाया।[3] पाल राजा जनता के चुनाव

---

1. योगिसम्प्रदायाविष्कृति।
2 मोहनसिंह, गोरखनाथ एण्ड मिडीवियल हिन्दू मिस्टिसिज्म, पृष्ठ 7।
3. योगिसम्प्रदायाविष्कृति।

से हुए थे । 8वी से 12वी शताब्दी तक, तीसरे राजा ने धर्म पूजा चलाई, इसमे रामाई पडित को देवपाल की बहन मैना ने सहारा दिया । अगले राजा ने पाशुपत मन्दिर बनवाये । देवपाल का समय 815 ई० है इसके बाद विग्रह-शूरपाल का समय 854 ई० ।

बगाल मे गोपीचन्द के गीत मानिकचन्द्र के गीत कहलाते है । मानिकचन्द्र गोपीचन्द का पिता है, मानिकचन्द धर्मपाल का भाई था । धर्मपाल का समय 759 ई० है । तुहफात-उल-करम मे गोपीचन्द (पीर पठाओ) सिन्ध के पीर अर का वर्णन है जिसने दयानाथ के अधिकार से पहाड़ छीन लिया था। ब्रिग्स के अनुसार यह समय 1209 ई० है । कराची से आगे चलकर 'पीर पुत्ता' नाम से मुसलमान, तथा 'राजा गोपीचन्द्र' नाम से हिन्दू एक बडी इमारत के खडहर को पुकारते है ।

भर्तृहरि

बगाली परम्परा का विमलचन्द्र तिब्बती परम्परा के अनुसार भर्तृहरि का समसामयिक था तथा धर्मकीर्ति का भी समसामयिक बतलाया जाता है । जो 7वी शताब्दी का समय है । भर्तृहरि की मृत्यु एक मत के अनुसार 650 ई० मे हो गई थी । प्रयाग प्रान्त मे चिनारगढ मे भर्तृहरि की धूनी आज तक विद्यमान है, जो प्रयाग से लगभग 50 कोस की दूरी पर मिरजापुर जिले मे है ।[1]

योगी चन्द्रनाथ के अनुसार उज्जयिनी के राजा चन्द्रगुप्त की पुत्री का एक ब्राह्मण से विवाह हुआ । उस ब्राह्मण के एक ब्राह्मणी से भर्तृ नामक पुत्र हुआ ।

भाई विक्रम क्षत्रिया से उत्पन्न हुआ था, विक्रम शालिवाहन से युद्ध मे मारा गया । इस विजय का स्मारक शालिवाहन ने सवत चलाया जो आज 1845 है ।[2] अत 1980 विक्रम सम्वत का प्रतिष्ठाता विक्रम शालिवाहन से लडने वाले विक्रम से 135 वर्ष पहले हुआ । ब्रिग्स ने 1076-1126 ई० समय लिखा है ।

भर्तृहरि ने पतजलि के महाभाष्य पर टीका भी लिखी है । योगीचन्द्रनाथ एक योगी के लिए इस बात को सभाव्य नही मानते ।

भर्तृहरि का पिंगला से सम्बन्ध है, एक कहानी के अनुसार पिगला नाम की स्त्री का पति परमारों का अन्तिम चन्द्रावती राजा एक हूण था । एक कथा के अनुसार रानी पिंगला धार (मालवा) के राजा भोज की पत्नी है, जिसका समय 1018-1060 है ।

---

1 योगिसम्प्रदायाविष्कृति ।

2. योगीचन्द्रनाथ के लिखने के समय, स० 1980 ।

चौरंगीनाथ

पजाब, पट्टी की हस्तलिखित प्रारत सकली मे चौरगीनाथ ने अपने को सालवाहन सुत कहा है।[1] यह ग्रथ काफी परवर्त्ती प्रतीत होता है। किन्तु इसकी भाषा मे प्राचीन बगला का प्रभाव दिखाई देता है। यह चौरगीनाथ ही योगी परम्परा मे पूरण भगत के नाम से ज्ञात है। गोरक्ष ने ही इन्हे दीक्षा दी थी। चौरगीनाथ ने ब्राह्मण गगदत्त को गगनाथ बनाया। जिस तालाब पर योग सिखाया वह खिलवाडी ग्राम से आध कोस पर दक्षिण दिशा मे वर्तमान है और देवबाला जोहड के नाम से प्रसिद्ध है, इस पर चौरगी की धूनी है। जिसके पूजनार्थ माघ मास की चतुर्दशी को साधारण मेला लगता है। यह स्थान खोकराकोट के समीप है। आजकल यहाँ प्रसिद्ध बौहर गद्दी योगाश्रम नामक स्थान है। डा० मोहनसिह चौरगीनाथ की प्राण सकली मे 'मीर' शब्द को अमीर का रूप समझकर सुबुक्तगीन (979-997) का अर्थ लगाते है। सभवत तब तक मीर काफी प्रचलित हो चुका हो या 1010 ई० के अब्दुलरहमान (मीरसेन या मीर हसन) का उल्लेख हो। डा० मोहनसिह ने चौरगी की इन पक्तियो को उद्धृत नही किया है।

गोपीचन्द के गीतो के गायक कुछ मुसलमान भी है, रगपुर की किवदन्ती के अनुसार राजा हरिश्चन्द्र की दो पुत्रियाँ थी, अदुना तथा पदुना। दोनो का विवाह गोपीचन्द से हुआ था। जी० सी० हलदार ने इस बात को गोपीचन्द की अन्य सम्बन्धी कथाओ के साथ रखकर दो तथ्यो की ओर इगित किया है। देखने पर यही प्रतीत होता है कि उस समय मुसलमान नही आये थे। दूसरे अन्य प्रान्तीय भाषाओ के भेद इतने मुखर नही हुए थे।[2]

दिनेश चन्द्रसेन ने गोपीचन्द को राजेन्द्र चौल के तिरुमलयवाले लेख के गोविन्दचन्द्र से मिलाकर 11वी शताब्दी का समय नियत किया है।

गुर्जर, प्रतिहार, गहडवाल, कन्नौज वश के गोपीचद का समय 1114 है।

प्रबधचिंतामणि प्रथम प्रकाश श्री मूलराज के प्रबध मे एक कथाडि का उल्लेख है। राजा को देखकर इस योगी ने अपना ज्वर अपने कथा मे ही सक्रमित कर लिया था।

मधुसूदन सरस्वती का गोरक्ष से कुछ सम्बन्ध बताया जाता है। उनका काल 1700 ई० के लगभग है। इसके अतिरिक्त ध्यानदास के पद मे भी

---

1. जैन मन्दिर, पट्टी। ए अपार श्री गुरू मच्छिन्द्रनाथ प्रसादे। इहकौं सिध सकेत बोलिये।

2. औरिएण्टल कॉन्फ्रेंस छठी, पटना, 1930।

गोरख का नाम आता है ।[1]

परम्पराओ से पहले विशेष महत्त्वपूर्ण नामों को देखकर चुन लिया गया है । तदनन्तर उनके विषय मे इगित करने वाली सामग्री को पूर्व अध्ययनो के फलो से एकत्र करके स्वय उनका विवेचन किया है । मत्स्येन्द्र जालन्धर, गोपीचन्द, कण्हपा, पूर्णनाथ, गोरक्ष, मैना, रसालू, गूगा तथा अन्य महत्त्वपूर्ण नामो से सम्बन्धित कथाओ, तिथियो और सम्बन्धो पर दृष्टिदात किया गया है ।

योग पथो मे बहुधा यह देखा जाता है कि नवीन सिद्ध प्राचीन सिद्धो के अवतार माने जाते हैं और उनके नाम भी तदनुसार रखे जाते है ।[2] प्राचीन से जहाँ श्रद्धा अधिक हो जाती है वहाँ प्राय ऐसा ही होता है । बार-बार पूर्व चेतना का आभास प्राप्त करने के लिए यह पुनरुत्थान का प्रयत्न किया जाता है ।

शंकर

यहाँ दो बाते और कह देना आवश्यक है । उस काल मे दक्षिण के ब्राह्मण पुनरुत्थान तथा इस्लाम के आगमन का कोलाहल था । डा० बडथ्वाल के अनुसार यह बात श्रुति परम्परा से प्रगट है कि नैपाल मे गोरख और मच्छन्दर का आगमन शकराचार्य के आने के बहुत पीछे हुआ । मैकडानल ने शकर का समय वि० स० 845-907 तकी निर्धारित किया है । इस विषय पर अधिकाश प्राय' एकमत है कि शकर का समय ई० सन् 8वी शताब्द का अतिम भाग है । आचार्य वेधुदत्त ने हिदू रीति-रिवाज से रहने का नैपाल मे आदेश दिया था । अर्थात् लोग हिन्दू रिवाज पहले से ही जानते थे । शकर का प्रभाव विद्युत्गति से फैला था । डा० बडथ्वाल ने वेदान्त के अद्वैत की छाप गोरख मे देखकर इस समय को 150 वर्ष के लगभग माना है । शकर ने नैपाल मे यदि बौद्धमत को पदच्युत कर दिया होता तो मच्छदर नाथ की वहाँ पूजा कैसे होती । शकर ने हलचल मचा दी थी । नाथ सप्रदाय ने उसे वहाँ पूरा किया । यही अधिक सम्भव लगता है । 150 वर्ष का लम्बा समय ठीक नही जँचता । शकर ने बुद्धिवादी वर्ग मे चेतना फैलाई थी और उसके लिए इतना लम्बा समय व्यर्थ है । शकर ने दिग्विजय की थी । वे जगह-जगह स्वय चलकर गए थे ।

---

1. जन कबीर पदवदि तू दत्त गोरष सुषदेव ।
   महादेव और भरथरी जे लारा हरिसेव ॥ —गुणग्रंथ कुण्डलयौ ।
2. डा० बड़थ्वाल, योग प्रवाह ।

गोरखनाथ का सबसे पुराना मदिर अलाउद्दीन ने ढहाया था। कहा जाता है कि यह मन्दिर बहुत पुराना था यहाँ तक कि उसके शिव जी के द्वारा त्रेता-युग मे बनाये जाने की बात भी कही जाती है । अलाउद्दीन का राजस्व काल 1353-1373 ई० है। इससे यही सिद्ध होता है कि नाथ सम्प्रदाय इन दो घटनाओ के अन्तर मे ही हो गया था।

डा० शहीद्दुला के अनुसार गोरक्ष का समय 8वी शताब्दी है। जिसे बडथ्वाल ने खडित किया है। इस प्रकार गोरक्ष 500 ई०, 700 ई० तथा 1000 ई० मे[1] तथा परवर्त्तीकाल मे भी मिलते है।

गोरक्ष का समय

पं० हजारीप्रसाद ने मत्स्येन्द्रका काल निश्चित किया है। प्र० च० बागची द्वारा सम्पादित कौल-ज्ञान-निर्णय का समय 11वी शताब्दी है । अतएव मत्स्येन्द्र उससे पूर्व हुए। अभिनव गुप्त का समय, उनकी बृहतीवृत्ति 1015 ई० से ज्ञात है। उनका क्रम स्तोत्र ई० सन् 981 समय का है। उन्होने मच्छन्द प्रभु को नमस्कार किया है। अत इस समय से भी पूर्व ही हुए। वज्रयानी सूची के अनुसार मीनपा का समय राजा देवपाल (809-845 ई०) नवम् शताब्दी का मध्यभाग है। जालन्धरपाद मत्स्येन्द्र के समसामयिक थे। राजेन्द्र चोल का समय 1063-1112 ई० है। अत उससे लगभग 100 वर्ष पूर्व रखने का औचित्य पूर्वोक्त समय पर ही पहुँचाता है। फर्कुहार 13वी सदी के प्रारम्भ मे गोरक्ष को मानते है। कथडी की कथा ऊपर देख चुके है। प्रबन्ध चिंतामणि के अनुसार वह 998 सम्वत् के लगभग है।

ब्रिग्स ने कबीर, नानक, सम्बन्धित कथाओ से गोरक्ष को उनका पूर्ववर्त्ती स्वीकार किया है। मुस्लिम आक्रमण के अनुसार गूगा, ज्ञानेश्वर इत्यादि की कथाओ से भी वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं।[2] बगाल की शैव बौद्ध परम्परा

---

1. गोपीनाथ कविराज, एस. बी. वाल्यूम ६।
2. गोरख, भरथरी, गोपीचन्दा, ता मन सौं मिलि करैं अनन्दा।
साखी गोरखनाथ ज्युँ। कबीर ॥

कबीर की गोरखनाथ की गोष्ठी में गोरख अपने को मत्स्येन्द्र के पुत्र तथा आदिनाथ के पौत्र कहते है। 17वी शती के रज्जब ने भी गोरख का नाम अपनी कविता में लिया है। आदि ग्रथ में भी गोरख का उल्लेख है। नानक (1469-1538) से गोरख ने योगी बनने को कहा है। जिससे ज्ञात होता है योगी सम्प्रदाय पुराना था। अमरदास 1552-74 के समय में सिख और योगी लडे थे जिसमें गोरख मदिर नष्ट हो गया था।

की जाच के अनुसार वे 1200 ई० के पूर्व ही समय नियत करते है। बल्कि 100 वर्ष और पूर्व ही अर्थात् 1100 ई० के लगभग । नेपाल की बौद्ध-शैव परम्पराओ से आपने समय को दूसरी ओर 7 या 8वी शती तक खीचा है। प्रवाद है कि शकर का प्रभाव पडा था। उन्होने ही मदिरा पान होने से योगियो को पतित कह दिया था। 1287 मे सोमनाथ के मन्दिर मे गोरक्ष पर लेख अकित होने से आप उन्हे 100 वर्ष पुराना मानते हैं।

डा० मोहनसिह ने हिन्दी साहित्यिक तथा ऐतिहासिक आधार पर निर्धारित किया है कि गोरक्ष का समय 11वी शताब्दी था।

उपर्युक्त समय निर्धारण के साथ एक महत्त्वपूर्ण स्रोत और देख लिया जाए। राहुल साकृत्यायन ने सहजयानी शब्दो का समय काफी खोज के बाद निर्णीत किया है। तिब्बती तथा भारतीय परम्पराओ को तथा भाषा वैज्ञानिक होने के नाते भाषा की परीक्षा करके भी अपने आधारो को प्रकट किया है। उन्होने हिन्दी-काव्य-धारा मे भी निम्नलिखित तिथियाँ दी है। सरहपा 760 ई० स्वयम्भू देव 790 ई०, लुईपा 830 ई०, विरुपा 830 ई०, डोबिपा 840 ई०, दारिकपा 840 ई०, मुडरिपा 840 ई०, कुक्कुरिपा 840 ई०, कमरिपा 840 ई० कण्हपा 840 ई०, गोरक्षपा 845 ई०।

शकराचार्य का जिनका गोरक्षनाथ पर कुछ प्रभाव मिलता है, समय 8वी शताब्दी का अन्तिम समय है। यह ऊपर देखा जा चुका है।

इस प्रकार अनेक तथ्यो को देखते हुए प्रस्तुत सामग्री इसी को स्वीकार करने को प्रेरित करती है कि मत्स्येन्द्र जो नवी शताब्दी के मध्यभाग मे हुए। गोरखनाथ उनके शिष्य होने के नाते, उन्ही के जीवन के पिछले भाग मे सम-सामयिक थे। जालन्धर का समय भी इससे प्रगट हो जाता है।

रामानुज

नाथ सम्प्रदाय पर वैष्णव प्रभाव का स्रोत जानने के लिए यही याद रख लेना ठीक होगा, कि रामानुजाचार्य का उदय 11वी शताब्दी के प्रारम्भिक समय मे हुआ था। अत गोरक्ष के समय से 11वी शताब्दी के प्रारम्भ तक (अर्थात् 847 से 1000 तक,) नाथ सम्प्रदाय का स्वरूप अपने प्रारम्भिक (847 से पहले) और उत्तर स्वरूप (1000 के बाद) से भिन्न हो सकता है। इसका इगित होता है। इसपर विचार किया जाएगा। गोरक्ष का समय इस प्रकार 600 ई० और 1100 ई० के मध्यकाल मे पडता है।

पूर्ववर्त्तियों का उत्तरी भारत तथा दाक्षिणात्य में प्रभाव—

प्रथम अध्याय मे गोरक्ष की पृष्ठ भूमि पर दृष्टिपात करते समय योग और तन्त्र का विवेचन हो चुका है। ऊपर वज्रयानी, सहजयानी सिद्धो का

वर्णन किया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय की किंवदन्तियो, घटनाओ से यह प्रकट होता है कि योगी सम्प्रदाय का गोरक्ष के पहले भी बहुत काफी प्रभाव था। एक ओर ह्रास प्राय बुद्ध मत था, दूसरी ओर ब्राह्मण धर्म उठ रहा था। उस समय इन दोनो से अलग एक सम्प्रदाय उठने लगा था जिसका अन्तिम स्वरूप गोरखनाथ के हाथो निर्धारित होने वाला था। विभिन्न परम्पराओ मे योगियो के नाम प्रगट करते है, कि योग के माध्यम के कारण एक ही व्यक्ति को अनेक-अनेक स्रोत स्वीकार करने मे नही हिचकिचाते थे। जनता अर्थात् साधारण जनसमूह इनकी सिद्धियो और चमत्कारो के कारण इनकी पूजा करने को भी प्रेरित होता था। थोडा-बहुत भेद करके इनका जाल उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक न केवल भारत की आधुनिक ज्ञात सीमा मे वरन तिब्बत तथा सीमाप्रात तक के पार तक फैला हुआ था।

यह विराट् दर्शन है। ब्राह्मण धर्म के अनेक रगीन फूलो के विराट् विस्तार मे यह एक अद्भुत वनस्पति प्रसार था जिसपर सस्कृति का विद्यार्थी दृष्टिपात करने पर यदि एक ओर विस्मित होकर अवाक् खडा हो जाता है तो दूसरी ओर मोहित हुए बिना भी नही रह पाता। इलियट ने ठीक ही एक मनोरम वन की सज्ञा दी है। कही विराट् वृक्ष की सम्पन्न छाया है तो कही एक अकेला वृक्ष सिर हिलाता हुआ हवा को चुनौती दे रहा है। ब्राह्मण धर्म के प्रभाव मे यदि सस्कृत ने भारत को बाधकर रखा था तो योगि सम्प्रदाय के भ्रमणो, भाषा के बोल और वचनो, योग के रहस्य की अनुभूतियो ने इस विराट् प्रसार भूमि को एकत्व के सूत्र मे—भावनाओ मे—बाध रखा था।

दत्तात्रेय सम्प्रदाय का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। यहाँ उसको दोहराने की आवश्यकता नही। केवल इतना कह देना काफी होगा कि उक्त सम्प्रदाय के काफी लोग उस समय थे जिनसे योगियो को टक्कर लेनी पडती थी। यह ऊपर कहा जा चुका है कि दत्तात्रेय मत के अनुयायियो का योग से सम्बन्ध अवश्य था।

महाकाल सहिता मे काश्यप, दुर्वासा, दत्तात्रेय, चन्द्रमा, बृहस्पति, विश्रवा, शक्ति, दक्ष, मुकडुज, नारद, कपिल, व्यास, कालाग्नि, जामदग्नि, दाक्ष, कविरथर्व, शाडिल्य, गौतम, मनु, नाचिकेता, भरद्वाज, श्वेताश्वतर, और्वी, दधीचि, च्यवन, ऋचीक, पराशर, शातातप, लोमश, जैगीषव्य, देवल, पैठीनसि, वीतिहव्य, सर्वति, अगस्त, आसुरी, उपमन्यु, मतग, वाजस्रवा, कठ, उद्दालक, आरुणेय, आश्वलायन, उत्तक, यवक्रीत, कात्यायन, ऋतश्रवा, इत्यादि वेदवेदाग पारगो का नाम गिनाया गया है, सम्भवत दत्तात्रेय कपिल जैसे थे। ब्राह्मणो को स्वीकृत, किन्तु कुछ सीमातक अलग भी।

दत्तात्रेय के जन्म के विषय मे पौराणिक कथा से कोई प्रकाश नही पड़ता।

केवल इतना समझा जा सकता है कि वे ब्रह्मा, विष्णु, महेश के सार स्वरूप थे। जीव दया उनके मत का आधार था। गोरक्ष सिद्धान्त सग्रह मे "दत्तात्रेयादि सिद्धानाम् नवनाथा तथैव च"। यहाँ नवनाथो के साथ उन्हे ऊँचा स्थान दिया गया है।

नाथ सम्प्रदाय के पूर्ववर्त्तियो पर प्रकाश डालने वाली योगिसम्प्रदाया-विष्कृति मे कुछ विचारणीय दतकथाएँ है। वारामलेवार मे मत्स्येन्द्रनाथ मे वेताल भूतो[1] के राजा को अपने वश मे किया क्योकि उसका औद्धत्य देखकर यह आवश्यक हो गया था। फिर क्षमा याचना करने पर उन्होने उसको छोड दिया।

गदातीर्थ मे मत्स्येन्द्र का अपने बडे भाई वीरभद्र से युद्ध हुआ। वीरभद्र के सर्पास्त्र प्रयोग करने पर मत्स्येन्द्र ने गारूडास्त्र का प्रयोग किया और उसे पराजित किया।

श्री महादेवी हिंगलाज पर्वत पर मत्स्येन्द्र को देवी के दर्शन निमित्त चढते देखकर अष्ट भैरवो ने उन्हे रोका। मत्स्येन्द्र ने अनुनय-विनय किया किन्तु उनके निरन्तर बाधा डालते रहने पर उनको बाँध कर पटक दिया। देवी के पास पहुँचने पर देवी ने 'मत्स्येन्द्र बेटा' कहकर अपनी गोद मे बिठाया और समझा-बुझाकर अष्ट भैरवो को बन्धन से मुक्त कराया।

रेवन नाथ जिस समय शिव से मिलने जा रहे थे तब अष्ट भैरवो ने उनके शिव तक पहुँचने मे बाधा डाली। आपको अत्यन्त क्रोध आया और आपने उनको युद्ध के लिए ललकारा। अन्त मे उन्हे पराजित करके शिव को सष्टाग प्रणाम किया।

गोरक्ष ने वीरभद्र को हटाकर ही अपने गुरु मत्स्येन्द्र के शव का उद्धार किया था। उस समय शिव ने वीरभद्र से कहा था, यद्यपि यह सत्य है कि तुम गोरक्षनाथ से किसी प्रकार निम्न कोटि मे नही हो तो भी अभिमान ने तुम्हे पराजित कर दिया।

जब गोरखनाथ ने मत्स्येन्द्र की घोर सेवा की तब 64 योगिनियो ने मत्स्येन्द्र की वन्दना की। इतने ही मे 52 भैरव 8 वसु तथा वरुण आदि··· आ पहुँचे और उन्होने वर दिए।

---

1 भूतों के अपदेवता के समान, अनेक जगह पूजा जाता है। कोल=दक्षिण किनारा के 'भूत नृत्य नामक लेख में एच० वैंकटराव ने लिखा हे कि भूत वे देवता या शक्ति है जो ग्रामीणो को भाईचारे के बन्धन में बाँधते है और उन्हें गृहस्वामी या गाव के मुखिया का सन्मान करने की प्रेरणा देते है, विवश करते है, यह गृहस्वामी या ग्राम-स्वामी भूतों की पूजा करने योग्य तथा उनकी कृपा के पात्र समझे जाते हैं।

—इलस्ट्रेटड वीकली आफ इण्डिया, 23 11-1947।

आडुल ग्राम मे भगवती भद्रकाली से युद्ध हुआ। तब गोरक्ष से शिव ने आकर समझौता कराया। भद्रकाली ने यह कहकर क्षमा माँगी कि आपका अपने कल्याण के लिए अनपेक्षित भी सिद्धि-चमत्कार मुमुक्षु जनो को अपनी ओर आकर्षित करने मे सहायक और इसी हेतु से अपेक्षित और अव्यर्थ है।

सेतुबन्ध रामेश्वर मे मत्स्येन्द्र की हनुमान से मुठभेड हो गई। मत्स्येन्द्र ने हनुमान से कहा कि इस पथ से हट जाओ कारण कि हम नाथ है और तू दास है, पर हनुमान तबतक नही हटे जबतक युद्ध मे चित्त नही हो गए। यहाँ भीम को सिद्ध देश मे जाने से रोकने वाले हनुमान का स्मरण प्रयोजनीय है। हनुमान सम्भवत सदैव ही सिद्ध अथवा उसके निकटतर सम्प्रदायो के विरुद्ध रहे थे।

आगे हनुमान के निमन्त्रण पर मत्स्येन्द्र ने सिहल द्वीप के राजा के शव मे प्रवेश किया था ताकि रानी की पुत्रोत्पत्ति की अभिलाषा को पूर्ण कर सके। तदन्तर वे स्वय मोह मे पड गए। वहाँ मत्स्येन्द्र के दो पुत्र हुए, परशुराम और मीनराम, गोरख ने गुरु का रखा हुआ शरीर देखा। जब योगी नियत समय पर समाधि न खोले तो समझना चाहिए कि समाधिष्ठाता ने दुगुना समय और सकल्पित कर डाला है। पर फिर गोरक्ष चले। हनुमान पहरे पर खडे थे, गोरक्ष ने अनुमान से युद्ध नही किया।[1] गोरखनाथ कलिंगा नामक वेश्या के साथ सिंहल मे घुस गए। सिहल की रानी पद्मिनी थी, यहाँ गोरक्ष ने मत्स्येन्द्र को छुडाया और मोहनिद्रा दूर की, परशुराम राजा हुआ। मीनराम योगी, हनुमान के लका मे योगी अवरोध के बाद योगियो ने फिर आना-जाना शुरू कर दिया।[2]

हनुमान का रक्षक होकर खडा रहना सम्भवत एक प्रसिद्ध बात थी। जायसी ने भी राजा रतनसेन की यात्रा मे इस प्रकार लिखा है।[3]—योगी लोग कहते है कि फिर आगे दक्षिण लंका के निकट (हम लोग) हनुमान की हाँक सुनेंगे। (उस हाँक को सुनकर) देखे कौन (साहस कर बिना घबडाए) पार होता है, (और) कौन (घबडाकर) वही रह जाता है। कहावत है कि जब रामचन्द्र लका को जीतकर इस पार सेतुबध के पास आए तब वहाँ के साधुजन बडे विनय से कहे कि कुछ काल बीते जब राक्षसो के सन्तान बहुत बढ जाएँगे तब वे लोग इस पार आकर हम लोगो को नाना प्रकार की पीडा देगे।

---

1 बुद्धिमत्ता के कारण या भय के कारण, तीसरा क्या विचार हो सकता है।

2. योगि सम्प्रदायाविष्कृति।

3 हनुमत केर सुनव पुनि हाका, दुहुँको मार होइ को थाका। पृष्ठ 138, सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित।

इस पर राम ने हनुमान को आज्ञा दी कि तुम अपने अश के एक दिव्य पुरुप को नित्य यहाँ का चौकीदार कर दो ।

किन्तु जायसी की स्वय भूगोल के विषय मे कोई दृढ धारणा नही थी । सम्भवत वे सिगल और लका को समीप समझते थे, या अलग-अलग । यह भी उनके एक दोहे से प्रकट होता है ।[1] सुधाकर द्विवेदी मे कजरी बन को महाभारत का ही कदली बन माना है जहाँ के लिए हनुमान ने भीम से स्पष्ट कह दिया था

बिना सिद्ध गति वीर गतिरत्र न विद्यते ।
(महाभारत वनपर्व एक 146 अ० 92 श्लोक)

प्रो० बागची तथा हजारी प्रसादजी ने इस विषय पर काफी मननपूर्वक अपना-अपना विचार प्रकट किया है, कदली वन का योगि सम्प्रदाय मे एक विशेष महत्त्व रहा है, सिंगल और लका को मिला देना आगे इतिहास के अन्धकार का ही फल प्रतीत होता है, इस विषय मे विस्तारपूर्वक न जाकर इतना इगित कर देना काफी होगा कि कदली बन मे भीम का जाना ब्राह्मण वर्ग को असह्य था, यह आवश्यक नही कि उस समय कजली बन का महत्त्व ज्ञात ही था, उत्तर पूर्व के इन प्रान्तो से चीनागम नाम से जो यक्षवाद फैला सम्भवतः किसी-न-किसी रूप मे वहाँ प्राचीन काल से पनपता चला आ रहा था, न केवल उसे शिव सम्प्रदाय के उच्चस्तर ने दुतकारा था वरन् आर्य सामाजिक व्यवस्था ने भी उसे अस्वीकार कर दिया था, हनुमान जैसे सैनिक रूप ने उसे रोक रखा था, यह अनुमान प्रस्तुत प्रमाणो पर ही आधारित है । चीनाचार की एक बौद्ध कथा है, चीन जाकर वसिष्ठ ने प्रार्थना की—हे महादेव, तुम जो बुद्धरूप मे अविनश्वर हो मेरी रक्षा करो, मुझे पूर्ण करो, वेदबाह्य आचार तुममे निहित है, वर सिद्ध दिगम्बर, रक्त पानोद्यत, मदिरा माँस खाकर अगनाओ का भोग करते है, महुर्मुहु प्रापिवन्ति रमयति वारागनाम् । ब्रह्मयामल मे वसिष्ठ देवी स्थान महान् तान्त्रिक पीठ कामाख्या जाते है, इसी मे महाचीन मे मदिरा पीते बुद्ध को विष्णुरूप कर वसिष्ठ ने सबोधन किया है, प्राचीन वैदिककाल मे भी पूर्व का देश अशुद्ध माना जाता था । लौकिक काल मे भी इसका उदाहरण मिल जाता है ।[2]

दूसरा विचार, योगी हनुमान के अतिरिक्त किसी को अपने योग्य नही समझ सकता क्योकि राम और कृष्ण इत्यादि ब्रह्मचारी नही थे, परवर्त्ती

1 एक बाट गइ सिंगल, दोसर लक समीप ।
हहि आगइ पथ दुअऊ,दुहु गवनँव केहि दीप ॥ 138 सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित ।

2 अगबग कलिंगेषु सौराष्ट्र मगधेषुच ।
तीर्थयात्रा विना गत्वा पुन संस्कारमर्हति ।

काल मे कृष्ण तो योगिराज के रूप मे स्वीकृत कर लिये गए थे, स्वय शिव को भी पार्वती के कारण कुछ मतो ने अस्वीकृत कर दिया था ।[1]

इस प्रकार हनुमान का स्वरूप या मत मानने वाले कुछ लोग अवश्य थे जिनसे योगियो की मुठभेड हो जाया करती थी । इस सम्बन्ध मे एक बात विशेष विचारणीय है, हनुमान पर गणेश की ही भाँति, सदैव सिंदूर क्यो लगाया जाता है, कालभैरव पर काला ही रग चढाया जाता है । सिंदूर मे पारा होता है ।[2] इस पारे का होना भी कुछ महत्त्व रखता है । पारा स्वय एक महत्त्वपूर्ण वस्तु है, इस सम्प्रदाय का कुछ रसेश्वर मत से सम्बन्ध रहा होगा ?[3]

ऊपर परम्पराओ मे दिये गए नाम तथा उपर्युक्त किंवदन्तियो का इगित निम्नलिखित तथ्यो को प्रकट करता है, बगाल के जोगियो के कुछ गोत्र यह प्रगट करते है कि गोरक्ष के पूर्व कुछ योगी हो चुके थे जिनका नाम इस प्रकार है । काश्यप, शिव, आदिनाथ, अलऋषि (अलमयान) अनादि, बटुक, वीरभैरव, मत्स्येन्द्र, मीन तथा सत्य ।

वीरभद्र, अष्टभैरव, भैरव, भद्रकाली इत्यादि अनेक सम्प्रदाय थे, जिनका परस्पर सघर्ष हो जाया करता था । शान्ति पर्व महाभारत का 285वाँ अध्याय इस ओर कुछ आलोक फेकता है । दक्ष ने यहाँ शिव की 1008 नामो से स्तुति की है । 'आपचड, कुंड, अड, अडधारी, दडी, दडि मुड है । आप धावमान, मुड, जटिल, नर्तनशील और गाल बजाने वाले है, आप सबसे पहले पूजा कराने की इच्छा नही रखते ।[4] आप गाने-बजाने मे सलग्न रहते है, आप चिताभस्म प्रिय हैं, कपालपाणि है, आप विकृत मुखवाले, खड्गजिह्व, दष्ट्री, कच्चे-पक्के माँस के लोभी और तुबी युक्त वीणा-प्रिय है । आप अघोर, घोर और अतिघोर रूप है, आप हूँ हूँ हूँ कार स्वरूप, हू हू कार प्रिय, शमदम आदि गुणो से युक्त और गिरि वृक्ष निवासी है, आप हृदय के माँस के लोभी है । आप केलि प्रिय और कलह प्रिय है, आपने ही भग देवता की आँखे और सूर्य के दाँत नष्ट किए है, इसी प्रकार बहुत-सी स्तुति करने पर शिव (रुद्र) दक्ष पर प्रसन्न होकर बोले, मैने पहले के कल्पो मे तुम्हारे यज्ञो मे विघ्न डाला, मैंने षड्गवेद, साख्य और योगशास्त्र से युक्ति द्वारा पाशुपतधर्म उत्पन्न किया है, इस स्थिति मे शिव के अन्य अनेक नाम भी आते है । जैसे ऊर्ध्वकेश, व्योमकेश, स्वय उन्हे एक स्थान पर (काम) कहा है ।

---

1. दक्षिण में शिव सेवक भृगा पार्वती की पूजा करना अस्वीकार करता था ।

2 मरक्री ऑक्साइड ।

3 हनुमान परवर्त्ती ध्वज पथ के मूल प्रवतक माने गए है, पेशावर के एक मन्दिर में भैरव हनुमान तथा गणेश की मूर्ति साथ-साथ रखी है ।

4. देखिए सम्पूर्णानन्द का गणेश, गणेश अपना पूजा कराना चाहते है ।

इनके अतिरिक्त भी अनेक सम्प्रदाय तथा मत उपस्थित थे।[1] जैसे कापालिक, कालभैरव, पाशुपत, भोडीकर दिगम्बर[2] अघोर, चीनाचार, कोल, औघड़, अटुक, भैरव, कथाधारी नीलक्रम तथा स्वय पूर्ववर्त्ती अवस्था मे नाथ सम्प्रदाय, इसके अतिरिक्त और भी भेद थे। कालामुखो मे कुछ लोग कालवीर थे तथा कुछ लोग कालमोहन।

ऊपर समय नियत करते हुए अनेक सिद्धो का काल व्यक्त हो चुका है। पूर्ववर्त्ती तथा परवर्त्ती ग्रन्थो मे आये नामो को एकत्रित कर लिया गया है। इस प्रकार से जो नाम प० हजारी प्रसाद की सिद्ध सूची से मिलते गए है उन्हे अलग कर लिया गया है। अनेक नाम स्वय उन्होने नही दिए है। जहाँ वर्णरत्नाकर की नाथ सूची की वज्रयानी सूची से पडित जी ने तुलना की है, उसमे के सभी मिलते हुए नाम अन्तिम सूची मे उन्होने नही दिए है। इसका कारण कुछ स्पष्ट नही होता।

ऊपर वर्णित अनेक पन्थो का उल्लेख सामने रखकर नामो का विभाजन करने मे सहायता ली गई है।

सम्प्रदाय की रूपरेखा

इस प्रकार गोरखनाथ का नाम 52वें स्थान पर आता है। राहुल जी के तिथि सवाद का आधार लिया गया है, यह आवश्यक नही है कि पूर्ववर्त्तियो मे निश्चय ही इस प्रकार अकन किया जा सकता है, तथा परवर्त्तियो का भी यही क्रम है। केवल इतना इगित होता है कि सूची मे पूर्ववर्त्ती और परवर्त्ती गोरख नाथ के नाम मे इधर या उधर इस प्रकार विभाजित किए जा सकते हैं। सम्भव है कि पूर्ववर्त्तियो और परवर्तियो मे अनेक व्यक्ति समसामयिक तथा स्थानान्तर मे थे। इन नामो से यह भी स्पष्ट नही होता कि परवर्त्ती काल के सभी सिद्ध गोरक्ष के अनुयायी थे। क्योकि विविध पथो मे विभिन्न मूल प्रवर्तक हो गए जिन्होने अपने-अपने व्यक्तिगत मतो को आधार बनाया। पूर्ववर्त्तियो के विषय मे भी ऐसा कहना काफी ठीक होगा क्योकि प्राय सभी मे भेद था। विशेषकर पूर्ववर्त्तियो मे अनेक सिद्धो का नाम वज्रयानी सूची मे आने से सदिग्धता बढ ही जाती है। क्योकि मत्स्येन्द्र और जालन्धर का एक ही मत नही था। न गोरक्ष का ही मत्स्येन्द्रनाथ के मत से पूर्णतया मिलता था। उनके भेद बहुत न होकर भी थोडे-बहुत परस्पर अवश्य ही थे। इसका कारण क्या हो सकता है,-ऊपर उसका, उल्लेख हो ही चुका है। अत सूची बनाते समय इस विषय को भी ध्यान मे रखा गया है।

---

1 शक्ति एण्ड शाक्त, वुडरोफ।

2 योगिसम्प्रदायाविष्कृति।

गोरक्षनाथ के पूर्ववर्त्ती समसामयिक तथा परवर्त्ती नाथसिद्धों की सूची
लगभग १३०० ई० पूर्व तक

1 आदिनाथ,	2 अनादिनाथ,	3 कालनाथ,
4 अतिकालनाथ,	5 करालनाथ,	6 विकरालनाथ,
7. महाकालनाथ,	8 कालभैरवनाथ,	9. बटुक,
10 भूतनाथ,	11 वीरनाथ,	12. श्रीकठ,
13 सति,	14 विरूपाक्ष,	15 कुक्कुरी,
16 धौम्भि,	17 कण्ह,	18 दारिक,
19 कमारकबल,	20 लुई,	21 धर्म,
22 भादे,	23 दडनाथ,	24 दत्तात्रेय,
25 दारि,	26 मथानभैरव,	27 सिद्धबोध,
28 काणेरी,	29 पूज्यपाद,	30 नित्यनाथ,
31 निरजन,	32 कपाली,	33 बिन्दुनाथ,
34 अल्लाम,	35 काकचद्रेश्वर,	36. प्रभुदेव,
37 कापालिक,	38 हालि,	39 उदयनाथ,
40 भैरव,	41 भूम्बरी,	42 ततिपा,
43 मलयार्जुन,	44 नागार्जुन,	45 ढेण्ढस,
46 जडभरत,	47 खडकापालिक,	48 मणिभद्र (योगिनी)
49 सत्यनाथ,	50. जालन्धर	51 मत्स्येन्द्रनाथ,
52 गोरक्षनाथ,	53 शवर,	54 सबर,
55 तिलोपा,	56 नारोपा,	57 गोपीचद्र,
58. कथडि,	59 करटक,	60 सुरानद,
61 सिद्धपाद,	62 चर्पटी,	63. घोडाचूली,
64 भानुकी,	65 नारदेव,	66 खड,
67 नागनाथ,	68 सतोष,	69 नीमनाथ,
70. ज्ञाननाथ,	71 कन्हडी,	72 भर्तृहरि,
73 अजपानाथ,	74. माणिकनाथ,	75 चामरी,
76 कनखल,	77 धोबी,	78 अचित,
79 चपक,	80 कामरी,	81. धर्मपायतग,
82. मद्र,	83. सिपारी,	84 कमलकगारि,
85. सूर्यनाथ,	86 सतोषनाथ,	87 चौरगी,
88. मेनुरा	89 भीम,	90 रेवानाथ,
91 निवृत्तिनाथ,	92. गाहनि,	93. घोरग,
94 तारक,	95 मेखलापा	96 चुणकरनाथ

जिन नामो को सूची मे विभाजित करने के लिए कोई प्रमाण नही मिलता उन नामो को, सदिग्ध विभाजन को, विस्तार न देकर अलग गिना दिया जाता है।

1 अक्षय,	2 अधोसाधव,	3 अजय,	4 अवध्य,
5 एकनाथ,	6 करवत,	7 काडालि	8 कुमारी,
9 कूर्मनाथ,	10 केदारि,	11 कोरटक,	12 गगन,
13 गमार,	14 गिरिवर,	15 गोविंद,	16 चाटल,
17 चाटरण,	18 विपिल,	19 जीवन,	20 जीवन,
21. टोगी,	22 ढेण्ढस,	23 तुजी,	24 देवदत्त,
25 दौली	26 चोगपा,	27 नागवालि,	28 नाचन,
29 नागबोधि,	30 निर्दय	31 नेचक,	32 पासल,
33 पलिहिह,	34 पातलीभद्र,	45 वाकलि,	36 भटी
37 भद्र,	38 भमरी,	39 भवनार्जि,	40 भल्लरि,
41 भानु,	42 भिषाल,	43 विचित,	44 विचित,
45 विभवत,	46 विरूपा,	47. विरूपा,	48 विविघथज,
49 वैराग्य,	50 शभुनाथ,	51 सहस्रार्जुन,	52 सारदानद,
53 सारग,	54 हरिश्चद्र		

प्रस्तुत तथ्यो मे नामो के अतिरिक्त और कोई महत्व प्रदर्शित नही होता, हॉ, इन नामो से नाथ सम्प्रदाय की महती शक्ति परिलक्षित होती है, 300 वर्षो मे ही लगभग इतने सिद्धो का हो जाना तात्कालीन प्रसिद्धि और प्रभाव का रेखाचित्र खीचने मे हमारा सहायक है।

इनके अतिरिक्त नानक की प्राणसगली मे आये नाम भी हजारीप्रसाद ने अपनी पुस्तक मे दिए है, जिनमे लुहारीपा का नाम वे छोड गए है, लुहारीपा को नानक ने गोरख का अध्यात्मिक सुत कहा है, भगरनाथ को ही सम्भवत उन्होने भगरनाथ लिखा है।

शावर मत्र पुरश्चरण मे जहाँ तत्रकार ने दूतीयोग के अधिकारियो का वर्णन किया है वहाँ उन्होने एक सिद्धनाथ सहिता से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

> अद्वैतज्ञानिष्ठोयो योऽसौ ससारपारग,
> स एव जगदे दूत्या नाधिकारी भवेदिति।

अद्वैत ज्ञान की यह निष्ठा तथा दूतीयाग से सिद्धिनाथ का सम्बन्ध यही इगित करता है कि वे नाथ सम्प्रदाय मे होकर भी शाक्त उपासना के प्रभाव क्षेत्र मे ही थे।

शाक्तप्रभाव

इसका वास्तविक कारण यही कहा जा सकता है कि शाक्त उपासना की प्रबलता ने इस समय के समस्त धर्म सम्प्रदायो को ग्रस लिया था। सिद्ध नाथ मे अद्वैत ज्ञान की यह निष्ठा तथा साथ ही दूतीयाग का अनुष्ठान दोनो की ही सहायता से यह निश्चय करना बहुत कठिन है कि ये गोरक्ष के पूर्ववर्त्ती थे या परवर्त्ती। शक्ति के स्त्रीस्वरूप ने उस समग्र यदि सारे ससार को ढँक लिया था तो अपने भौतिक आकारो मे आकर वह मात्र स्त्री देह मे सिमट गई थी, देवता के निराकार का प्रत्यक्षीकरण उस माध्यम से करना अधिक सरल है जो आँखो के सामने हो—साकार हो। स्त्री का समस्त शरीर ही शक्तिपीठ हो गया। उसका शिरश्चन्द्रभाग यदि उद्यान मे था[1] तो स्तन जालन्धर-पीठ कहाते थे और कामरूप मे भगस्थान माना जाता था। भारतवर्ष के विस्तृत प्रदेश मे जैसे शक्ति जमकर आ लेटी थी। यह वह स्थान थे जहाँ शिवा का तन कटकट कर टुकडे स्वरूप धरती पर पतित हुआ था। विन्ध्य से चट्टग्राम तक पूर्व का भाग विष्णुक्राता कहलाता था। विन्ध्य से दक्षिण का अश्वक्राता तथा बाकी भारत रथक्राता। रथक्राता की सीमा भारत की वर्तमान सीमाओ मे ही समाप्त नही होती थी। वरन वाह्लीक, गाधार, उद्यान तथा तिब्बत भी उसमे सम्मिलित थे।

तथापि काश्मीर गौड और केरल मुख्य पीठ थे जहाँ अनेक प्रकार से स्त्री की पूजा का विवरण तात्रिक पूजा के साथ-साथ चल रहा था। शक्ति सगम तत्र मे इन तीन पीठो की भिन्न रूपा पूजा का वर्णन किया है। परवर्त्ती युग मे इसका आभास इस प्रकार प्राप्त हुआ है—

कृष्णस्तु कालिका साक्षात राममूर्तिश्च तारिणी।
वराहो भुवना प्रोक्ता नृसिहौ भैरवेश्वरी
धूमावती वामन स्याच्छिन्ना भृगुकुलोद्भव
कमला मत्स्यरूप स्यात् कूर्मस्तु बगलामुखी
मातगी बौद्ध इत्येषा षोडशी कल्कि रूपिणी।[2]

—अर्थात् कृष्ण स्वय कालिका है, तारिणी राममूर्ति है। इसी प्रकार भुवना वराही, भैरवेश्वरी, नृसिह, वामन, धूमावती इत्यादि मूल ग्रथ मे सोलह प्रमुख-रूप गिनाये गए है। इनमे स्पष्ट ही वैष्णव प्रभाव दृष्टिगोचर है। इसके साथ

---

1 शक्ते सर्व शरीर यत् पीठ पूर्ण गिरिर्मत
तस्या शिरश्चद्रभागे उद्यानपरिकीर्तितम्
स्तनौ जालन्धर प्रोक्त कामरूप भग स्मृत।

2 मुण्डमालातत्र।

ही आगे चलकर जो कबीर मे राम के प्रति भावना पाई जाती है उसको शक्ति के आवरण मे लपेटकर इस प्रकार व्यक्त किया गया है —

गौरीरूपा परा सीता महासाम्राज्यनायिका।
राम पर शिवोज्ञेयो नाऽवतारो नरोऽपिच।
मत्पर ब्रह्म विख्यात तद्रामेत्यक्षरद्वय।[1]

—अर्थात् महासाम्राज्य नायिका सीता ही परागौरीरूपा है, राम ही परशिव है, न अवतार है, न नर है। जिसे ब्रह्म कहते है, वह तो दो अक्षर—राम मात्र है।

शक्ति मार्ग[2] मे उस समय अनेक क्रम हो गए थे। खड्गहस्त, बिखरे बाल सिरपर धारण करने वाले, सदा मास और आसव के उल्लासी, विजया-घूर्णितलोचन, सिन्दूर का तिलक भालपर लगानेवाले, हाथ मे मदिरा चषक रखनेवाले, रात मे घूमने तथा रात मे ही शक्ति की पूजा करनेवाले, योनि-चुम्बन तथा शक्ति आलिगन करनेवाले, और ऐसा न करने को पूजाहीन समझनेवाले, मुडमालामय, शवासनवाले, भूमध्य मे सिन्दूर बिन्दु मे स्वयभूमणि पत्रक रचनेवाले, रक्तचन्दन अथवा त्रिपुण्ड लगानेवाले नीलक्रम थे। श्मशानशायी, मासाशी, सचिदानन्दमानमी, स्त्रियोको देखकर, छूकर, दर्शन करनेवाले, स्त्रियो को ही सदा जपनेवाले, वेश्यारत, श्मशानस्थ, मृदुचूडकसयुक्त, दन्ताक्षमालामय, सिरपर गजदत की माला धरनेवाले, ताम्बूलचर्वक, कपाल माला धारक, रामाचुबन मे तत्पर, शक्त्यानद से हाला पीकर घूर्णित नयन-वाले, महानीत क्रम कहलाते थे। वे दिक्काल नियम से हीन, अस्थित, जपकाल नियम से विरक्त, आचार रहित स्वर्ग और मोक्ष से उपेक्षित, शववीरासन, योनित्वगासन, कामरूपासन, सुरतासन, सिन्दूरासन, पर्वताशन, प्रयोगासन, महा-प्रयोगासन, मे रत रहते थे।

ब्रह्मचीन, वीरचीन, दिव्यचीन, महाचीन क्रम बौद्ध थे। ये मानस शौच, मानसस्नान करने वाले, मानस पूजा, तर्पण नियम, दतधावन, सबको मानसरूप से करने वाले, सबको शुभ ही मानते थे। उनके लिए अशुभ कुछ भी नही था। दिवा रात्रि, सध्या महानिशा मे कुछ भी विशेष नही था। शुद्धि न करके ये निर्विकार घूमते थे। सभा मे गद्यपद्यमयी भाषा प्रयोग करने वाले, राजा और दास सबको भजनेवाले, सदा देवी के पूजक, अस्नात ही भोजन करने वाले, मत्र से बलि देने वाले, स्त्री द्वेष कभी न करने वाले, भक्ष्य द्रव्य और ताबूल मे अत्यत रुचिधारी, मास, मत्स्य, दधि, रौद्र सवित् आसवारस के सेवन मे

1 शक्तिसगमतत्र।

2 शक्ति सगम तथा वीरतन्त्र से सकलित।

निरत, दिक्काल नियमहीन, अर्चना तथा बलि से दूर, स्वेच्छा नियम, स्पर्श अस्पर्श से अलग, सिर मे तेल डालनेवाले, कपडे से बदन रगड कर साफ करने को ही स्नान समझने वाले, लबे बालो को काढकर धारण करने वाले, स्वेच्छाचार, धृष्ट मानस, धर्म और अधर्म मे अभेदी, सतोषी, हरि का नाम और तुलसी का स्पर्श न करने वाले, विल्वपत्र को वर्जित और यत्न से मरु को छोडने वाले, निन्दा और चिन्ता से दूर, साथ ही मद्य पीने वाले, मातगी से विहार, योनि से चुबन, लिहन इत्यादि मे रत, अनन्यधी योनि चिंता करके जप करनेवाले ये लोग होम इत्यादि से दूर रहते है।

एडी और मुख धोने को ही स्नान कहनेवाले, न अपनी देह को म्लान न मन को पापी समझवेवाले, द्वद्व भाव से छूटे हुए छिन्नमस्ता के पूजक, श्मशान-भस्मबिन्दुधारी, शक्ति के मुख मे मुख देकर जप करनेवाले दिव्यचीन क्रम मे थे।

भूमध्य मे कुकुम, उसके बीच मालयागरु, अष्टगधत्रिपुड मे कस्तूरी लगानेवाले, सुगधि, श्वेत लौहित्य पुष्पो से अलकृत, अष्ट गध धूप से भूषित रक्तमाला तथा अम्बरधारी, मुक्तहार से शोभित, सदा गर्म पानी से स्नान करनेवाले, गृह मे चित्र धरनेवाले, घटानादप्रिय, नानाघोष समन्वित, अत सूक्ष्माम्बरयुक्त, स्वर्ण पात्रादि से रजित, हार वलय, अगठी और आभरणो से भूषित, नाना मधुर भोजन करनेवाले, दुग्धपान और नाना भोग करनेवाले, गधर्वक्रम मे थे।

इनके अतिरिक्त थोडे-बहुत भेदो से भैरवक्रम, कमलाक्रम ब्रह्ममार्गक्रम, महाराजक्रम, दिव्यभावक्रम, धूम्रक्रम, सौभाग्यक्रम, वीरक्रम, पशुभावक्रम, गौड केरल काश्मीर सप्रदायक्रम विशेष उल्लेखनीय है। गौड मे वामासेवन, काश्मीर मे कौलिक प्रवृत्ति तथा केरल मे बलि अधिक मात्रा मे थी।

यही सक्षेप मे शाक्त प्रभाव का विराटरूप था।

व्यक्ति

व्यक्ति, जन्म तथा जन्मस्थान, जाति, रूप, गुण, समाज सेवा, निवास-स्थान, चरित्र, योग पथ, लोकायत दत्तात्रेय, पाशुपत, कापालिक, अघोर, कौलमार्ग, यौनवाद यक्षवाद, गुरु-उद्धार, नई साधना, मृत्यु।

व्यक्ति

ऊपर काल निर्धारित करते समय हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि मत्स्येन्द्रनाथ नवी शताब्दी के मध्यकाल के लगभग हुए और उनके जीवन-काल के परवर्ती युग मे समकालीन होने से गोरक्षनाथ का भी समय कुछ ही पीछे रहा होगा। यदि यह स्वीकार कर लिया जाए कि योगी दीर्घायु होता है। इसमे कोई आश्चर्य नही है। तो उनका समय दसवी शताब्दी तक पहुँच सकता है। गोरक्षनाथ का जीवन एक अत्यन्त दुरुह और जटिल तथ्यो का सामना है जिसमे किंवदन्तियो मे से ऐतहासिकता को फटक-फटक कर निकालना पडता है। उनके ऊपर अनेक विद्वानो ने खण्ड रूप से लिखा है। किन्तु उससे यह अनुभूति नही होती कि आखिर इस व्यक्ति का जीवन क्या रहा होगा, जिसका नाम गाँव-गाँव मे अटूट श्रद्धा और भय के साथ लिया जाता है। उनका क्षेत्र क्या था इस पर इस समय प्रकाश न डालकर आगे उनके प्रभाव मे इस पर विचार करना अधिक उचित होगा। वह योगी थे, महान् थे कि वह कवि थे या प्रचारक, परन्तु वह एक हाड-मास के भी पुतले थे जिसके ऊपर भी आपत्तियाँ तथा कठिनाइयाँ आती थी, यह उनकी किंवदन्तियो से ज्ञात होता है। उस अन्धकार भरे चरित्र मे भी मनुष्य की कोमल वेदनाएँ थी, यह एक सत्य ही है। व्यक्ति का दुरुह होकर उसके पीछे इतनी कहानियो का जुड जाना उसके प्रखर और प्रभावशाली व्यक्तित्व का ही द्योतक तथ्य है। यहाँ हम उनके जीवन पर विचार करते समय एक जीता जागता मनुष्य देखने मे ही अपना श्रेय समझते है। किन्तु अलौकिकता या चमत्कारो को बिलकुल ही अलग करके देखना एक असम्भव-सा कार्य दिखाई देता है।

जन्म तथा स्थान

गोरक्षनाथ का जन्मस्थान पेशावर का उत्तर पश्चिमी पजाब था[1] जन्म के समय वह चमत्कार निसन्देह आपके साथ नही थे जो कालान्तर मे ऐसे ही

---

1 हजारीप्रसाद ने नाथ सम्प्रदाय में अन्य स्रोतों का साराश इस प्रकार दिया है। उनके जन्म स्थान का कोई पता नही चलता। परम्पराएँ अनेक प्रकार के अनुमान को उत्तेजना देती है और इसीलिए भिन्न-भिन्न अन्वेषकों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न स्थानों को उनका जन्म-स्थान मान लिया है। योगिसम्प्रदायाविष्कृति में उन्हें गोदावरी तीर

जोड दिये गए जैसे अन्य महापुरुषो के साथ, उदाहरणार्थ गौतम तथा कबीर[1] के साथ। यह भारतीय मत सम्प्रदायो का ही नही अन्य देशो का भी एक गुण अथवा अवगुण रहा है, जिसका मूल तत्व अपने आपको अपने आचार्य के माध्यम से श्रेष्ठतर प्रमाणित करना ही समझा जाता है।[2]

के किसी चन्द्रगिरि में उत्पन्न बताया गया है। नैपाल दरबार लायब्रेरी में एक परवर्त्ती काल का "गोरक्ष सहस्रनामस्तोत्र" नामक एक छोटा-सा ग्रथ है जिसमें एक श्लोक इस आशय का है कि दक्षिण दिशा में कोई बडव नामक देश है वहीं महामन्त्र के प्रसाद से महाबुद्धिशाली गोरक्षनाथ प्रादुर्भूत हुए थे। सम्भवत. इस श्लोक में उसी परम्परा की ओर इगित है जो योगि-सम्प्रदायाविष्कृति में पाई जाती है। श्लोक में बडव का तात्पर्य शायद गोदावरी तीर का वाचक हो। क्रुक्स की दी हुई एक परम्परा, जिसे ग्रियर्सन ने भी उद्धृत किया है उसके अनुसार गोरक्षनाथ सतयुग में पजाब के पेशावर में, त्रेता में गोरखपुर मे, द्वापर में द्वारिका के भी आगे हुरमुज में और कलिकाल में काठियावार की गोरख मढी में प्रादुर्भूत हुए थे। बगाली उन्हे बगाल का मानते है। नैपाली परम्परा से लगता है कि वे पजाब से नैपाल गए थे। गोरखपुर के महन्त ने ब्रिग्स को बताया था कि गोरखनाथ टिला (झेलम पजाब) से गोरखपुर आये थे। नासिक के योगियो का विश्वास है कि वे पहले नैपाल से पजाब आये और फिर नासिक की ओर गए। ब्रिग्स ने टिला का प्राधान्य देख उन्हें पजाब का माना। कच्छ में प्रसिद्ध है कि गोरख के शिष्य धर्मनाथ पेशावर से कच्छ गए। धर्मनाथ परवर्त्ती है। ग्रियर्सन गोरख को पश्चिमी हिमालय का मानते है।

इसके अतिरिक्त मोहनसिंह का मत है कि वे पेशावर के निकट रावलपिण्डी जिले के एक गांव मे पैदा हुए थे। उस ग्राम का नाम गोरखपुर है। टैसीटरी का मत ग्रियर्सन का सा है।

मेरा अपना अनुमान है कि वे पेशावर के निकट ही हुए थे गोरखपुर नाम परवर्त्ती हो सकता है। उससे समस्या का हल नही होता। गोरक्षनाथ का सतयुग में पेशावर में होना कुछ इगित करता है। मुझे लगता है बाद के स्थान कीर्ति फैलने के लक्षण है। अधिकाश परम्परा या अनुश्रुतियों को देखते हुए ऊपर का हमारा निष्कर्ष सत्य से दूर नही लगता है।

1. माया के स्वप्न से गौतम हुए। कबीर कमल में तेज उतरने पर उत्पन्न हुए। गोदावरी गगा के समीप चन्द्रगिरि नामक नगर मे सुराज नामक वसिष्ट गोत्रीय ब्राह्मण को मत्स्येन्द्र ने चुटकी भस्म दी। गोरक्ष जन्मे। मत्स्येन्द्र के वर से गोरक्षोत्पत्ति का ऊपर वर्णन आ चुका है शिव ने एक बार उनके मर जाने पर उनके शव को भस्म करके फिर जीवित कर दिया। —योगिसम्प्रदायाविष्कृति।

निरजन निराकार ने गोरक्ष को भूस्वेद से बनाया। एक मत्स्य द्वारा गोरक्ष मत्स्येन्द्र के पिता हुए। मत्स्येन्द्र निर्जन में तुरन्त तप करने चला गया इस पर गोरक्ष को डांटा गया और उन्हे बेटे को ही गुरु बनाना पड़ा। एक कथा के अनुसार मोहिनी के प्रति कामातुर शिव के मत्स्येन्द्र हुए और एक गाय द्वारा गोरक्षनाथ। —बागची, कौल ज्ञान निर्णय।

2. परवर्त्ती काल में प्रायः भारत के समस्त ब्राह्मण विरोधी सम्प्रदायों ने अपने आपको वेदनिर्गत प्रमाणित करने की चेष्टा की है। —देखिये, नाथ सम्प्रदाय, हजारी प्रसाद।

वे किसी उच्च कुल मे नही वरन् किसी साधारण गृहस्थ के ही पुत्र थे।[1] जिसके विषय मे कोई बात विशेष महत्त्व की नही कही जा सकती, ऐसे माता-पिता की सन्तान ही से उनकी प्रसिद्धि का होना[2] उनके प्रति चार चाँद लगाने वाला सिद्ध न हो सका। गौतम के पीछे सामाजिकता होने से बौद्धो ने उनके विषय मे बहुत-कुछ लिखा-पढा। किन्तु गौरक्षनाथ के पीछे ऐसा कोई तत्व न था जो लिखता या पढता। यह सम्वाद आगे स्पष्ट होगा जब गोरक्ष के प्रभाव पर विचार किया जाएगा।

जाति

गौरक्षनाथ, बहुत करके, ब्राह्मण वश मे उत्पन्न हुए थे।[3] उनके सस्कृत

---

1 एक दिन गाय चराते समय गोरक्षनाथ को सर्प ने काट लिया।

—योगिसम्प्रदायाविष्कृति

अपने 'भारत में बौद्धमत के इतिहास' में तारानाथ ने लिखा है कि अपने नवयौवन में गोरख को अपने हाथ-पावों को फिर से प्राप्त करने के लिए जादू की शरण लेनी पड़ी थी जिन्हें गोरख की सौतेली माता ने बर्बरता से काट दिया था। किन्तु यह सत्य ही हो ऐसा आवश्यक नहीं है। पूरन भक्त की कहानी इससे ही मिलती जुलती है।

अधिकाश सिद्ध तथा योगी निम्न जातियों में से निकले थे। जिनके राजकुल या उच्च कुल का वर्णन है वह प्राय दिखाई दे जाता है। सासारिक बन्धनों को छोड़ देने के कारण ही उनके माता-पिता को कोई महत्त्व नहीं मिलता था। गुरु ही को पिता मान लेने की श्रद्धा-भावना से यह अन्वेषण और भी दुरुह दिखाई देता है।

2 सस्कृत में गोरक्षनाथ के अनेक ग्रथ प्राप्त हुए हैं, बहुत से इनमें से वास्तव में उनके लिखे हुए नहीं है बल्कि कालान्तर में उनके नाम के साथ जोड़ दिये गए हैं। सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति जिसमें लेखक का "नित्य नाथ" नाम मिलता है, विद्वानों ने उसे गोरक्षनाथ का ही ग्रथ माना है। इन ग्रथों से उनके कुल या सासारिक जीवन पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

इतना कहा जा सकता है कि बाल्यकाल में ही गोरक्षनाथ पर इन घुमक्कड़ नाथ-सिद्धों का प्रभाव पड़ चुका था और उनके चमत्कार तथा अद्भुत जीवन की ओर उनका कौतूहल बढ चुका था। ऊपर एक कथा में परम्परा से प्राप्त योगियों के प्रति गृहस्थों का अविश्वास हम देख चुके है समय आते ही वे घर से निकल भागे। योगिसम्प्रदायाविष्कृति से भान होता है कि योगी अपने पथ को सशक्त बनाने के लिए नित्य ही नये बालकों की टोह में रहते थे।

3. पडित हजारीप्रसाद का मत भी यही है, ब्रिग्स का अनुमान है कि वे पहले वज्रयानी भिक्षु थे। तदन्तर शैव हो गए। कारण है कि उन्होंने नैपाल के अवलोकितेश्वर को शैव कर दिया। तारानाथ के अनुसार वे पहले बौद्ध थे बाद में मुसलमानों के आने पर भय के कारण अपने को शैव कह कर राज्य क्रोध से बच गये। फिर यह भी एक महत्त्वपूर्ण बात है कि तिब्बती बौद्ध भी उन्हें धर्म त्यागी के रूप में घृणा की दृष्टि से देखते है किन्तु साथ ही उनको सम्मानित दृष्टि से देखा जाता है, यह इसी से प्रकट है कि उनका नाम सहजयानी सूची (राहुल, गंगापुरातत्वांक) में पाया जाता है, परवर्ती काल में तो उनका सम्मान बहुत ही बढ

मे पुस्तके लिखकर अपने मत को प्रतिपादन करने से यह विषय कुछ अधिक प्रमाणित होता है ।[1]

वे अत्यन्त सुन्दर व्यक्ति थे जिनके सौन्दर्य मे यदि एक ओर स्त्रियो का सा लावण्य था, तो दूसरी ओर पुरुषो की अखण्ड शक्ति भी उनमे प्रतिबिंबित होती है ।[2] उनके सिर पर जटाएँ थी। माथे पर भस्म लगी रहती थी । शृंगी

गया था । कायाबोध में जो गोरक्ष का लिखा समझा जाता है उन्हे पश्वारम्भक, पशुओं का मारने वाला, कहा गया है । उनके गुरु मत्स्येन्द्र मच्छन्द कहलाते हैं । यह ऊपर देखा जा चुका है । तब तो दोनों ही बौद्ध नहीं हो सकते, सम्भवत यही ठीक है । नाथ पथ और पा पथ के अलग-अलग होने की बात हम ऊपर देख चुके है । जालन्धर तथा कृष्णाचार्य पर बौद्ध प्रभाव रहा होगा, मत्स्येन्द्र के धर्म पर हम आगे विचार करेंगे । गोरख को "वदन्त गोरखनाथ जाति मेरी तेली" कहते भी पाते है, (सुकुमार सेन, प्रेमी अभिनन्दन ग्रथ) । आसामी परम्परा के अनुसार वे एक जुलाहा थे (मोहनसिंह, गोरखनाथ एण्ड मिडीवियल हिन्दू मिस्टिसिज्म) । मोहनसिंह इन्हे नीच जाति मानते है ।

1 सिद्धान्तों को सस्कृत में प्रचारित करने की यह रुचि परवर्त्ती सस्कृत प्रभावपूर्ण ब्राह्मण रुचि परिचायक दिखाई देती है । किन्तु इस पर कुछ विशेष नहीं कहा जा सकता, वज्रयान की अनेक पुस्तकें जो विनयतोष भट्टाचार्य द्वारा सम्पादित की गई है सस्कृत में ही लिखी गई है । सस्कृत ज्ञान उस काल में प्राय उच्च जाति की ओर इगित करता है । तथापि गोरक्षनाथ का शैवोन्मुख होना इसी की ओर अधिक इगित करता है कि वे ब्राह्मण थे उन्होंने अपनी उच्च दार्शनिकता से ब्राह्मण रूढियो को छोडकर बाकी सब को परिष्कृत करने का यथा साध्य श्रम किया । इसीलिए उन्होंने जन भाषा और सस्कृत दोनों को ही अपना माध्यम बनाया ।

2. पद्मावत में जायसी ने योगी के वेश का वर्णन इस प्रकार किया है —

तजा राज राज भा जोगी, अरु किंगरी कर गहेउ बिओगी ।
तन बिसम्भर मन बाउर लटा, उरुझा प्रेम परी सिर जटा ।
चन्द बदन अउ चन्दन देहा, भसम चढाई कीन्ह तन खेहा ।
मेखल सींगी चक्र धधारी, जो गोटा रुद्राछ अधारी ।
कथा पहिरि डड कर गहा, सिद्ध होइ कहँ गोरख कहा ।
मुदरा स्रवन कठ जप माला, कर उदपान काध बघछाला ।
पावरि पाय लीन्ह सिर छाता, खप्पर लीन भेस कइ राता ।
चला भुगुति माँगइ कहँ साजि किया तप जोग ।
सिद्ध होउँ पदुमावति (पाए) हृदय जेहिक बिओग । 128 ।

सुधाकर द्विवेदी की टीका इस पर विशेष उल्लेखनीय है, हजारीप्रसाद ने इसे अपनी 'नाथ सम्प्रदाय' में उल्लिखित किया है ।

तथा

शिव ने मत्स्येन्द्र को अपना रूप इस प्रकार दिया था । आज से पृथ्वी के समान धैर्य और क्षमावान होना । ज्ञानाग्नि से कुत्सित काष्ठ को भस्म कर दो, कह कर शिव ने भस्म

तथा योगियो के लिए आवश्यक वस्तुओ से सुसज्जित उनका व्यक्तित्व अत्यन्त भव्य दिखाई देता था। ऐसे कम ही महापुरुष होगे जिनके साथ सौन्दर्य का इतना भाव चित्रित किया गया हो।[1]

वे अपना रूप बदलने मे भी अत्यन्त कुशल थे।[2] सासारिक रूप से भी वह योगी होकर भी चतुर व्यक्ति थे, उनके यौवन काल मे स्त्रियाँ उन पर मोहित

विभूति स्नान कराया, फिर जल स्नान अर्थात् मेघ के समान रसदायक होना, समान वर्षा करना, फिर नाद जनेऊ पहिराया, नाद अर्थात् शब्द। जनेऊ ऊन का। योगी औरों से भिन्न है, कुण्डल पहराये, फिर दीक्षा दी। सावरी विद्या सिखाई। कुछ लक्षमन्त्रात्मक सवारी विद्या के बाद—वातास्त्र, कामास्त्र, पर्वतास्त्र, आग्नेयास्त्र, वासवास्त्र, गुरुडास्त्र, दानवास्त्र, मानवास्त्र में शिक्षा दी।

रेवन नाथ से यह सावर विद्या इन्द्र ने छल से सीख ली थी। —योगिसम्प्रदायाविष्कृति

ब्रिग्स ने भी प्राय ऐसे ही रूप-वेश का वर्णन किया है।

शिवानुमति लेकर गोरक्ष तप करने बैठा। इधर मत्स्येन्द्र जी ने, जिसमें पैर का अगूठा प्रविष्ट हो सकता हो, ऐसी एक लोहे की खोली तैयार कराई और एक दिन अच्छा मुहूर्त देखकर उसे गोरखनाथ के अगूठे में पहिनाया। —योगिसम्प्रदायाविष्कृति

1 गोरक्ष जब स्त्री बन कदली देश में पहुँचे तो स्त्रियों ने उन्हें उनका रूप देखकर मत्स्येन्द्र से मिलने नहीं दिया (ना० स०)। गोरक्ष ने अपने शिष्य, गहनिनाथ पूरन, इत्यादि को कानों में कुण्डल पहनाये, (यौ० स० आ० तथा ब्रिग्स)। कुण्डल की प्राचीनता एलोरा (8वीं शती) तक मिलती है। —ना० स० ब्रिग्स।

मो० वी० नारायण अय्यर ने कुण्डल मैत्री उपनिषद् में उल्लेखित बताये है सम्भवत वे काफी प्राचीन थे जो शिव के किसी रूप से सम्बन्धित थे।

2 ऊपर स्त्री वेष का वर्णन हो चुका है। एक बार किसी राजा की राज सीमा में घुमने के समय गोरक्ष नाथ ने पहरेदारों की दृष्टि से बचने के लिए मक्खी का रूप धारण कर लिया, एक और बार वे लोहा बन गए। किसी को भी ज्ञात नहीं हुआ। तीसरी कहानी में वे मैढक बन गए। ऊपर की कथाओं से ज्ञात होता है कि सदैव ही अपने चमत्कारों से काम नहीं लेते थे। अवसर देखकर बुद्धि से अवश्य काम लेते थे। इसके अतिरिक्त मानिकचन्द्र के गीत में गोरख का वर्णन करते समय उन्हें विद्याधर कहा गया है। वे हिमालय में शिव की सेवा में लगे हुए है, उनके पास अद्भुत घोर जादुई शक्तियाँ हैं। वे न केवल मनुष्यों से बहुत अधिक बुद्धिमान है, वरन् अत्यन्त शक्ति का भण्डार उनके पास है।

—(ब्रिग्स—गोरखनाथ एण्ड द कनफटा योगीज)

गुजराती कवि सत पीपा ने 17वीं शती में गोरखनाथ के स्त्री-माया त्याग की प्रशसा करते हुए लिखा है कि वे अमर हो गए जिन्होने गोरखनाथ का सा काम किया।

—आदिग्रथ, पृ० 952

गोरखनाथ अपने, मेखला, शृगा, सेली, गुदरी, खप्पर, कर्णमुद्रा कोपीन, कमण्डल, भस्म, व्याघ्राम्बर, झोला, इत्यादि में मग्न रहते थे।

थी या यह कहा जा सकता है कि उनको विजित करना स्त्रियों के लिए एक स्पर्धा का विषय था।[1] किन्तु अपने सौन्दर्य से स्वय गोरक्षनाथ को कोई आसक्ति नही थी[2] क्योकि वह उसे असत्य समझते थे। उनका शरीर सुगठित और स्वच्छ कल्मषहीन, पवित्र था।

गुणो की वे खान थे, उनमे महापुरुष के बतीसो लक्षण विद्यमान थे।[3] किन्तु उन्हे क्रोध बहुत शीघ्र हो आता है।

गुण

तिस पर भी उनमे धैर्य और शान्ति की मात्रा काफी अधिक थी।[4] माया

---

1. गोरक्ष के तप से पर्वत पर औद्गमनिक सुगध हुई, वसु ने इन्द्र को उस अद्भुत दृश्य को दिखाया। इन्द्र ने उस समय उनकी परीक्षा लेने को अप्सरायें भेजी, जो हारकर लौट गईं।

ऊपर हम चार सिद्धों और पार्वती की कथा को सक्षेप में लिख चुके है जहा पार्वती ने अपने रूप और यौवन से सब की परीक्षा ली थी उसमें केवल गोरक्ष ही उत्तीर्ण हो सके थे, बाकी तीनों को शाप मिल गया था।

2. वदन्त गोरखनाथ सुन मछन्दर तुम्हें ईश्वर के पूना।
ब्रह्म झारता जो नर राखे, सो बोने अवधूता। (पृष्ठ 145, गोरखबानी)।
भणत गोरखनाथ कायागढ लेवा, काया गढ लेवा जुगे जुगी जीवा।
काया गढ जीतिले गोरख अवधूता। (पृ० 134, गोरखबानी)

3. बनारस सस्कृत कालेज के पुस्तकालय में गोरक्षकृत ग्रथ के उत्तरार्द्ध में 44वें पत्र में 32 लक्षण लिखे है।

ज्ञान परीक्षा में	1. निरालम्ब,	2 निभ्रम,	3 निर्वास	4. नि शब्द
विवेक परीक्षा में	5 निर्मोह,	6 निर्बंध,	7. निश्शक,	8. निर्विषय।
विचार परीक्षा में	9 सर्वांगी,	10. सावधान,	11 सत्य,	12 सारग्राही।
निरालम्ब परीक्षा में :	13 नि प्रपच,	14. निस्तरग	15 निर्द्वन्द,	16 निर्लेप।
संतोष परीक्षा में .	17. अयाचक,	18 अयान्छक,	19 अमान,	20. स्थिर।
शील परीक्षा में :	21. शुचि,	22. सयमी,	23. शान्त	24. श्रोता।
सहज परीक्षा में ·	25 सुहृत्,	26 शीतल,	27 सुखद,	28 स्वभाव।
शून्य परीक्षा में :	29. लय,	30 लक्ष्य,	31 ध्यान,	32 समाधि।

—पदुमावति—2 सिंघल दीप वर्णन खड,

सुधाकर द्विवेदी तथा ग्रियर्सन द्वारा सम्पादित

गोरखवाणी में प्रथम दो निरालम्ब तथा निह्चल है शेष प्राय वही खण्ड 6 पृ० 249 परिशिष्ट 2। 32 लक्षणों की परम्परा गौतम काल में भी भारत में ग्राह्य थी।

—जातक आ० कौसलयन।

4. गोरक्ष पर अविश्वास करके एक शिष्य ने भोजन पक्ति में सांप पैदा किया जिससे उपस्थित जन-समूह में खलबली मच गई, गोरक्षनाथ ने क्रोध से उसे शाप दिया · सर्प ही तेरा

और मोह मे वे कभी नही फँसते थे। यह नही कि उन्हे माया मे फँसने का अवसर ही न प्राप्त हुआ हो, नही अवसरो की भीड को ठोकर मारने मे सामर्थ्य रखने के कारण ही वे कामजित कहलाते थे। इस विषय को उनके शत्रु भी स्वीकार करते थे।[1]

गोरखनाथ प्रारम्भ से ही समाज की ओर उन्मुख थे, इसी से उनके दर्शन मे इसका अद्भुत द्वन्द्वाभास मिलता है।[2]

समाज-सेवा

वे दरिद्रो के रखवाले थे, उन पर अत्यन्त करुणा और स्नेह करके भी वे अपने अहसानो को उन पर लादने के इच्छुक नही थे, सबका भला करना उनके

साथी हो, कारिणपानाथ ने अपने शिष्य पर दया करके सर्प को गोरक्ष से मन्त्रावरुद्ध करवा दिया। इस शिष्य की शिष्य-प्रणाली प्रचलित हुई जो सर्पेलिया, कारिणपालिया, कानवेलिया कहलाती है। —योगिसम्प्रदायाविष्कृति

घोरगनाथ सौराष्ट्र मे पट्टन गए, वहा आपने एक ग्राम के अपराध पर कई ग्राम जला दिये, गोरख ने सबको ठीक किया और ज्वालेन्द्र आदि योगियों के सामने आपका अपराध बताकर आपको 36 वर्ष तप करने का दण्ड दिया। वह स्थान बेट द्वारका से 3 मील दूर, पूर्व दिशा में है और नवनाथ 84 सिद्धो की धूनी नाम से पुकारा जाता है।

चन्द्रनाथ योगी ने वहाँ केवल धूनियाँ पाई थीं। —योगिसम्प्रदायाविष्कृति

जब गोरख ने दो शिष्यो को पूरन को कुएँ से निकाल लाने के लिए रस्सी लाने कारु के पास भेजा तो वे जादू से बैल बन गए। गोरख ने यह जानकर उन्हें भस्म फेंककर वापस बुला लिया। गोरख ने सब कुओं का जल सुखाकर अपने पास कर लिया। स्त्रियाँ जब पानी भरने आईं तो उन्हे मत्स्येन्द्र का नाम ले गधा बना दिया। जब उनके पतियो ने आकर विनती की तब उन्हे फिर से स्त्री बनाया। उन्हें दया आ गई थी।

—गोरखनाथ एण्ड द कनफटायोगीज, ब्रिग्स

भर्तृहरि एक बार जगल गए जहा गोरख तप कर रहे थे। उन्हें उनकी उपस्थिति के विषय मे कुछ ज्ञात न था। वहा उन्हे गोरखनाथ के शिष्य मिल गए जिन्होंने उनसे नाथ पथ में मिल जाने को कहा, भर्तृहरि ने कहा मुझे गोरखनाथ की क्या परवाह, यदि वह चाहे तो मुझसे परमात्मा तक जाने की बात सीख ले। अन्त में मुलाकात होने पर गोरखनाथ ने भर्तृहरि से कहा यदि मुझे तुम मुट्ठी भर शान्ति दे दो तो मैं तुम्हारा चेला हो जाऊँगा, तब भर्तृहरि एक मुट्ठी शान्ति के लिए देवताओं के पास गए जो उन्हे उनमें से कोई नही दे सका। अन्त मे जब वे विष्णु के पास गए तो उन्होंने कहा मे तुम्हें शान्ति नही दे सकता यदि तुम्हें शान्ति चाहिए तो तुम्हे इसके लिए गोरखनाथ के पास जाना होगा जो सन्तों में सर्वश्रेष्ठ है। तब भर्तृहरि ने गोरख को गुरु स्वीकार कर लिया।

1 पच्छिम दिशा से आई भवानी, गोरख छलने आई जियो। —यो० स० आ०

2 दर्शन के अध्याय में इस पर विचार किया जाएगा।

सिद्धान्तो मे से एक है ।[1]

उस समय की कुचाल से उनका हृदय अत्यन्त विचलित रहा करता था, जिसे वह दूर करना चाहते थे, किन्तु सामन्ती प्रथा मे यह वह सरलता से नही कर सकते थे । इसमे उन्हे अपने व्यक्तिगत प्रभाव से ही काम लेना पडता था । व्यक्तिगत प्रश्न होने से वह यद्यपि समस्या को सुलझा सकने मे असमर्थ थे, तथापि उन्होने तत्कालीन समाज मे अपने गुरुतर प्रयत्नो से जनसमाज के हृदय मे जगह बना ली थी ।[2]

---

1 मत्स्येन्द्र ने अन्नपूर्णा की कृपा से अन्न क्षेत्र खोला, गोरख आये फिर रम्मत पर चले ।

गोरखनाथ मानपुर (आधुनिक गोरखपुर) गए, वहाँ आपने चमत्कार से अन्न बाटा, लोग अत्यन्त विस्मित हुए । जनता की ओर से एक उचित स्थान बनाया जाकर इस बात का स्मारक चिन्ह खिचडी का चढावा प्रारम्भ हुआ ।

जब वे पूरन को कुएँ से निकालने गए तब उन्होंने कुएँ को पाताल-फोड करने की धमकी दी । गोरख से पूरन ने सत्य नहीं कहा और कुछ चालाकी की, अत उन्होंने योग की कठिनाइया दिखाकर पूरन को उसके पिता के पास वापस भिजवा दिया कि वह जल्दी में कोई गलत काम न कर जाए, तो भी वह लौट आया । राजा होने के स्थान पर उसे टिला जाना अधिक रुचिकर लगा । तब गोरखनाथ ने उसे दीक्षा दी, गोरख ने योगी की प्रतिज्ञा को अखण्ड कहा, योगी के वस्त्र लाल होने हे । मन स्वच्छ । बन से न लौटना । क्या योगी हर एक का मित्र होता है ?

—गोरखनाथ एण्ड द कनफटायोगीज, ब्रिग्स

2. हिरदा का भाव हाथ में जाणिये यहु कलि आई षोटी ।

बदन्त गोरख सुणौ रे अवधू करवै होई सो निकले टोटी ॥ 120 ॥ —गोरखबानी

कलि के प्रति यह अविश्वास उनमें जागरूक पाया जाता है । जो लोटे में होगा वही तो निकलेगा ।

तथा

बडे-बडे कूले मोटे-मोटे पेट, नही रे पूता गुरु सो भेंट । (पृष्ठ 38)

मोटे पेटवालों से उन्हे चिढ थी ।

अपना कार्य अलग छांटकर वह कहते है —

मूरिष सभा न बैसिबा, अवधू पडित सौ न करिबा बाद

राजा सग्रामे झूझ न करबा हेलै न बोड़बा नाद ॥ 121 ॥ (पृष्ठ 43)

डाक्टर बडथ्वाल ने इसका अर्थ इस प्रकार लिखा है । हे अवधूत, मूर्खो की सभा में नही बैठना चाहिए । पडित से शास्त्रार्थ नहीं करना चाहिए । उसका ज्ञानगर्व दूसरे प्रकार की मूर्खता है, वास्तविक समय नष्ट करना है । राजा से लडाई नही लडनी चाहिए । राजा उस क्षेत्र में शूर नही है जिस क्षेत्र मे साधक को शूर होना चाहिए । राजा के पास बाहुबल है किन्तु साधक के पास आत्मबल होना चाहिए । इसलिए दोनों मे स्पर्धा का भाव हो नही सकता । लापरवाही से नाद को नहीं खोना चाहिए । —गोरखबानी, पृष्ठ 43

गोपीचन्द गोरखनाथ को गिरनार से अपनी सहायता के लिए बुलाकर लाया। दयानाथ बडा सशक्त व्यक्ति था। उससे पहाड और गुफा को छीन लेना था। उसके पास एक ऐसी टोकरी थी जो अपने आप अस्तबल से लीद इकट्ठी कर सफाई कर देती थी। उसकी शक्ति से पहाड पर रहनेवाले 1,25,000 फकीरो की धूनी अपने-आप जलती रहती थी। उसके पास एक बैल था जो अपने-आप उसके पखल (पात्र) को कुएँ से जल लाकर भर देता था। समाही से, उसके पास भिक्षा-पात्र था, जो स्वय ही 1,25,000 फकीरो के खाने लायक भिक्षा इकट्ठी कर लाता था। उसके पास एक रस्सी और एक डडा था जो उसकी आज्ञा पर मनुष्य को बाँधकर स्वय पीटते थे। लेकिन जब गोरखनाथ निकट आए तब उसके यह सब चमत्कार ठडे पड गए। दयानाथ यह समझकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने पहाड को उठाकर आकाश मे फेक दिया। एक फूँक से उसने भीषण आग लगा दी और कच्छ की दीनोधर पहाडी की ओर चल दिया। गोपीचन्द (सिन्ध का पीर पठाओ) गोरख के पास गया और बोला आप यहाँ बैठे है, दयानाथ तो पहाड मे आग लगाकर चला गया है। आकाश और पृथ्वी के बीच मे धू-धू जलती उस भयानक आग की ओर गोरखनाथ ने देखा। आग बुझ गई और पहाड खड-खड होकर दो टूक पृथ्वी पर गिर गया। और तब गोरखनाथ ने देखा कि दीनोधर पर्वत पर योगी दयानाथ एक सुपारी पर शिर रखे शीर्षासन करता हुआ तप कर रहा था। यदि वह बारह मास तप कर ले तो तीन फूँक मे समस्त सिन्ध को उडा दे, तब गोरखनाथ ने अपना हाथ कच्छ की ओर बढाया, यद्यपि कोई उसे देख नही पाया और कान पकड़कर वे दयानाथ को सिन्ध लौटा लाये। गोरखनाथ ने दयानाथ से कहा लोगो को दु ख न दो मैं तुम्हे और तुम्हारे अनुवर्त्तियो को और परवर्त्तियो को वरदान देता हूँ कि उन्हे स्वच्छ श्वेत वस्त्रो और अच्छे घोडो की कमी कभी नही पडेगी। तब उन्होने दयानाथ को

इसीलिए उन्हे अपने चमत्कार दिखाने पडते है या कहा जाए कि उनके प्रभावों की अपरूप कीर्ति जनता में चमत्कार बनकर ही फैलती थी।

मानिकचन्द की गर्भवती विधवा मयना सती हो जाने के लिए विवश की गई किन्तु गोरखनाथ की अद्भुत शक्ति के कारण उसकी मृत्यु नहीं हो सकी। एक बार गोरखनाथ का रोभा से एक चुराये हुए शख के पीछे युद्ध हुआ तब गोरख ने अपने को एक बडा जादूगर कहा है और 70 सिद्धों से भी अपनी शक्ति अधिक होने का दावा किया है। —ब्रिग्स

जनसमाज से मेले में आपने कहा था योग जादू नहीं है।

क्योंकि हम किसी से कुछ लेते नहीं। —यो० स० आ०

उन्होने जनसमाज के भीतर जो अपनी जगह बनाई थी वह उनके प्रभाव अध्याय में स्पष्ट की जाएगी।

अपना शिष्य बनाया। कान फाडकर कुण्डल पहिनाये, काले डोरो का साफा सिर[1] पर रखा और दीनोधर वापस भेज दिया।

गोरख ऊँच-नीच का भेद नही मानते थे। कबीर को यह परम्परा बहुत कुछ अश तक उन्ही से सम्भवत प्राप्त हुई थी। धनी हो या दरिद्र, ब्राह्मण हो या शूद्र, बौद्ध हो या जैन, जहाँ तक मनुष्य का सम्बन्ध था, वे सबको समान दृष्टि से देखते थे। यह साम्यदृष्टि केवल हिन्दू समाज के लिए ही सीमित नही थी वरन् यवनो को भी उन्होने अपनाने का प्रयत्न किया था।[2]

---

1 ब्रिग्म ने लिखा है कि कामा के महन्त भेड की ऊन की पगडी बाँधते है। तब गोरख और पीर पठाओ मुरीदों के साथ एक पहाड पर आए, गोरख ने आज्ञा दी, कील गाडो, यदि नही गडी तो समझो यह पर्वत हमारे लिए नही है।

ठोस पत्थर की चट्टानो से भरे पहाड मे कील उतर गई और पीर पठाओ ने पहाड की एक गुफा में अपना निवास स्थान बनाया। —ब्रिग्स

2 गोरख के शिष्य निवृत्तिनाथ ने कहा था, मेरा कुल-अकुल कुछ भी नहीं है। मैं न ब्राह्मण हूँ न क्षत्रिय, न वैश्य, न वृषल ही, मै न पक्षी हूँ, न पशु हूँ, न जड, न वृक्ष ही। मै तो अगुण हूँ। भेदाभेद में मै नही हूँ निज रूप में हूँ। —ज्ञानेश्वर चरित्र

एक और शिष्य धुरन्धरनाथ गोरक्षगुहा (गोरख मढी) से चले, अजपानाथ नामक गोरक्ष के यवन शिष्य से मिले, फिर शलेमान पर्वत आये। फिर कटासराज तीर्थ पर आये, और तब लौपुर गए। फिर ज्वालादेवी (हिमालय पर्वतारम्भ) के मेले में सूचना दी कि बलि के नाम पर हिंसा न करो। कहा · जो स्वर्ग नरक न मानकर पुनर्जन्म नही मानते वे यवन हैं। हम शास्त्रीय सात्विक द्रव्य पूजा द्वारा एव मानसिक पूजा द्वारा ही देवी को प्रसाधित करेंगे।

उक्त कथा में यवन के साथ बौद्ध प्रभाव भी दृष्टिगोचर है तथा पुनर्जन्म न माननेवाले लोकायतों पर भी आक्षेप है। आगे इस विषय पर विचार किया जाएगा।

विक्रम सम्वत् 25 में द्वारकानिष्ठ योगी मध में गोरख ने धोरग को दड दिया। फिर गोरख अजपानाथ के साथ समुद्र तीर पर भ्रमण करते गाधार गए, यहाँ आपने कहा कोई भी जाति-मात्र कभी नीच या उच्च कोटि की नहीं बन सकती। यद्यपि ससार-मात्र में आज आर्य जाति सबसे उच्च कोटि और उत्तम कोटि गिनी जाती है, तथापि हम उसके प्रत्येक मनुष्य को उसके अनुकूल उत्तम दृष्टि से नही देख सकते है। आर्य जाति का तिर्य्यक् दृष्टि की पात्र यवन के भी प्रत्येक मनुष्य को हम तदनुकूल तिरछी दृष्टि से नही देख सकते है। इसमें कतिपय मनुष्य ऐसे हे जो मनुष्यो चित वास्तविक कितने ही कृत्यो में आर्यो से आगे बढ गये है।—गो०स०आ०

रसालू का तो तोता भी गोरखनाथ को अपना गुरु मानता था। —ब्रिग्स

उन्होंने राजा से कहा है —

सामिल राजा बोला रे अवधू सुणौ अनोपम वाणी जी। —गोरखबानी, पृष्ठ 153

चमत्कार-भरी किंवदन्तियाँ मिलती है। पार्वती ने शिव से एक भक्त को भस्म दिलाई, भक्त की पत्नी ने भस्म फेंक दी, शिव देखने गए, गोबर मे बालक मिला। वह गोरक्ष था। शिव ने उसे गुरु ढूँढने भेजा। गोरक्ष ने समुद्र मे पीपल के पत्ते पर रोटी अर्पित की। राखो नामक मत्स्य ने खा ली और बारह वर्ष बाद एक बालक दिया जो शिव की आज्ञा से मत्स्येन्द्र नाम से गोरक्ष का गुरु हुआ। (बागची) मत्स्येन्द्र बगाल के निकटस्थ चन्द्रद्वीप के वासी थे। (ना० स० तथा कौ० ज्ञा० नि०) गोरक्ष ने उन्हे अपना गुरु स्वीकार किया।

निवास-स्थान

गोरक्षनाथ का घर सारा ससार था। उनके कोई बधन नही थे। वे जहाँ चाहे घूमते थे। यात्राओ मे ही उनके जीवन की शक्ति दिखाई देती है। यहाँ तक कि आगे चलकर तो इतनी यात्राएँ उनके जीवन से जोड दी गई जैसे बीरबल के साथ '6 महीने की छुट्टियो' का अम्बार दिखाई देता है। निस्सदेह जहाँ आज उनका प्रभाव शेष है अधिकाश मे वे गए होगे यद्यपि बहुत-से मठ उनके बाद भी स्थापित हुए है। इनका विवरण आगे सविस्तार दिया गया है। गोरखपुर और गोरखा जाति, से गोरख नाम का विशेष सम्बन्ध है। कुछ लोगो का मत है कि यह दोनो नाम गोरख के नाम पर पडे हैं। एक मत है कि गोरखा जाति के नाम पर गोरखपुर बसा। हम इसे अधिक मान्य नही समझते। नैपाल मे शैव धर्म फैलानेवाले के नाम पर जाति का नाम असम्भव नही होते हुए भी एक अत्युक्ति-सी लगती है। इसके अतिरिक्त इस विषय पर प्रामाणिकता से कुछ नही कहा जा सकता। क्योकि स्थानो के विषय मे किंवदन्तियाँ बहुत मिल गई है। अत जो अब प्राप्त है उनका ही वर्णन उचित होगा। किन्तु जहाँ जाते वही उनका प्रभाव जमता था। कही भी सम्मान हीनता या उपेक्षा से उनका सत्कार नही होता था।[1] यदि होता था तो वे

---

1 गोरख ने राझा से कहा था मै पृथ्वी पर सोता हूँ। मेरे पास बिस्तर नही। ओढावन नही, मैं ककड-पत्थरों और बियावान में रहता हूँ। योगी तो निर्धन होते है। धन उनके पास नही होना। —ब्रिग्स

गोरख कनकगिरिग्राम, चन्द्रगिरि, हरिद्वार, चित्रकूट, पाटलिपुत्र, नेपाल, ब्रह्मदेश, उग्रा (हुगली), आसाम, बग, बिहार, उडीसा, मद्र, कजलीमठ, श्री त्रिमुख, गोमती गगा के जनक ब्रह्मगिरि कदरी (आधुनिक कजली), गोदावरी, सौराष्ट्र, मानपुर (आधुनिक गोरखपुर) धवल गगा, त्रिशूल गगा, तिब्बत, चीन, तुर्की, अरब, इत्यादि अनेकों जगह गए।—यो०स०आ०

इन यात्राओं में ही उनके साथ की अनेक चमत्कारपूर्ण दतकथाएँ सम्मिलित है। युद्ध, सघर्ष, सहायता देना इत्यादि अनेक बाते हैं।

इसके लिए दण्ड भी देते हुए नही चूकते थे। योगी मे अत्यन्त आत्मसम्मान की भावना थी।

शिष्यो की भीड साथ चलती। वे अकेले भी चलते थे।[1]

चरित्र

गोरक्षनाथ का चरित्र बहुन्मुखी था और प्राय कही भी वे निर्बल नही थे।

बालको से उन्हे स्नेह था। वे उन्हे प्रसन्न करके उन्हे खेलता देखने की इच्छा रखते थे। यह नही कि वे उन्हे डराते और उन पर भी अपने योग के चमत्कार दिखाते।[2] किन्तु युवको को वे अपनी ओर आकर्षित करने के इच्छुक

नैपाल कथा के ब्राह्मण स्रोत के वर्णन में हम उनके आत्मसम्मान की झलक देख चुके है। उसे यहाँ दुहराना आवश्यक नही।

राझा, रसालू तथा गूगा और गोपीचन्द और भर्तृहरि की कहानियो के सम्बन्ध में भी उनमें इस आत्मसम्मान तथा अपनी प्रचण्ड शक्ति का स्मरण बार-बार हो जाता है। उन्होंने स्वय एक कथा के अनुसार देवताओं को भी दण्डित किया था। शिव का नाम लेकर वे भैरव और काली से भी लड़ चुके थे। यह ऊपर वर्णित हो चुका है।

इसके अतिरिक्त गोरक्ष के साथ साप, बासुरी तथा नाद का कहानियां जुडी हुई है। कालान्तर में वे प्रेमियों के मिलन कारक सिद्ध हुए है, जो जोगी का रूप धरवाकर सामाजिक बन्धनो मे ढील न देते हुए उनके काम को पूर्ण करा देते थे। रसालू की एक कथा से यही प्रमाणित होता है। —ब्रिग्स

1. राझा से गोरख ने पूछा था भिक्षा मांगने मे क्या लाभ, यदि मनुष्य को विश्वास नही हो। वे ही आनन्द प्राप्त कर सकते हैं जिन्हे मृत्यु से प्रेम हो। धैर्य के घोडे पर चढ-कर, स्मरण की लगाम थामकर अच्छे आदमी अपनी वासनाओ का दमन करते है। योग का अर्थ जीवित में ही मृत्यु है। आत्महीनता के गीति गाने पड़ते है। अपने शरीर को ही वाद्य बना लेना पडता है। अपने अह को बिलकुल लय करना पडेगा। यह बालको का खेल नहीं है। परमात्मा ने इस मुट्ठी-भर धूल रूपी देह में अपना घर बनाया है। जैसे मनकों में डोरा होता है, उसी प्रकार वह सबमें व्याप्त है। वह ऐसे है जैसे भाग और अफीम का तत्त्व सत् हो। वह ससार के जीवन में ऐसे है जैसे मेहदी में लाल रग। वह मनुष्यों के शरीर में रक्त की भाँति व्याप्त है।

सीलादाई की कथा में महीता को भी ऐसे ही उपदेश दिये गए थे। गोरक्षनाथ के पानी मागने पर जब ब्राह्मणी ने इनकार किया तब गूगा ने उसके घड़े में तीर मारकर उसके घडे को तोड दिया। ब्राह्मणी भीग गई। गूगा के विवाह के समय गोरख के पास एक जादू का थैला था जिसमें से गोरख ने वह भस्म निकाली जो फैलाई तो वह हीरा, मोती, कपडे हो गई। गूगा के विवाह में गोरख वैभव से रथ पर चढकर आसाम गए। पालकी आलकी सब साथ था। वह कभी अकेले चलते थे कभी 400 चेले साथ, कभी 5000, जिसमे 200 दृश्य बाकी अदृश्य थे। —ब्रिग्स

2. एक कथा के अनुसार आपने एक बार बालकों की प्रार्थना पर मिट्टी के खिलौने बनाये, फिर उनमें प्राण फूक कर सेना बना दी, जिससे बालकों का बडा मनोरजन हुआ। किन्तु वैसे आप मोह से बहुत दूर थे।

थे। वे व्यर्थ जीवन गँवा देते रहने की आज्ञा नही देते थे। योगिसम्प्रदाय को बढाना उनकी इच्छा थी।[1]

वयस्का स्त्रियो के प्रति उनके हृदय मे अत्यन्त श्रद्धा थी। वे उनका माता के समान आदर करते थे। गोरक्षनाथ ने स्त्री को केवल माता के रूप मे ही देखा है, जो स्नेह से बालक को पालती है। जिसमे वासना नही रहती।[2]

युवती स्त्रियो को वह गार्हस्थ्य धर्म मे पतिव्रता के रूप मे देखने के इच्छुक थे। उसके कामी स्वरूप से उन्हे चिढ थी। वे उसकी वासना से घृणा करते थे। लडकियो का शीलपूर्ण होना उन्हे भाता था। स्त्री के प्रति उनका विचार उनके सिद्धान्तो मे बडा हाथ रखता है।[3]

---

1 योगिसम्प्रदायाविष्कृति में इस बात की ओर अनेक जगह इगित किया गया है। यद्यपि वह एक सुधारपथी योगी का लिखा हुआ ग्रथ है तथापि यह सम्भव है कि इतने सशक्त योगी में यह इच्छा अवश्य हो। गोरक्ष को शिव का अवतार ही इसलिए कहा गया है। ऊपर एक कथा में इस विषय का उदाहरण मिल चुका है। गोरखबानी मे भी ऐसे वचन है जिनका साहित्य के अध्याय में विवरण देना अधिक उचित होगा कि वह उन्हीं के है अथवा परवर्ती सतों के उद्गार है।

2 रांझा से गोरख ने कहा था युवती स्त्री को बहन और वयस्का को माता के नाम से अभिनन्दित करो। —ब्रिग्स

अत्यन्त खेद से उन्होंने एक स्थल पर कहा है।

जिन जननी ससार दिखाया, ताको ले सूते षोलें। (टेक, पृ० 144)

तथा .

धान दे गोरीए गोरष बाला माई बिन प्याले प्याला।
गिर्नान ची डाल्हीला पालषू गोरष बाला पौढिला।
देव लोकची देव कन्या मृत लोकची नारी,
पाताल लोक ची नागकन्या गोरषबाला मारी।
माया मारिली मावसी तजीली, तजीला कुटब बधू।
सहसार कवल तहाँ गोरष बाला जहाँ मन मनसा सुर सधू। (2)
आसा तजीला तृसना तजीला तजीला मनसा माई।
नौ षड पृथ्वी फेटि मैं घालौ गोरष रहीला मछिन्द्र ठाई। (46)

क्या गोरखनाथ के बधु बान्धव भी थे ? —गोरखबानी, पृ० 141

3. दासी नें नारी अरु, घर द्वारी, तुम्हे बेस्या ना करम न कीज्यौ रे
विधवा नारी नौ सग करेस्यो, तौ रोमि रोमि नरक पडीस्यौ रे
एक बूद के कारणि आप सवारथि, तुम्हें बाल हत्या फल लेस्यों रे
नर नारी दोन्यु नरकि पडिस्यौ घाणी घालि पडेस्यौ रे।
अजनि भूला निरजन चूका तुम्हे लीयां सालिम बालौरे।
मच्छिन्द्र प्रसादें जती गोरष बोल्या जीती सारिनहारौ रे। —गोरखबानी, पृ० 152

उपर्युक्त उद्धरण में कितनी यथार्थवादी व्यजना है। स्त्री को योग मार्ग में वे बाधक ही मानते थे। भर्तृहरि को उन्होंने झूठी खबर भेजकर अपनी रानी के सती हो जाने पर, रोते

वे नीरस ही नही थे[1]। कला मे भी उनकी रुचि थी। वे कवि थे। यद्यपि उनका काव्य योग पथ मे डूबा हुआ है, तथापि उसमे अनेक उत्कृष्ट स्थल है। सभी कवि किसी न किसी मत के प्रचारक थे।

शास्त्रो का अध्ययन सभवत उन्होने किया था अन्यथा 'अमरौघशासनम्' मे वे अन्य सम्प्रदायो का साराश इतनी स्पष्टता से शायद नही दे पाते। किन्तु पडिताऊपन को नीची चीज समझते थे। पढने से वह मुक्ति नही मानते थे। अक्खडपन ही हमे उनमे अधिक मिलता है, जैसे सारे ससार से उन्हे कोई भय नही है।[2]

हुए देखा। गोरख ने अपना मिट्टी का पात्र तोडकर रोना प्रारम्भ किया। भर्तृहरि ने कहा मैं तुम्हे नया दे दूँगा। तब योगी ने कहा यह असम्भव है। भर्तृहरि ने कहा—पत्नी, नई और पुरानी, मे भेद है। पात्र में क्या? यदि तू मुझे वही दे तो देखूँ। तब गोरख ने रानी को जीवित कर दिया। भर्तृहरि ने उससे आलिंगन नही किया और विरक्ति मे ससार से मुख मोड लिया। गोरखनाथ के पीछे चल पडा। —ब्रिग्स

भर्तृहरि को योग दीक्षा देने के पहले गोरक्ष ने 12 वर्ष उसकी परीक्षा ली। उसे अपनी रानियो से 'माता' कहकर भीख मागनी पडी थी।

1. योगी की नीरसता प्रसिद्ध हो है। गोरक्षनाथ ने राझा से कहा था (जब राझा उनके पास पाच रुपये और पान के पत्ते लेकर दीक्षा लेने आया था) जोगी का स्वाद तीता और तीखा होता है। तुम्हे योगी की भाँति सज्ञा लेनी पडेगी, मैले कपडे पहनने पडेगें, लम्बे बाल रखने पडेंगे या सिर घुटाना पडेगा, जीवन गुरु की याद मे बिताना पडेगा। कठ के बीच मे अपनी सास रखनी पडेगी। जन्म के आनन्द तुम्हे त्याग देने होगे। मित्रो के आनन्द और मृत्यु दुख को तुम्हें छोड देना पडेगा। स्त्रियों को देखना भी बन्द करना पडेगा। तुम्हे दैवी नशे मे कद, मूल पोस्त, अफीम खाकर झूमना पडेगा। तुम्हे ससार को एक स्वप्न समझना होगा। तुम्हे जगन्नाथ, गोदावरी, गगा, जमुना तक घूमना पडेगा। योग कोई सरल बात नही। तुम जाट योग प्राप्त नही कर सकते। मत्स्येन्द्र को गोरख ने माया के जाल से छुडाने को कहा है कि आप—

"नाचति जे गोर्खनाथ घुँघरेर रौले"। —गोरक्ष विजय, पृ० 187

—सुकुमार सेन, प्रेमी अभिनन्दन ग्रथ, 1946

न केवल नृत्य बल्कि घुँघरू बाधकर 'माया के फदे में' छूटिये परन्तु वैसे वे मस्त रहने के पक्षपाती थे जैसे "खेलिबा, हसिबा, गाइबा गीत"। —गोरखबानी

2 कैसे बोलो पडिता, देव कौनें ठाईं। निज तत निहारता अम्हे तुम्हे नाई।
पषाणची देवली पषाण चा देव, पषाण पूजिला कैसे फीटीला सनेह।। 1।।
सरजीव तेडिला निर्जीव पूजिला, पापची करणी कैसे दूतर तिरीला।। 2।।
तीरथि तीरथि सनाम करीला, बाहर धोये कैसें भीतरि भेदीला।। 3।।
आदिनाथ नाती मछीन्द्रनाथ पूता, निज तत निहारै गोरष अवधूता।। 4।।
—गोरखबानी, पृ० 131-32

योगपथ

उस समय योग माध्यम का प्रचलन अनेक पथो और मतो मे था। ऊपर योग की प्राचीनता पर प्रकाश डाला जा चुका है। गोरक्ष को योग की कितनी बडी पृष्ठभूमि मिली थी, यह उनके समसामयिक मतो को देखने हुए ज्ञात होगा।[1] अवधूत शब्द प्राय उस व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता था जो सासारिक जालों को छोड चुका है या उन पर विजय प्राप्त कर चुका है। डा० मोहनसिंह के अनुसार[2] अवधूत अब्राह्मण के लिए प्रयुक्त नाम है। विशेषकर उनके लिए जो जाति-बन्धन को स्वीकार नही करते। वे योग को या योग और भक्ति को स्वीकार नही करते थे। चाहे वे जोगी, सन्यासी, वैष्णव या वैरागी कोई भी हो। नानक के सिद्ध गोष्ठ मे ईशर निग्रही, गोरख औधूती, गोपीचन्द उदासी, भरथरी वैरागी तथा चर्पट पाखण्डी कहे गए है।

यह नाम अपने साथ विशेष अर्थों का द्योतन करते थे, यह निस्सन्देह एक सत्य है। उस काल के अधिकाश सिद्ध हमे निम्न जातियो के ही मिलते है जिन्हे कबीर ने गिनाया है। उनमे कुम्हरा, धोबी, चमरा, तेली, छतरी, बाघी, अवधू, बन्जारा, जुवारी, खेवट, नट इत्यादि है। जुलाहा जाति जो ब्राह्मण प्रभुत्व को अस्वीकार करती थी सामूहिक रूप से इसके प्रभाव मे थी। बौद्ध हो या शैव सबका मूल ध्येय ब्राह्मण विरोध था।[3] इस विराट् जन खण्ड पर शैव सम्प्रदाय नाथो के माध्यम से छाता जा रहा था।

तथा—

> कहणि सुहेली, रहणि दुहेली, कहणि रहणि विन थोथी।
> पढ्या गुण्या सूबा बिलाई षाया पडित के हाथ रह गई पोथी ॥ 119 ॥
> कहणि सुहेली, रहणि दुहेली बिन षाया गुड मीठा।
> खाई हींग कपूर वषाणौ गोरख कहै सब झूठा ॥ 120 ॥

—गोरखबानी, पृ० 42

1. रेवननाथ यमराज के पास गए तो उसने आपको ऊपर बिठाया और स्वयं नीचे बैठा। इन्द्र जो विद्या जानने में असमर्थ है वह योगी जानता है, योगी सर्वज्ञ है। गोरखनाथ के सम्बन्ध में यह देखा जा चुका है कि स्वय ब्रह्मा, विष्णु, महेश का सृजन श्रीनाथ जी ने किया था।

2 मोहनसिंह—गोरखनाथ एण्ड मिडिवेयल हिन्दू मिस्टिसिज्म, पृ० 42।

3. जुलाहा जाति पर ऊपर लिखा जा चुका है। राहुलजी ने जुलाहों का विरोध ब्राह्मण समाज की सकुचित व्यवस्था के विरुद्ध बताया है क्योंकि ब्राह्मण उन्हे ऊपर नही उठने देते थे। अपनी शक्ति उपासनाओं से जुलाहे ब्रह्मणो ने स्वीकार नही किए (जाति भेद के सकोच के कारण) या जुलाहे ब्राह्मण धर्म को स्वीकार ही नही करना चाहते थे। यह विवादास्पद विषय है।

लोकायत

उस समय लोकायत अपनी भग्न अवस्था मे शेष रह गए थे। भौतिकवाद जब निष्कृष्ट रूप मे अवस्थित था तब वह बौद्ध, योगी और शैव सप्रदायो से योग और तन्त्र के माध्यम से इतना मिल-जुल गया था कि उसको अलग ढूँढ लेना तनिक कठिन काम है। उनकी सिद्धान्त तथा विचारधारा उस समय खण्डो मे विभाजित हो चुकी थी। एक ओर यदि वह भैरवी चक्रो मे पलती थी तो दूसरी ओर श्मशान मे। और अध्यात्मतत्त्व के वे विरोधी अपनापन खोने लगे थे। शाक्त उपासना का अन्तर्भेद भी इतना अधिक हो चुका था कि महाशून्य भी उनके सम्मुख महास्थूल हो चुका था।

दत्तात्रेय से गोरक्षनाथ का युद्ध हुआ।[1] दत्तात्रेय मे भी अलौकिक शक्तियो का आभास पाया जाता है।[2] किंवदन्तियो से इंगित होता है कि दत्तात्रेय गोरक्ष के पूर्ववर्ती थे। गुरु को ढूँढते हुए गोरक्ष स्वकीय चिरकाल सहवासी समीपस्थ महात्मा दत्तात्रेय की गुफा पर गए। सिंघल से जब मत्स्येन्द्र के साथ गोरक्षनाथ लौटकर आये तब उनसे फिर मिले। दत्तात्रेय ने कहा क्या आप नही समझते हैं कि आत्मा का आत्मा साक्षी है। वह आत्मा समस्त देहो मे समरस होने के सबके हिताहित को जानता है, समझाता है।[3]

मेरा अनुमान है कि दत्तात्रेय का प्रभाव उस समय काफी था। यह परम्परा नाथ सम्प्रदाय पर ही नही रुकी वरन कबीर तक प्राप्त होती है। वेदान्त और शाक्त विचारधारा के बीच की प्रणाली ही सम्भवत दत्तात्रेय-पथियो की शक्ति थी। दत्तात्रेय के अनुयायी यदि एक ओर माया के सिद्धान्त का अपरिपक्व रूप मानते थे, तब भी वे शकर की भांति मुखर न होकर शाक्त दार्श-

---

1 गोरखनाथ और सन्यासी दत्तात्रेय में जब द्वन्द्व हुआ तब गोरखनाथ पानी में मेंढक बनकर जा छिपे। दत्तात्रेय घुसकर ढूँढ लाये। दत्तात्रेय की जब बारी आई, वे पानी बनकर पानी में समा गए। अब गोरख असमर्थ हो गये। —ब्रिग्स

गोरख की कबीर से भी द्वन्द्व में पराजय है। कबीर को जब गोरख ढूंढने मे असमर्थ हो गये तो उन्होने उसे स्वीकार किया। तब कबीर लोटे की टोंटी में से निकल आये। सम्भवत यह मतानुयायियों ने अपने मतों को श्रेष्ठ प्रमाणित करने के लिए कथाएँ प्रतिपादित की है।

2 सोमचन्द्र की पुत्री तथा परमारों के चन्द्रावती हूण राजा की पत्नी पिंगला को गुरु दत्तात्रेय ने एक बीज दिया था जो एक पौधे के रूप में उसे यह बताने में समर्थ था कि उनका पति जीवित था या मृत। वह बीज अश्वपाल कहलाता था।

3. समरस का विवरण नाथ सम्प्रदाय में भी आता है। क्या कारण हो सकता है कि वियोगि सम्प्रदाय में ऐसा विश्वास घुमा चला आया है। —यो० स० आ०, पृ० 180

दत्तात्रेय ब्राह्मण विचारकों में से स्वीकृत किये गए है। यह ऊपर इंगित किया जा चुका है। दत्तात्रेय यामल का उल्लेख प्राप्त होता है। दो श्लोकों में गुरु की महिमा प्रतिपादित की गई है।

निकता की ही भाँति माया को जड नही मानते थे । वे एक ओर योग की शुद्ध प्रणाली की ओर आकर्षित थे जिसमे सासारिक बन्धनो को छोडकर अपने को ऊँचा माना जाता था तो दूसरी ओर उनमे शक्ति का विलास अस्वीकृत था ।

पाशुपत

ऊपर पाशुपत शैवो का वर्णन आ चुका है उनके विभिन्न भेदो का भी उल्लेख हो चुका है । वाण और ह्वेनसाग ने पाशुपत को एक मुख्य मत लिखा है । इससे प्रगट होता है कि ईसा की 5 या 6 शताब्दी मे यह खूब मुखर रूप मे था । शकर ने अपने भाष्य मे उनकी आलोचना की है । क्योकि वे ईश्वर को ससारभूत का कारण नही मानते थे । शिव पशुपति है, उन्होने बिना कारण सृष्टि की है । पाशुपतो मे 5 ही पदार्थ माने जाते है । इनकी आध्यात्मिक दृष्टि द्वैतवाद की है । कार्य मे स्वातन्त्र्य शक्ति न होने से जीव 'पशु' बद्ध है । योग आत्मा और ईश्वर का सम्बन्ध है । इनमे क्राथन, स्पदन मदन, शृगारण, अवितत्करण, अवितत भाषण इत्यादि चलता था । दु खान्त ही निवृत्ति या मोक्ष था । उनकी (शिव) अपनी प्रकृति है जिसे चित्त शक्ति कहा जाता है । किन्तु पशु पाश से बँधा हुआ है । जो तीन प्रकार का है । आणव, अज्ञान, कर्म माया । यह माया भी शकर की माया नही है । दृश्य जगत् का प्रभाव डालने, धोखे मे डाल देने तथा ढक लेने के लिए यह माया है । शक्ति पशु मे निहित है जो अनुग्रह से जाग उठती है । त्रिपुण्ड्र सम्भवत तन्त्र का प्रभाव है । अथर्व शिरस् उपनिषद् मे पाशुपतो का विशिष्ट 'व्रत' आदि के नाम से जिक्र आता है । शिव के 18 विभिन्न अवतारो मे लकुलीश, आद्य अवतारो मे माने जाते है । अप्पय दीक्षित ने शैव तन्त्रो को वैदिक तथा अवैदिक (स्त्री-शूद्रो के लिए आवश्यक) रूप से द्विविधि मानकर भी दोनो का प्रामाण्य समान भाव से स्वीकार किया है ।[1] इस पाशुपत धर्म का नाथ सम्प्रदाय मे काफी प्रभाव था । शैव सम्प्रदाय की दार्शनिकता का रूप शकर से पहले का वही मिलता है जिसका सान्निध्य शाक्त विचारधारा से रहा है । शकर ने दार्शनिक रूप से उसे माँजने का यत्न करके उसे ब्रह्मण ग्राह्य बनाने का यत्न किया था किन्तु इसके पीछे तथा साथ एक विराट् परम्परा बन गई जो वे नही मिटा सके । पाशुपत न केवल भारत मे वरन् फारस, अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक अपने मन्दिर बनाकर उनमे उपासना करते थे । लिग पुराण मे यह तीन शाखाओं मे विभक्त है वैदिक, तान्त्रिक, मिश्र । (ताराचन्द)

गोरखनाथ ने जालन्धर और कनिपा को पराजित किया । गोपीचन्द कथा मे ज्वालेन्द्र जब कुएँ मे गिरा दिये गए तब उनके निस्सरण के समय गोरखनाथ

---

1 बलदेव उपाध्याय, विश्वभारती पत्रिका, आषाढ 1999 वि०

ने गोपीचन्द की मदद की थी। उन्होने दो मूर्तियाँ बनवाई और ज्वालेन्द्र के क्रोध से उन्हे भस्म करवा के गोपीचन्द को बचा लिया। इसी कथा मे ज्वालेन्द्र के वर से गोपीचन्द अमर हो गया।[1] यहाँ ज्वालेन्द्र की प्रबल शक्ति का आभास मुखर हो उठता है। इस कथा मे यह गोरख की शक्ति से हुआ क्योकि वे शिष्यो को शिक्षा देना चाहते थे। एक दूसरी कथा के अनुसार[2] गोरक्ष ज्वालेन्द्र को इसीलिए दबा लेते है क्योकि गोपीचन्द उनसे भयभीत था। गोपीचन्द के नगर मे (बंगाल मे) एक बडा फकीरो का जमघट था जहाँ गोरख आ गए। इस भीड से बचने को जालन्धर कुएँ मे जा बैठे और घोडे की लीद से अपने को ढक लिया। लीद को जितना ही साफ किया जाता वह उतनी ही रात को फिर कुएँ मे आ इकट्ठी होती। तब मयनावती ने यह सब कहा। मत्स्येन्द्र ने आकर खतरा बता दिया। तब गोरख ने लोहा, चाँदी, सोने की तीन मूर्ति बनवाकर जालन्धर को परास्त किया।

गोरक्ष ने मयना को वर दिया कि वह जल मे कभी नही डूबेगी। उन्होने एक कुएँ का पानी सोना कर दिया. फिर उसे स्फटिक बना दिया। गोपीचन्द की बहन को उन्होने जीवित कर दिया।[3]

जालन्धर से एक बार युद्ध मे आपने लीद को टीढी बना दिया, फिर मनुष्य रूप दे दिया। यह नया मनुष्य गोपीचन्द को माँगने लगा। सात बार वह भस्म कर दिया गया और अन्त मे गोरख ने उसे जीवित कर दिया। गोरखनाथ ने एक बार जालन्धरनाथ की शक्ति और स्थान को जीतना चाहा। उन्होने अपने एक शिष्य को भेजा जिसने जाकर विरोधियो के खाने के बर्तनो को तोड-फोड दिया, उनके बक्सो को नष्ट कर दिया और उनके शरीरो मे आग लगा दी।

ग्रियर्सन का मत है कि योगी हाडी नैपाल के पूर्व मे कनफटा योगियो के आन्दोलन का प्रतीक है। रनपुर मे कनफटा योगी पाशुपत है और गोरखनाथ को अपना गुरु मानते हैं।

हाडी और जालन्धर के विषय मे ऊपर विचार किया जा चुका है। हाडी जिसका उल्लेख गोपीचन्द के गुरु के रूप मे किया गया है, एक डोम था।

---

1 योगिसम्प्रदायाविष्कृति।

2 ब्रिग्स—पंजाबी—सान्निनाथकी कथा से, कथाओं से यह स्पष्ट नही होता कि शक्ति की परीक्षा के अतिरिक्त और भी इनमें आपस में कोई भेद था। जालन्धरनाथ का प्रभाव उस समय भी सम्भवत नाथपंथियों में था। यह भूलने का विषय नही था कि जिसे आज नाथ पथ कहा जाता है उसके प्रवर्तक गोरखनाथ थे। उनसे पूर्व इतना स्पष्ट भेद नही था।

3. ब्रिग्स के आधार पर।

भिक्षा खाकर उसने जब गोपीचन्द के लिए अपनी भूठन छोड दी तब दु ख और विषाद से गोपीचन्द ने उस खाने की ओर देखकर कहा मेरे कुत्ते जिस खाने को देखकर मुँह मोड लेगे, मै एक राजा, मुझे वह खाना खाना पड रहा है।

जब गोपीचन्द योगी बनाया गया तब वहाँ एक बडी भीड थी। गोरख फूलो से लदे रथ पर आए। गोपीचन्द ने कीमती उपहार वितरित किए। वैष्णव और शैव दोनो उपस्थित थे। बालनाथ भी वही थे। मयना गोपीचन्द की माता, १६०० साधुओ को लाई थी। फूलो लदे रथ से विद्याधर गोरखनाथ उतरे। वहाँ कनफटे हार्डी सिद्धो की सख्या की कोई गिनती नही थी। वे अनेक थे।

मयना के द्वार पर गोपीचन्द ने जब पत्ते तोडे तो मयना ने कहा पत्ते भग न कर, उनके शरीर मे दु ख होगा। गोपीचन्द ने 'श्रीकृष्ण' कहा और खाने बैठ गया।[1]

कापालिक

गोरक्षनाथ का जालन्धर से अनेक बार युद्ध होने का क्या कारण है ? यह अनुमान करना भूल नही होगा कि जालन्धर मे यदि बौद्ध प्रभाव अवशिष्ट था तो नाथ सम्प्रदाय के शैव रूप मे गोरक्षनाथ हुए थे। एक कथा के अनुसार जालन्धरिपा या हाडिपा शिव के शापवश पारीका भुवन (या मेहारकुल) मे राजा गोविन्द चन्द्र और उनकी सिद्धा माता मयनामती के घर नीच कर्म किया करते थे।[2] शैव सम्प्रदाय से उनका यह सम्बन्ध गोरखनाथ का बुद्ध धर्म से भ्रष्ट होने की कथा से बहुत मिलता-जुलता है। किन्तु जालन्धर इस स्थान पर भी एक बहुत बडे सिद्ध माने गए है। मालतीमाधव मे, हजारीप्रसाद ने उद्धृत करके बताया है, बौद्ध होकर भी शैव कापालिक के पास कपालकुण्डला जाती है। यह समानता योग और शाक्त उपासना के अतिरिक्त और किस ओर इगित करती है।

ऊपर जालन्धर पद की अन्य कथाओ का उल्लेख किया जा चुका है। राहुल जी ने इन्हे भोटिया ग्रन्थो के अनुसार आदिनाथ कहा जाना भी उल्लिखित किया है।[3] ऊपर कापालिक आचार्यो का नाम भी आ चुका है। कापालिक

1 इस कथा में बौद्ध प्रभाव बहुत प्रखर है। हाडा सिद्धो का भी उल्लेख है और यह भी कि वे कनफटे थे। मोहनसिंह ने कनफटे मूर्त्तियों का महायान के परवर्त्ती काल मे पाया जाना उल्लिखित किया है। वैष्णवों की उपस्थिति और श्रीकृष्ण का नाम परवर्त्ती प्रभाव ही लगता है, जैसे ज्ञानेश्वर चरित्र कथा मे।

2 मानिक चन्द्रेर गान की कथा से।

3. दक्षिणारजन शास्त्री, लोकायत तथा कापालिक ओरियण्टल कॉन्फ्रेस रिपोर्ट, 1930

मत के आदि प्रवर्तक श्री 'नाथ' ही माने गए है। मेरा अनुमान है कि शिव के स्वरूप मे जब बहुत-से मत आ इकट्ठे हुए तब यह भी उनमे से एक था। परवर्त्ती काल के लोकायत जब बँटने लगे तो अपने ब्राह्मण विरोध मे उनमे से अनेक बौद्धो की ओर आकर्षित हुए। वे तथा पुराने कापालिक जब हिलमिल गए तो उनमे बहुत-सी बाते भी एक-सी हो गई। गोरक्ष सिद्धान्त सग्रह मे कापालिक ने शकर को हराया है। पर नाथ लेखक ने अपने को अलग अवधूत मत का माना है। कौलमार्ग और कापालिक मत का नाथ सम्प्रदाय से घना सम्बन्ध रहा है। प्राचीन शिश्न देव और वामदेव का यह परवर्त्ती स्वरूप ही सम्भवत कापालिक मत है इनके स्वभाववाद, देहात्मवाद पर चार्वाक का प्रभाव पडा। बाद मे आकाश तत्त्व को भी इनमे स्वीकृत कर लिया गया। प्रारम्भ मे उनका ध्येय विरक्त होकर भी लोकायतो के प्रभाव से काम साधना हो चला।

हजारीप्रसाद की 'नाथ सम्प्रदाय' मे जालन्धर तथा कृष्ण पाद के कापालिक मत पर विस्तारपूर्वक लिखा गया है। यहाँ उसका साराश दिया जाता है।

कानिपा सम्प्रदाय गोरख के बारह पथो मे से नही माना जाता। वह वामारग (वाम मार्ग) कहाता है। चर्याचर्य विनिश्चय की टीका मे दातडी पाद (दा ओडी पाद) का श्लोक है जिसमे कापालिक का अर्थ इस प्रकार बताया गया है। प्राणी अर्थात् साधक का शरीर ही वज्रधर है। जगत् की जो कोई भी स्त्री कपाल वनिता है, और प्राणी के भीतर स्थित सोऽह रूप आत्मा ही हेरक भगवान् की मूर्ति है, जो हमसे अभिन्न हैं, श्री पद्म और इन्द्रिय आदि सूक्ष्म ग्राह्य तत्त्व तथा पृथ्वी प्रकृति स्थूल ग्राह्य तत्त्व को दहन करने वाला मदन ये ही तीन रत्न है। इनका यथा गौरव ध्यानकर्ता योगीश्वर परम सिद्धि को प्राप्त करता है। मालतीमाधव के एक श्लोक के अर्थ से भास होता है कि यह लोक, नाडी, चक्र आदि से परिचित थे। कापालिको मे नाथ शब्द चलता था। मालतीमाधव मे भवभूति द्वारा जाना हुआ कापालिक मत परवत्त नाथपथियो के समान ही नाडियो और चक्रो मे विश्वास रखता था तथा शिव और जीव की अभिन्नता मे आस्था रखता था और योग द्वारा चित्त के चाचल्य के रोकने से ही कैवल्य रूप में अवस्थित शिव रूप आत्मा का साक्षात्कार मानता था तथा शक्तियुक्त शिव की प्रभविष्णुता मे ही विश्वास रखता था। पचामृत की आकर्षण क्रिया मे कुण्डलिनी का भी प्रयोग होता था। पच अमृत शरीर स्थित पाँच द्रव रस है शुक्र, शोणित, मेद, मज्जा और मूत्र। इनको आकर्षण करके ऊपर उठाने की क्रिया से ही शरीर को वज्रवत् बनाया जा सकता है। अणिमादि सिद्धियाँ पाई जा सकती है। वज्रयानी साधको मे तथा कौलमार्गी तान्त्रिको मे भी यह विधि है। नाथ मार्ग मे वज्रोली साधना इसी

का भग्नावशेष है। शिव तान्त्रिको के अनुसार नेति-नेति है। वे केवल ज्ञेय है। उपास्य शक्ति है। तभी शिव 'शक्तिनाथ' है। एक ऐसा समय आ गया था जब सहजयानी और वज्रयानी साधक शून्य को निषेधात्मक न मानकर विध्यात्मक या धनात्मक रूप मे समझने लगे थे। इसी की अभिव्यक्ति 'महा सुख' या 'सुखराज' शब्द थे। आनन्द चार प्रकार के हैं प्रथमानन्द, परमानन्द, विरमानन्द और सहजानन्द। सहजानन्द मे अस्मिता लुप्त हो जाती है।

जालन्धर पाद का महासुख शैव तान्त्रिको के सहजानन्द के बहुत निकट है। सम्भवत इसी से परवर्त्ती साहित्य मे जालन्धर शैव समझ लिये गए।

कृष्णपद मानते थे कि इस शरीर मे ही चरम प्राप्तव्य की प्राप्ति होती है। शरीर का जो मेरुदण्ड है वही ककाल दण्ड कहा जाता है, मेरु पर्वत है, क्योकि पैरो के तलवे मे भैरव रूप धनुषकार वायु का स्थान है। कटि देश मे त्रिकोण उद्धरण है जिसके तीन दलो पर वर्तुलाकार वरुण का वास है और हृदय मे पृथ्वी है, जो चतुरस्त्र भाव से सब ओर व्याप्त है। इसी प्रकार ककाल दण्ड के रूप मे गिरिराज सुमेरु स्थित है। इसी गिरिराज के कन्दर कुहर मे नैरात्य धातु जगत् सारा-का-सारा उत्पन्न होता है। इसी गिरिकुहर स्थित पद्म मे यदि बोधिचित्त पतित होता है, तो कालाग्नि का प्रवेश होता है और सिद्धि मे बाधा पडती है, क्योकि शुक्रसिद्धि नामक ग्रन्थ मे लिखा है कि यदि सर्व सिद्धि का विधान बोधिचित (शुक्र, नाथपथियो का बिन्दु) नीचे की ओर पतित हो और स्कन्ध विज्ञान विमूर्छित हो जाए तो उत्तम सिद्धि नही हो सकती। वासना को दबाना नही चाहिए। कामना के उपभोग मे ही सच्ची सिद्धि है। समस्त बुद्धो की आश्रय-भूमि जिस प्रकार समस्त विश्व ब्रह्माण्ड है उसी प्रकार यह शरीर भी है। इस मानस शरीर का प्रधान आधार मेरुदण्ड है जिसके भीतर तीन नाडियो से होता प्राण-वायु सचरित होता है। बाई नाक से ललना, दाहिनी से रसना, नामक प्राणवायु को वहन्ती नाडियाँ चलती है। ललना प्रज्ञाचन्द्र है, रसना उपाय सूर्य। यह नाथपथियो की क्रिया शक्ति की समशील है। अवधूती मध्यवर्ती नाडी सुषुम्ना के समान है। इस नाडी से जब प्राण-वायु ऊर्ध्वगति प्राप्त होता है, तो ग्राह्य और ग्राहक का ज्ञान नही रहता। तभी यह ग्राह्य ग्राहक वर्जिता कहलाती है। मेरु गिरि के शिखर पर महासुख है। जहाँ एक 64 दल का कमल है। यह कमल चार मृणालो पर स्थित है। प्रत्येक मृणाल के चार क्रम है और प्रत्येक क्रम के चार-चार दल। इसी प्रकार यह $4 \times 4 \times 4 = 64$ दलो का कमल (पद्म) है, जहाँ वज्रधर (योगी) इस पद्म का आनन्द उसी प्रकार लेता है जिस प्रकार भ्रमर प्रफुल्ल कुसुम का। इन चार मृणालो के दलो को शून्य, अतिशून्य, महाशून्य और सर्वशून्य कहा गया है। जो सर्वशून्य का आवास है वही उष्णी कमल है, यही डाकिनी

जालात्मक जालन्धर गिरि नामक महामेरुगिरि का शिखर है। यही महासुख का आवास है। पहला आनन्द कायात्मक, दूसरा वाचात्मक, तीसरा मानसात्मक है। अन्तिम ज्ञानात्मक है। तभी सहजानन्द है। एक बार प्राण-वायु का निरोध करके यदि योगी इस मेरु शिखर पर वास कर सका तो निस्तरग सरोवर की भाँति उसकी वृत्तियो के रुद्ध हो जाने से वह सहज रूप को प्राप्त हो जाता है।

परवर्त्ती शक्ति सग तन्त्र मे कापालिक के विषय मे लिखा है·

> कपालपात्रसम्भोजी मद्यमासेषुतत्पर
> स्त्रियोनि दर्शको नित्य मुण्डमाला धर सदा
> श्मशानाग्नि प्रभोजीय स च कापालिक स्मृत ।

प्राचीन काल से ही यह वेद को स्वीकार नही करते थे। ससार से अथाह विरक्ति का यह स्वरूप कितना प्राचीन है इसको आज जान सकना कठिन है। यह बार्हस्पत्य अवस्था कहलाती है। रामानुज के श्रीभाष्य मे कपालधारी तथा कपाल न धारण करनेवाले दो तरह के कापालिक बताये गए हैं। कपालधारी काला मुख है। कालवदन भी कहलाते हैं। कापालिक कपाल छोडकर भी कापालिक कहलाते रहे और कालामुख कपाल रखकर भी दूसरे नाम से पुकारे जाने लगे।[1]

कापालिको के अनुसार शिव कल्मषहीन तथा सर्वशक्तिमान है। भस्म रमाना चाहिए। महेश ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति का स्वामी है। प्रकृति उत्पादन कारण है, शिव निमित्तकारण। वे पहले व्रात्यो की भाँति सम्भवत. किसी रूप मे उपस्थित रहे हो[2] उनमे जब अहेतुवाद का, अक्रियवाद का प्रभाव फैल चला तब जनसाधारण उन्हे भी लोकायत कहकर भूल करने लगे। कौन जाने शिव के इस प्राचीन स्वरूप की विरक्ति मे ही वेद बाह्य, षट्चक्र, नाडी ज्ञान का प्रारम्भ नही रहा जो ब्राह्मणों पर कालान्तर मे छा गया।[3]

---

1 दक्षिणारजन शास्त्री, लोकायत तथा कापालिक ओरियण्टल कान्फ्रेंस रिपोर्ट, 1930।

2 अथर्ववेद में व्रात्य का वर्णन आता है कि व्रात्य घूमता रहता है, ससार के भले की बात कहता फिरता है और वह प्रजापति से अपनी बात स्वीकार करवा लेता है—प्रजा के भले के लिए (15/1/1) स्वामी भूमानन्द सरस्वतीने व्रात्य का अर्थ इस प्रकार किया है वृज+अतच +य=मनुष्य समाज का भला करनेवाले। पूर्ववर्त्ती वैदिक काल में व्रात्य को अत्यन्त घृणित माना गया है। यह हम ऊपर देख चुके है। —एकलींशिया डिवीनिया, वायस आफ द वेदाज

3. यहाँ सहजयान में उल्लेखनाय है।

इन्द्रिय सुख में आसक्त पुरुष धर्मतत्त्व का ज्ञाता कभी नहीं हो सकता। वज्र कमल के सयोग से जिस साधक ने बोधि चित्त को वज्रमार्ग में अच्युत रखने की योग्यता प्राप्त कर ली है, अथवा जिसने शिवशक्ति के मिलन से ब्रह्मनाड़ी में बिन्दु को चालित कर स्थिर तथा दृढ करने को सामर्थ्य सिद्ध कर ली है। वही महायोगी है इस प्रकार द्वैतभाव के परित्याग से अद्वैतवाद की अनुभूति वज्रयान का चरम लक्ष्य है। —बलदेव उपाध्याय, बौद्ध दर्शन

गोरक्षनाथ का अघोर से सम्बन्ध स्पष्ट नही मिलता। किन्तु कापालिक रूप से उनकी निकटता सिद्ध होती है। गोरखनाथ अघोरो की अस्वच्छता से दूर थे, इसलिए कि गोरक्ष का सिद्धिपरक मार्ग स्त्री से बहुत दूर था, जो इन लोगो मे स्वीकृत था।

अघोर

स्त्री से दूर अघोर थे अवश्य, जो कालामुख का ही परवर्त्ती स्वरूप था। श्मशान मे ही यह रहते थे। हड्डियाँ इनके समीप सदैव रहती थी और यह भूले हुए ससार से, भक्ष्याभक्ष्य खाते पडे रहते थे। अघोर मे कापालिको की भाँति सिद्धि का तत्त्व नही पाया जाता। अघोरो मे कही-कही ब्रह्मचर्य का प्रभाव भी पाया जाता है। यह परवर्त्ती प्रभाव भी हो सकता है। वुडराफ ने वेदाचार और वैदिकाचार मे भेद किया है। श्रौत रूप मे श्रौत वैदिकाचार तत्र के सप्त विभाजन से बाहर दिखाई देता है, जिसका तान्त्रिक समानान्तर वेदाचार है।[1]

नाथ परम्परा की समस्त पुस्तके पढकर ऐसा ही लगता है कि पुराना सिद्ध मार्ग मुख्य रूप मे योगपरक था। और पच मकारो या पच पवित्रो की व्याख्या उसमे रूपक रूप मे ही हुआ करती थी। कौल-ज्ञान-निर्णय मे सहज-यानियो की भाँति बोधिसत्व या बुद्धि के अवतारों का उल्लेख न होकर शिव (भैरव) का ही वर्णन किया गया है। अवलोकितेश्वर का उसमे नाम भी नही है।

कौलमार्ग

प्रथम युग मे शिव द्वारा निर्णीत ज्ञान का नाम था कौलज्ञान, द्वितीय युग

---

1 ऊपर पूर्ववर्त्तियों में अनेक नाम आ चुके है। कालामुखो में कालधीर कुमारा पूजा करते है। काममोहन युवती की। कापालिक कालामुख, पाशुपत, मोडीकर, दिगम्बर अघोर, चीनाचार, कौल में स्त्री का स्थान है। अघोर, पाशुपत, औघड, बटुक, भैरव, कन्थाधारी नाथ सम्प्रदाय तथा नील क्रम में नही है।

अघोर का अर्थ है, घोर (ससार) से मुक्त।

सम्मोहनतन्त्र चीनागम (शाक्त रूप), पाशुपत (शैव रूप), पनरात्र (वैष्णव रूप), कापालिक, भैरव, अघोर, जैन, बौद्ध, को मिलाकर 22 आगमतन्त्र बनलाता है। जिसमें प्रत्येक के अनेक तन्त्र व उपतन्त्र है। कुलार्णव और ज्ञान दीपतन्त्रों के अनुसार 7 आचार है। वेद, वैष्णव, शैव और दक्षिण पाश्वाचार के, फिर वाम सिद्धान्त, फिर सर्वोच्च कौल है। श्रौतमखि यज्ञ की भांति ही सिद्धान्ताचार में शराब खुलेआम पी जा सकती है। (विश्वसार) प्रवृत्ति का विरोध निवृत्ति ही वाम मार्ग की मूल साधना है, और (स्त्री) लता साधना के बिना वह अपूर्ण ही रह जाती है।

मे उनके द्वारा निर्णीत ज्ञान का नाम सिद्ध कौल, तृतीय मे निर्णीत ज्ञान का नाम सिद्धामृत और चतुर्थ युग मे अवतरित ज्ञान का नाम मत्स्योदर है। इनमे (मत्स्योदर) विनिर्गत ज्ञान का नाम योगिनी कौल है।[1] शिव का ही बार-बार वर्णन करना महत्त्वपूर्ण है। बौद्ध परम्परा से इससे कोई सम्बन्ध नही मिलता।

इससे यही आभास मिलता है कि कौलमार्ग की परम्परा अत्यन्त प्राचीन थी। इसके भिन्न-भिन्न समय मे भिन्न-भिन्न स्वरूप थे। प० हजारीप्रसाद ने डा० बागची के अनुमान को उद्धृत करते हुए लिखा है कि मत्स्येन्द्र ने योगिनी कौलमत को कामरूप मे सीखा था, पहले वे सिद्धामृत मत के अनुयायी थे।

समस्त सम्प्रदाय शिव द्वारा ही अवतरित माना गया है यह इसकी प्राचीनता का द्योतक है। इसके कोई प्रमाण नही मिलते कि इससे पूर्व वास्तव मे इसका स्वरूप कैसा था। वाम मार्ग मे कामरूप मे ही जाकर प्रवृत्त हो जाना ही मत्स्येन्द्र के साथ प्रसिद्ध है। निश्चय ही इससे प्रकट होता है कि वाममार्ग सिद्धामृत मे या तो स्वीकृत नही था या वह इतना मुखर नही था। सिद्धामृत मार्ग के अनुवर्त्ती मत्स्येन्द्र ने योगिनी कौल मत का प्रवर्तन किया था। नाथो मे भी सिद्धमार्ग माना जाता था।[2]

शिव की उपासना जो तन्त्र आदि तथा सिद्धियो से आरूढ़ हो चली थी, जिस पर योग का भी प्रभाव था, मत्स्येन्द्र के समय मे अपना वास्तविक रूप छोडकर वाममार्ग से ऐसी आसक्त हो गई कि उससे एक नये पथ का प्रवर्तन हो गया, जो स्त्री की शक्ति से अभिभूत था। कालान्तर मे वाममार्ग के आम रास्ते पर जब शैव और बौद्ध एक साथ आकर खडे हो गए और शिव और बुद्ध के स्थान पर स्त्री का महत्त्व अधिक हो चला तब परस्पर भूल पडने लगी, और बाह्य रूप मे सब ही एक-से दिखाई देने लगे, जिसे इस युग से देखने पर (जैसे विदेशी को वैष्णव और बौद्ध सभी साधु सन्यासी लगते है) एक-सा प्रतीत होता है। निस्सन्देह परस्पर सम्मिश्रण से एक-दूसरे पर प्रभाव अवश्य पडा होगा किन्तु यह ऊपर ही स्पष्ट किया जा चुका है कि एक ही वस्त्र ओढ-कर भी वस्तुत अनेक सम्प्रदाय अनेक ही बने रहे।

प्र० च० बागची ने कौल भेदो की सूची कौल-ज्ञान-निर्णय की भूमिका मे

---

1 नाथ सम्प्रदाय।

2 वही।

मत्स्योदर से पहले के निर्णीत ज्ञानों में सम्भवत स्त्री पूजा नही थी अन्यथा गोरखनाथ को मत्स्येन्द्र को छुडाकर लाने की क्या आवश्यकता थी। सिद्धामृत मत के अनुयायी मत्स्येन्द्र के शिष्य गोरख को गुरु का गलत राह पर चलना पसन्द नही आया, तभी वे उन्हे छुडाने गए और अपने नये मार्ग पर लौटा लाये। तभी ये मत-प्रवर्तक माने गए।

दी है। जैसे रोमकूपादि कौल, वृष्णोत्थ कौल, वन्हि कौल, कौल सद्भाव, पादोत्तिष्ठ कौल इत्यादि। मत्स्येन्द्र का सम्बन्ध योगिनी कौल से है।[1] कौल दो प्रकार के बताये गए है कृतक, जिसमे द्वैत भाव बना रहता है तथा सहज जिसमे साधक और शिव बिलकुल एकाकार हो जाते है। कृतक को कुण्डली भी कहते है और सहज को समरस (अकुल वीरतन्त्र)।

कौल-ज्ञान-निर्णय मे निम्नलिखित विषयो पर प्रकाश डाला गया है— सृष्टि, प्रलय, मानसलिंग का मानसोपचार से पूजन, निग्रह, अनुग्रह, क्रामण, हरण, प्रतिमा जलाना, घट पाषाण, स्फोटन, आदि सिद्धियाँ, भ्रान्ति निरसन ज्ञान, जीव स्वरूप, जरा-मरण, पलित का निवारण, अकुल से कुल की उत्पत्ति तथा कुल का पूजनादि, गुरु पक्ति, सिद्ध पक्ति और योगिनी पक्ति, चक्रध्यान, अद्वैतचर्या, न्यासविधि, शीघ्रसिद्धिदाध्यानमुद्रा महाप्रलय के समय भैरव की आत्मरक्षा, भक्ष्य विधान तथा कौल ज्ञान का अवतरण, आत्मवाद, सिद्धपूजन और कुल द्वीप विधान, देहस्थ चक्रस्थिता देवियाँ, कपालभेद, कौलमार्ग का विस्तार, योगिनी सचार और देहस्थ सिद्धो की पूजा।

अकुल वीर तन्त्र के अतिरिक्त कुण्डली और सामरस्य का कही भी कौल-ज्ञान-निर्णय मे वर्णन नही आता, यद्यपि हृदयस्थित अनेक पद्मचक्रो का उसमे वर्णन आता है।

ऊपर काश्मीर शैव सम्प्रदाय तथा शाक्तो के शिव शक्ति के भेदाभेद पर हम सक्षेप मे प्रकाश डाल आए है। यह कहना काफी होगा कि शक्ति के विषय मे मत्स्येन्द्रनाथ का मत प्रारम्भिक अवस्था मे शाक्त अधिक प्रतीत होता है। किन्तु उसका दार्शनिक आधार काश्मीर शैव सम्प्रदाय से विशेष भिन्न नही है। अकुल वीर तन्त्र के विषय मे हजारीप्रसाद का कथन है कि वह मत्स्येन्द्र का गोरख के मुक्ति दिलाने के बाद का स्वीकृत सिद्ध मत है। इस कुल और अकुल के भेद से पहला कौल ज्ञान उनके योगिनी कौल का प्रतिपादन करता है और दूसरे मे गोरक्ष सहिता से अनेक बाते मिलती जुलती है। किन्तु जिस गुरु को गोरक्ष ने छुडाया क्या फिर भी उनका कोई गोरख से अतिरिक्त मत रहा

---

1 महायोगिनी कौले मत्स्येन्द्र पादावनारिते।
कामरूपे इदशास्त्र योगिनीना गृहे गृहे ॥

चन्द्रकौल, सृष्टिकौल, महाकौल, सिद्धामृतकौल, महत्कौल, शक्तिभेदकौल, ऊर्म्मिकौल, ज्ञानकौल, सम्बर, मिमिर, सिद्धेश्वर, वज्रसम्भव, मेघोज इत्यादि अनेक भेद है। हजारी-प्रसाद का अनुमान ठीक प्रतीत होता है कि यह सम्प्रदायपरक न होकर अधिकाश सिद्धि-परक है।

होगा ? अकुल वीर तन्त्र मे[1] ध्यान धारणा प्राणायाम की आवश्यकता नही। (बी० 112) इडा, पिंगला और चक्रध्यान की भी नही है। (123-25) इससे हमे गोरक्ष के साधना विवरण को समझने मे सरलता होगी। मत्स्येन्द्र के प्रारम्भिक रूप के प्राय काफी शब्द और तत्त्व ज्ञानकारिका मे आए है, जिसमे यौगिक व्याख्या दी गई है। मत्स्येन्द्र जिस योगिनी कौल मे फँसे थे सम्भवत उसी का भग्नावशिष्ट स्वरूप उस मत मे भी घुस गया जिसके पीछे कापालिक और बौद्धमत की समान पृष्ठभूमि थी। यहाँ कुल और अकुल का अर्थ देख ले। कुल शक्ति है, अकुल शिव है। दोनो एक-दूसरे से सम्बद्ध है। कुल कभी नष्ट नही होता। वह 36 तत्त्वो का जगत् अव्यक्त रूप से व्यक्त करता है वही सृष्टि है जो शिव की सिसृक्षा है। आम्नायो के विषय मे ऊपर कहा जा चुका है। आत्मा का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है। किन्तु कौल साधक स्त्री को निवृत्तिपथ के लिए आवश्यक मानता है। वह उसी से सहज स्वीकार करता है। इस सहज वाले का कहना है कि जो सुख और प्राप्ति कष्ट पथ से है वही इस आनन्द से है। इसलिए इससे छूटने का प्रयत्न व्यर्थ ही अपनी निर्बलता का प्रकाश है। निर्विकार होने के लिए इन वस्तुओ मे लगकर इन पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। मुख्य अद्वैतभाव है। अकुल पूर्ण अद्वैत है। द्वैत की भावना कुल मे लगी रहती है, जो कुल से परे है वही अकुल है। अकुल ही वह सहज है जो कुण्डली के ऊपर की अवस्था है। शास्त्रजाल से सतुष्ट लोग मोहित ही कहे जाते है। उन्हे शान्ति नही मिलती। अकुलवीर मे सब धर्मों का लय हो जाता है। प्रभु ही अशेष जगत् के सर्वाधार है। कोई न्याय वैशेषिक कोई सोमसिद्धान्तवादी है। मीमासा, पचस्रोत, वाम तथा दक्षिण सिद्धान्त यह सब शैवागम है परन्तु पाप मे बँधे के समान है। मुक्ति जिस पर स्थित है वही भवबन्धन से मुक्त है। जप, अर्चना, स्नान, होम इत्यादि सब व्यर्थ है, यह इसका ब्राह्मण रूढि-विरोधी स्वरूप है। न कौल के लिए नियम है, न उपवास,

---

1. हृदिस्थाने न वक्त्रे च घण्टिका लालरन्ध्रके।
न इडा पिगला शान्ता न चास्तीति गमागमे ॥ 16 ॥
न नाभिचक्रकण्ठे च न शिरै नैव मस्तकै।
तथा चक्षुरुन्मीलने न च नासाग्रनिरीक्षणे ॥ 17 ॥
न पूरक कुम्भके तत्र रेचके (च) तथा पुन।
न बिन्दुभेदके ग्रन्थौ ललाटे न तु वह्निके ॥ 18 ॥
यस्यैवं सस्थित कश्चिद् समरस सस्थित।
सब्रह्माऽसौ हरिश्चेश सरुद्रो स च ईश्वर। 24 ॥
सशिव परमदेव स सोमावर्काग्निकस्तथा।
सच्च साख्य· पुराणाश्च अर्हंतबुद्ध एवच ॥ 25 ॥ —अकुल वीर तन्त्र, ए०

न पितृ कार्य, न तीर्थ, यात्रा-व्रत।[1] कौल वर्जन को अन्त मे स्वयमेव प्राप्त करता है जबकि योगी वर्जन से ही अपना कार्य प्रारम्भ (साधना) करता है और तब उस महानन्द को पाता है। कौलावली निर्णय मे यह अच्छी तरह प्रगट है। आगे उसके साधक की अनुभूति के श्लोक उद्धृत किये है। उसकी कुण्डली साधना योगी की भाँति अन्य भोगो से अलग नही है। वह धीरे-धीरे उसकी ओर आकर्षित होता है। योगी और कौल का चरम लक्ष्य एक ही है, परन्तु उसकी प्राप्ति के पथ अलग-अलग है।

कुलानन्दतत्रम् मे योगाभ्यासो का उल्लेख है, पाशस्तम्भ भेद इत्यादि। सिर मे एक 64 दल का कमल है, जो निर्वाणदायी है। ज्ञानकारिका मे मोक्षाधिकार, मुक्ति (पटल-1), धर्माधर्म विचार-चर्याधिकार, योगी को एकान्त मे रहना चाहिए—श्मशान मे, यात्रा मे, नगा तन, शिथिल जटा, नशा, पुष्पमाला (पटल-2) शून्यागार, तत्त्वज्ञान शरीर, गुहावास-सूक्ष्म ज्ञान शरीर, वृक्षमूल-शरीर, ऊर्ध्व, मूल मुख मे और चतुर्शक्ति मिलन (शरीर मे), जया, विजया, अजिता, अपराजिता इत्यादि का वर्णन है। जब बिन्दु ऊपर चढता है, चन्द्र से सूर्य की ओर सूर्य से आकाश की ओर तब समुद्रतीर प्राप्त हो जाता है, अविद्या दूर होती है, योगी नग्न होता है, मुक्तिपथ पा वह मुक्तकेश, मदिरा अमृत हो जाती है। माला के गुरिये अक्षरमत्र है, डोरा शक्ति है।

कौल मत्स्येन्द्र से पुराना था, यह देखा जा चुका है। सक्षेप मे कौल मार्ग की दार्शनिकता, साधनापथ तथा चरम लक्ष्य पर विचार किया जा चुका है। यह भारतीय सस्कृति का एक निरासक्ति का अत्यन्त आसक्त अनुभव या अभ्यास था जिसमे निम्नलिखित तथ्य उपस्थित थे। (1) योग (साधना के बीच मे या तो कुण्डली या बिन्दु उत्थान), (2) प्रवृत्ति से निवृत्ति, (3) पच मकार, (4) तन्त्रपूजा, चक्र पूजा, (5) सहज पर जोर, (6) बाह्याचार का

---

1 वह केवल इसमें विश्वास करता है कि जीव अनन्त है, अविनश्वर है, शरीर मे जीव है, बाहर शिव, ब्रह्मरन्ध्र से गिरता हुआ अमृत पिये प्यास बुझावे। एक मास में मृत्यु पराजित होकर दासी हो जाएगी। चित्त वायु को वश में कर लो। जब कौल ज्ञान हो जाए तब वह अकुल है। निर्बन्ध, बहिस्था और देहस्था अथवा आत्मस्था शक्ति की पूजा से कुल और अकुल एक हो जाएँगे।

शिवमध्ये गताशक्ति क्रिया मध्य स्थित शिव।
ज्ञानमध्येक्रियाली ना क्रिया लीयति इच्छया ॥ 6 ॥
इच्छा शक्तिर्लय याति यत्र तैज पर शिव ॥ 7 ॥ (कौ० ज्ञा० नि०)

शिव मध्य में शक्ति है, क्रिया मध्य में शिव है। ज्ञान मध्य में क्रिया लीन होता है। क्रिया इच्छा से लीन होती है। जहाँ पर शिव का तेज होता है वहा इच्छा शक्ति लीन होती है।

विरोध, (7) कुलक्षेत्र और पीठों की चर्चा, (8) वज्रीकरण का प्रयोग, (9) पचपवित्र (या पचमकार), (10) हाकिनी, डाकिनी आदि देवियो का एक बडा समूह, (11) आत्म और नैरात्म्य का अद्भुत विरोध और सामजस्य, (12) विरोध करने पर भी अपने मत्र तथा रूढियाँ और श्मशान-प्रियता, (13) ब्राह्मण विरोध, (14) सिद्धिपथ, (15) शिवसिद्धान्तमत, (16) बौद्धो मे महा-सुख, (17) सर्वात्म से शून्य का विरोध और सामजस्य, (18) असामाजिक स्वरूप (19) देहस्थित चक्र नाडी, पद्म ज्ञान, (20) बलिक्रिया का बीभत्स और कोमल दोनो रूप, (21) टोना, मारण, उच्चाटन, वशीकरण, पुरश्चरण इत्यादि।

यौनवाद

शक्ति तत्त्व का सामाजिक रूप देखने पर वह केवल यौनवाद-सा दिखाई देता है। उसकी दार्शनिकता ऊँची होने पर भी वह सामाजिक रूप मे एकागी और व्यक्तिगत प्रयत्न-सा दिखाई देती है। इसमे जाति-पाँति के बन्धनो को तोड दिया गया। योग, तन्त्र की भाँति यह तत्त्व उस समय के प्राय सभी मतो मे अपना प्राधान्य जमा चुका था। और इसी से अथ होकर इसी के माध्यम से इति का लक्षण भी व्याप्त हो चुका था।[1] अधिकाश पश्चिमी दर्शको और

1. भैरवी चक्र में जाति पांति नहीं मानी जाती किन्तु उसके बाद 'सर्वे वर्णा यक्र पृथक्' है।

सुन्दरीस्तव—

ब्राह्मी रौद्री वैष्णवाति शक्तयास्तिस्र एवहि।
पुर शरीरयस्या सा त्रिपुरेति प्रकीर्तिता ॥ 1 ॥

शक्ति सगम तन्त्र—

कालीतारा छिन्नमस्ता सुन्दरी बगला रमा।
मातगी भुवनेशानी सिद्धविद्या च भैरवी।
धूमावती च दशमी महाविद्या दश स्मृता ॥ 2 ॥

वाडवानलीय—

योगिनी वज्रपूर्वाच पन्नगी नैऋतेश्वरी।
अधराऽऽम्नाय पठीस्था जैन मार्ग प्रपूजिता ॥ 3 ॥

मेरुतत्रम्—

स्त्री मन्त्री भोगद प्रोक्त पु मन्त्री मोक्षद परम
उभयोपासन देवा भुक्तिमुक्ति प्रदायकम् ॥ 4 ॥

तन्त्रान्तर—

शक्त्या विना शिवे शुष्के (पाठान्तर सूक्ष्मे) नाम धाम न विद्यते
शिवं बिना चित्कलाना कलात्व न क्वचित् भवेत ॥

विचारको मे इसको समझने की सामर्थ्य नही रही है। पूर्वीय विद्वानो ने भी इस पर पर्दा डालने का भरसक प्रयत्न किया है। किन्तु प्रश्न यह है कि इतिहास

बीजाऽकुरन्याययोगाच्छिवशक्त्यात्मक मह
सदा जागर्ति देवेशिनानारूपाणि दर्शयेत् ।। 5 ।।

तथा—

मयोगाज्जायते सौख्य परमानन्द लक्षणम्
शुद्धमन्त्रौषधेनैव यौनेस्तु मथनचरेन
मथ्यमाने तु तस्याहिर्जायते तत्वमुत्तमम्

देवीयामल में—

योनिपूजा बिना पूजा कृतमप्यकृत भवेत् ।। 7 ।।

ब्रह्मयामल में नारद के प्रश्न करने पर भी मातगी महत्त्व को समझाते हुए ब्रह्मा कहते है कि महादेवी जब मातग कुल नन्दिनी हुई तो शम्भु ने उस समय—

त्रिपुरजेतुकामेन योनिपूजा तदाकृता
प्रत्यालीढा स्थिता देवी पूजा स्वीकृत्यनिश्चला ।। 8 ।।

तभी सम्भवत स्वतन्त्र तन्त्र में निर्द्वन्द्व होकर कहा गया है

तनो नग्ना स्त्रिय नग्नो रमन् ।। 9 ।।

वीर चूडामणि—

आनीय युवती रम्या कुलकर्म विलासिनीम्
षोडशाब्देन युवती पीनोन्नत पयोधराम् ।।
उन्मत्ता मत्तमातगी सदा घूर्णित लोचनाम्
मृगशावक नेत्रा च सारगी मृदुहासिनीम् ।।
क्रोध लोभ दया दम्भ मोह माया विवर्जिताम्
स्वामिधर्मरता सत्यवादिनी च सदाशुचिम् ।।
गणिका नटीं चाण्डाली जीवनी जारजामथ
योग मुद्रा धरा गोपीचर्मकारींच चित्रिणीम् ।।
चतुर्वर्णसमायुक्ता उत्तमा पर्वतोद्भवाम्
रक्त चन्दन लिप्तागी रक्तपुष्पविभूषिताम्
सर्वालकार सयुक्ता विवस्त्रा पूजयेत प्रिये ।।
वारुणी मदमत्ता च हाव भाव समावृताम्
यावदाकण्ठपर्यन्त तावत् पाने प्रदापयेत् ।। 1 ।।

इसके बाद स्त्री के समस्त देह की अलग-अलग पूजा का वर्णन है। क्षोभिणी मुद्रा से युगनद्ध होने का उल्लेख है। महात्रिपुर सुन्दरी त्रिकूटात्मिका विद्या के प्रति ऐसे श्लोकों का बाहुल्य है। उस सिद्धि की प्रशसा में कहा गया है।

भूतडामार, यक्षडामर—

एवं कृत्वा च तत्सिद्धिस्त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ।। 2 ।।

को छिपाने से क्या कुछ सत्य हाथ मे लग सकता है। ऊपर हम दिखा चुके हैं

यामल में शक्ति अर्थात् स्त्री के दो भेद माने गए है। जो सुदीक्षित है वह शुद्धा है, जो अदीक्षित है वह माया है।

मातगी तन्त्र के अनुसार—

दीक्षामात्रेण शुद्धयन्ति स्त्रिय सर्वत्रकर्मणि ।। 3 ।।

कुलामृतदीपिका में —

आदौ बाला समुच्चार्य त्रिपुरायै समुच्चरेत् ।
आलिंगने हरेद्रोगान् धनधान्यादि चुम्बने
नखदन्तक्षताद्यैश्च तदा मोक्ष प्रजायते
सायुज्य सगमेन स्यात् सत्यमेव न सशय ।। 4 ।।

कालिका पुराण—

शुद्रादि यवनान्ताना सिद्धिवामपथेस्थिना ।। 5 ।।

यह बाद का ब्राह्मणों का प्रयत्न दिखाई देता है।

रुद्रामल —

वामे चन्द्रमुखी मुखे च मदिरा पात्र कराम्भोरुहे ।
मूर्द्धिन श्रीगुरुचिन्तन भगवती ध्यानास्पद मानसम् ।।
जिह्वाया जप साधन परिणति कौलक्रमाभ्यागमे ।
येषा वै नियत पिबन्तु सुरसते भुक्तिमुक्तोगता ।।
वामे रामा रमण कुशला दक्षिणेचालिपात्रम् ।
अग्रे मुद्राश्चणकवटका: शूरणश्चौष्ठ शुद्धि ।।
तन्त्रीवीणा सरसमधुरा सद्गुरु सत्कथाया ।
वामाऽऽचार : परमगहिनो योगिनामप्यगम्य. ।। 6 ।।

किसी वैष्णव टीककार ने इस श्लोक के लिए लिखा है कि ऐसे विकार होने हुए भी जो विचलित न हो वही योगी है। किन्तु इसको विकार समझता कौन था ? यह कल्पना कि—

स्त्री सम्भोगेन भो देवा यदि मोक्षोऽभिजायते ।
तदा सर्वेऽपि मुक्त स्यु कस्य जन्म भविष्यति ।।

परवर्त्ती है, क्योंकि शक्ति मे प्रवृत्ति से निवृत्ति खोजने वाले कभी शक्ति को अचेतन नहीं मानते थे। यह सत्य है कि वे स्त्री को माध्यम बनाते थे किन्तु आगे चलकर तो सब एक-सा हो गया था। चक्र पूजा में (देखिए कौलावली निर्णय)—

ऊ वामां वाम करे सुधाब्ज अधरे मत्रजपन्मानसे ।
वीणा वेणुरवायन्त्र विधिवत्गायन्ति पचोरस ।।
क्रीडा केलिकुतूहलेन कमलालावण्य लीलोरस ।
पानोल्लास विलास पूर्ण समये पात्रञ्च एकादशम् ।।
पीत्वा पीत्वा पुन पीत्वा पतित्वाच महीतले ।
उत्थाय च पुन पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।।

कि यह साधना भारत मे आर्य पूर्व सभ्यताओ मे थी जिसके लिए एक विशेष प्रकार की सामाजिक परिस्थिति की आवश्यकता थी ।

कुल कुलाय यो दद्यात् सोऽपि यौनो न जायते ।
भगरूपा च सा देवी रेत प्राता च सर्वदा ।।

इस साधना में हठयोग का भी प्रभाव था यह हम आगे देखेंगे ।
और

क्वच्छिष्ट ' क्वचित्भ्रष्ट क्वचित्भूतपिशाचवत् ।
नानावेशधरो योगी विचरेत् महीतले ।।
न पूजा नापि तन्नाम न निष्ठा न व्रतादिक्रम् ।
पूर्णोऽह : भैरवश्चाह नित्यानन्दोऽहमव्यय ।
निरन्जन स्वरूपोऽह सर्वमन्त्रार्थ पारग ।।

इस आनन्द मे व्यक्ति की समाज के प्रति कितनी भीषण उपेक्षा थी ।
तथापि

न योगी न भोगी, न वात्मा न काङ्क्षी
न वीरो न धीरो न वा साधकेन्द्र ।
सदानन्द पूर्णोधरण्या विवेकी
चिराज्जात धूतो द्वितीयो महेश ।
श्रुतौ कुण्डलेमृग् गले मुण्डमाला
करे पान पात्र मुखे हत हाला ।
परित्यक्तकर्मा लयन्यस्तधर्मा
विरक्तोऽवधूतो द्वितीयो महेश ।।

इस विभोर आनन्द मे योगी फिर कहता है ।

वामे रामा रमण कुशला दक्षिणे पानपात्र
मध्येन्यस्ते मरीचसहित शूकरोस्योष्णमासम् ।
स्कन्धे वीणा ललित सुभगा सद्गुरूना प्रपच
कौलोधर्म परम गहनो योगिनानामप्यगम्य ।। (21वाँ उल्लास)

इस समय वह सोचता है

नाह कर्ता कारयिता न च कार्य
नाह भोक्ता भोजयिता न च भोज्यम् ।
नाह दुखी दु खयिना नच दु ख
सोऽह प्रत्यक् चित् स्वरूपोऽहमात्मा ।

और कुलार्णव के आनन्द स्तोत्र में वह पुकार उठता है

यत्रास्तिभोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोग
श्री सुन्दरी पूजन तत्पराणा भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव

यक्षवाद

दूसरी शताब्दी से छिपी-छिपी चली आती यह साधना छठी से लेकर गोरक्ष के समय तक अखण्ड धारा बनकर बहती रही। इसे रोकने के स्थान पर सब इसमे बहने लगे। यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण पक्ष हे जिसके बिना न भारत का इतिहास समझा जा सकता है न गोरक्ष के चरित्र के महत्त्व को ही। उपसहार के अन्त मे दी हुई तालिका से प्रकट होगा कि एक विशेप प्रकार की सामाजिक परिस्थिति मे उत्पादन के साधन नही बदल पाने के कारण यह प्रवृत्ति लौट आती है। इससे हमे उस प्राचीन आर्य-पूर्वा यक्ष सभ्यता के विषय मे भी कुछ सोचने का अवसर मिल जाता है। जब नीरस योगी शिव के अनुवर्ती इनसे परस्पर झगडते रहे होगे। किन्तु यक्षवाद के विलास से यदि एक ओर उच्च वर्गों मे विलास बढता जा रहा था तो दूसरी ओर जनसमाज मे उसके प्रभाव से व्यभिचार की मात्रा बढती जा रही थी। समाज भीतर ही भीतर गलता जा रहा था। जनसमाज को इससे मुक्त करनेवाला व्यक्ति गोरक्षनाथ था, तभी उसका नाम उसने शताब्दियों तक आदर और भय से अपने हृदय मे बसा लिया।

गोरक्षनाथ ने स्त्री की निन्दा से अपना कार्य प्रारम्भ किया[1] आज उनकी

एकेन शुष्क चणकेन घट पिबामि कुम्भ पिबामि सहसा लवणाद्रकेण
आस्वादयामि यदि रोहित मुण्ड खण्ड गङ्गा पिबामि यमुना सह सागरेण
अलिपिशित पुरन्ध्रीभाग पूजा रतोऽहवहुविध कुलमार्गारम्भ सभावि तेऽह
गुरुचरणरतोऽह भैरवीमाश्रितोऽह पशुजनविरतोऽह भैरवोऽहशिवोऽहम्।

योगी स्वय शिव हो गया है। फिर वह नये रूप से स्त्री की ओर जाता है। अब वह योनि मे देवियो को बिठाने लगा है (प्राणतोषिणी) और उसके बाद तन्त्रो में भगमाला मत्र दिखाई देने ह। सिद्धि की शक्ति भी भग में आकर सकुचित हो गई है।

सर्वधर्मान् परित्यज्य योनिपूजारतोभवेत्। (प्राणतोपिणी)

1. उस समय यदि एक ओर अत्यन्त आसक्ति है तो अत्यन्त अनासक्ति से गोरखनाथ उतने ही विकट ढग से पुकार उठते ह

झमा मारु बैठा मारु मारु जागत सूता।
तीनि लोक भग जाल पसारया कहाँ जाइगौ पूता॥ (पृ० 34)

और

भोगिया सोई जो भगर्थ न्यारा।

किन्तु जिस ढग से वाममार्गियों ने माता तक पर अपना भ्रम चला दिया था, गोरख ने उतनी ही प्रबलता से विरोध किया था।

भग राकसिलो, भग राकसिलो, बिन दन्ता जग पाया लो।
ग्यानी हुता सु, ग्यान मुष रहिया, जीवलोक आपे आप गवाया लो।

स्त्री-निन्दा की बात कही-कही तो असम्भव और व्यर्थ मालूम देती है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि वे बाते मुख्यतया योगी और अवधूत के प्रति कही गई हैं, जो उस समय धर्म के दावेदार समझे जाते थे। ऊपर हम देख चुके है कि गोरक्षनाथ ने अवधूत का क्षेत्र बिलकुल अलग निर्णीत कर दिया था। यद्यपि उनकी किंवदन्तियो मे अनेक राजा तथा जनसाधारण के लोगो का उल्लेख आता है। निस्सन्देह गोरक्षनाथ का मत अपने लिए एक सामाजिक पक्ष सामने रखता था। किन्तु उसका दृष्टिकोण अलग था।

दिन दिन बाघिनी सीथा लागी, रात्री सरीरे सोषै।
विषै लुब्धी तत न बूझै, घरिले बाघनी पोषै।
चामें चाम धसता लोई दिन दिन छीजै काया।
आपा परचै गुरु मुषि न चिन्है फाड़ि फाडि बाघणीं षाया।
बाघनी उपाया बाघनी निपाया बाघनी पाली काया॥
बाघनी डाकरे जौरियो पाषरै, अनुभुई गोरख राया॥ 48॥
रूपे रूपे कुरूपे गुरुदेव, बाघनीं भोले भोले।
जिन जननी ससार दिषाया, ताकौ ले सूते षोले।
गुरू षोजो गुरुदेव, गुरु षोजो बदन्त गोरख ऐसा।
मुषते होई तुम्हे बधनि पडिया ये जोग है कैसा।
चाम ही चाम धसता गुरुदेव दिन दिन छीजै काया।
होठ कण्ठ तालुका सोषी काढि मिजालू षाया।
दीपक जोति पतग गुरु देव ऐसी भग की छाया।
बूढे होइ तुम्हे राज कमाया ना तजी मोह माया।
बदन गोरखनाथ सुनुहु मछदर तुम्हें ईस्वर के पूता
ब्रह्मझरता जे नर राषे सो बोलो अवधूता॥ 49॥

—गोरखबानी, पृ० 143-45

नहीं वाममार्ग की निन्दा करनेवाले ब्राह्मण ग्राह्य धर्म में इतना प्रभाव उस समय निस्सन्देह था जो एक दम योगप्रवाह की दिशा बदलने में समर्थ हो जाता। यह गोरख का ही प्रभाव था कि उन्होंने ऐसा कर दिखाया। उन्होने स्त्री की, आवेश में, अत्यन्त निन्दा की है, जो ऐसी परिस्थिति में स्वाभाविक लगता है। गोरख का स्त्री के प्रति यह भाव, स्त्री की भा... पुरुषकेन्द्रीय समाज में जो परिस्थिति है उसकी ओर इंगित भी करता है। स्त्री को सदैव से ही ...का माध्यम जो माना गया है।

तुलनीय

रावव जो सीता सँग लाई, रावन हरी कउन सिधि पाई।
राजा भरथरि सुनि न अजानी, जेहि के घर सोरह सै रानी
कुचन्ह लिये तखा सोहराई, भा जोगी कोऊ सँग न लाई॥ 134॥ —पदमावत

नव धर्मो का आगमन या पुरानो का नवीन रूप से सगठन। सम्भवत इसमे गोरक्षनाथ को एक कोई झलक देने मे सहायक रहा हो। किन्तु लगता ऐसा है कि यह विशुद्धिमार्ग कुछ नये तथ्यो पर आश्रित था जिसे गोरक्षनाथ ने अब खूब बढा-चढाकर तैयार कर लिया था और वे अब उसका प्रतिपादन करने मे समर्थ हो गए थे। यह भी हो सकता है कि उनके ब्राह्मण तत्त्व का यह अपरोक्ष विशुद्धतावाद का दर्प रूढिवादी ब्राह्मणधर्म को नीचा दिखाने के लिए उठ खडा हुआ था। यह आगे स्पष्ट हो जाएगा।

गुरूद्धार

उस समय गोरक्षनाथ ने अपने गुरु को उस स्त्री साधना से बाहर निकाल लिया। इतिहास ने विस्मय से देखा होगा कि नवयुवक शिष्य अपने अर्धव्यस्क गुरु को उपदेश दे रहा था, विनीत-सा उनके चरणो के पास बैठकर। कितना महान् था मत्स्येन्द्र का व्यक्तित्व जिसने अहकार और दम्भ नही किया वरन् सत्य का उद्भट प्रकाश देखकर सारे कलुषजाल को वह छोडने को उद्यत हो गया[1]। वह जो पहले सिद्धामृत मत का अनुयायी था, बीच मे वाममार्ग मे फँस गया था, अब फिर लौट आया था पवित्र जीवन की ओर।

नई साधना

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोरख की मुख्य विशेषता उनका ब्रह्मचर्य पर विशेष जोर देना था। इसको सरसरी दृष्टि से देखने पर कोई बहुत बडी बात

---

1 सिंघल से गुरु को छुडाकर गोरक्ष उनके तथा मीन (उनके पुत्र) के साथ सुदामापुरी माधोपुर गए। समुद्रतटवर्ती प्रदेश नही उपजाऊ था। मत्स्येन्द्र ने मीन को दीक्षा दी। फिर तीनों ब्रह्मगिरि पर्वत पर गए। यहाँ गोरखनाथ के समाधिस्थ होने पर मत्स्येन्द्र ने सेवा की।

—यो० स० आ०

मगोत गोपीचन्द भरथरी की इसी कथा की ओर मोहन सिह ने इगित किया है।

गोरख कान्हापाव मे उनके स्त्रीजाल में फॅसने की बात जानने के विषय में कहते है (ना० म० तथा अन्य स्थानों में यह कथा उद्धृत है।)

छाटै तजौ गुरु छाटै तजौ तजौ लोभ मोह माया।
आत्मा परचै राखौ गुरुदेव सुन्दर काया।। (टेक)
कान्ही पाव भेटीला गुरु ब्रिघानग्रे सैं।
तायै मैं पाइला गुरु, तुम्हारा उपदेसें।। 1।।
एतें कछु कथीला गुरु, सबैं भैला भोलै।
सर्व रस षोईला गुरु बाघनी चै षोलै।। 2।।
नाचत गोरषनाथ घूघरी चै घातें।
सबै कमाई षोई गुरू बाघनी चै रातैं।। 3।।

नही लगती, क्योकि शाक्त मत के तान्त्रिक और कौलो का उद्देश्य योगी का चरम प्राप्तव्य ही तो था। गोरख ने नई क्या वस्तु प्रतिपादित की ? अगले अध्याय मे हम देखेगे कि इस एक विशेषता से गोरखनाथ ने भारतीय इतिहास की कितनी धाराओ का एकत्रीकरण कर दिया था। उसका प्रभाव हम उनके प्रभाव प्रकरण मे देखेगे।

यह व्यक्ति जो दरिद्र कुटियो से राजमहलो तक अबाध रूप से अपनी गति रखता था, उसका समाज मे न कोई धन-यश था, न पद-यश ही। वह केवल व्यक्ति था। केवल योगी। उसमे यदि एक ओर सहजयानियो की मस्ती थी तो वह दूसरी ओर अपने मत के फैलाने के लिए अत्यन्त जागरूक दृष्टिगत होता है। भारतीय इतिहास मे इस चरित्र के स्थान के समझने के लिए तत्कालीन अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो से इसका मिलान करने की आवश्यकता

रस कुस बहि गईला रहि गई छोई।
भणत मछिद्रनाथ पूता जोग न होई ॥ 4 ॥
रस कुस बहि गईला रहि गईला सार।
बदत गोरषनाथ गुरु जोग अपार ॥ 5 ॥
आदिनाथ नाती मछिन्द्रनाथ पूता।
पटपदी भणीले गोरख अवधूता ॥ 6 ॥ —गोरखबानी

तथा

सुणौ हो मछिन्द्र गोरष बोलै, अगम गवंन कहू हेला।
निरति करी नैं नीका सुणिज्यो तुम्हें सतगुरु मैं चेला ॥ (टेक)
कामनी बहता जोग न होई, भग मुष परलै केता।
जहा उपजै तहा फिरि आवटै, च्यनामनि चित एता।
(सूर्य) द्वादस षोडि (दोष) पषाणा (दूर करे)
नौमत (चन्द्रमा) जीव सींव ना वासा।
चौदह ब्रह्माण्ड नौ एक दम है, इम ही जाइ निरासा।
पवन का नीर ले अबर धोवै स्वासै उसासे आया।
भणत गोरषनाथ इम होइ निरन्तर बीजै बटक समाया ॥ —गोरखबानी

गुरुभक्ति की गोरखनाथ ने यहा सीमा प्रदर्शित कर दी है। --तुलनीय

प्रबद्धाना पाशै सकल गुण माया रसैर्निमग्नाना नित्य भवजलनिधेरन्तरगत।
कृपालेशो बध परिहरति यस्याङ्घ्रितरग प्रवन्दे सानद तमपि गुरूरुप सकरुणम्।
कवित्व पाण्डित्य त्रिभुवनपतित्व नहि कदा न वा स्वर्गसिद्ध न सुखरसाम्यञ्च नियतम्।
न वाञ्छायो मोक्ष परहरपद नैव शिवता यदि स्यात्चेतो मे निरवधिगुरो पाद कमल
—कौलावलीनिर्णय

है। सक्षेप मे इसका रेखाचित्र यो बन सकता है —
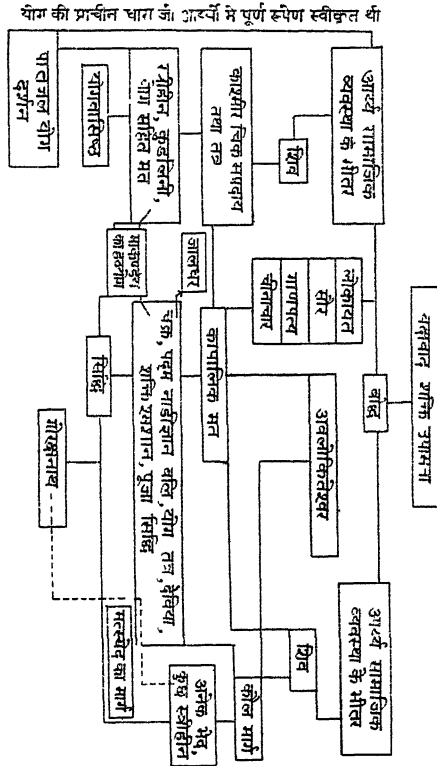
रेखाचित्र स्पष्ट है। स्त्रीहीन कौल मार्ग मे सिद्धामृत मत समझना चाहिए और देवियो मे त्रिपुर सुन्दरी, योगिनी कौल, हाकिनी, डाकिनी इत्यादि। बिन्दुमय रेखा से मत्स्येन्द्र के साधन पथ को समझना चाहिए। जिस कोष्टक मे से वाण निकाला दिखाया गया है उसी मे सम्भवत जालन्धर थे। तत्कालीन शक्ति मार्ग का यही प्रधान रूप दिखाई देता है। पृष्ठभूमि नामक अध्याय तथा उपसहार इन दोनो के अन्त मे दी हुई तालिका का मिलान कर लेने से सहूलियत हो सकेगी। भारतीय मध्य युग के सन्धिकाल में गोरखनाथ को कितना बडा काम मिला था इस रेखाचित्र से कुछ अश तक इसकी ओर इगित होता है। आगे हम इसी विषय को सविस्तार देखेंगे।

मृत्यु

गोरखनाथ की मृत्यु के विषय मे कोई भी ऐतिहासिक तथ्य नही मिलता ।[1] अनेक स्रोतो से भिन्न-भिन्न कहानियाँ मिल जाती है । निःसन्देह गोरखनाथ एक लम्बी आयु तक जीवित रहे होगे क्योकि उन्होने एक सयमी का जीवन व्यतीत किया था । उनकी रचनाओ मे मृत्यु का भय नही है । योगी तो कालदण्ड को भेदकर ब्रह्माण्ड मे विचरण करता है । गोरखनाथ की कायिक मृत्यु होने पर भी उनकी कीर्ति अक्षुण्ण है ।

यहाँ गोरखनाथ के जीवन को दो रूप मे वर्णित करने का प्रयत्न किया गया है । कितना कम है जो वैज्ञानिक रूप मे साराश बनकर प्राप्त है और कितना अधिक है जो चमत्कार-कथाओ के रूप मे बिखरा पडा है । न्यूनप्राय साराश हमारा सत्य को पहचानने का प्रयत्न है । शेष गोरखनाथ का अतुल प्रभाव है, जो बहुत दिनो से चलता आ रहा है । यहाँ गोरक्ष की किंवदन्तियो को पहले से विद्वान जो एकत्र कर चुके है उन्ही से उद्धृत कर दिया गया है । जहाँ मूल स्तोत्रो की आवश्यकता पडी है, वहाँ उनका भी उपयोग किया गया है । बहुत-सी किंवदन्तियाँ शेष रह गई है जिन पर प्रयोग या इगित कालनिर्धारण मे हो चुका है । उनकी पुनरावृत्ति यथासम्भव बचा ली गई है ।

1 मृत्यु के विषय में 'श्री ज्ञानेश्वर चरित्र में' लक्ष्मणराव ने लिखा है ।

जालन्धर पजाब में है और गोरखपुर सयुक्त प्रदेश (वर्तमान में उत्तर प्रदेश) में । इससे मालूम होता है गोरख इन्ही स्थानों में रहे । तथापि महाराष्ट्र के 'करहाड के' समीप 'रेट्रे बुद्रुक' नामक ग्राम के पास मत्स्येन्द्रगढ नाम का एक पर्वत है । और इसी स्थान से मत्स्येन्द्रनाथ की पालकी पढरपुर आया करती है और गोरखनाथ की पालकी ओढ्या नागनाथ के समीप उन्ही की समाधिस्थान में आया करती है । इससे प्रकट होता है कि महाराष्ट्र में ही दोनों का शरीरान्त हुआ ।

किन्तु योगिसम्प्रदायाविष्कृति में इस मत की पुष्टि नही होती । उद्धरण है—फिर एक जगह आपने पृथ्वी में गर्त बनाकर उसमें प्रवेश किया । यह स्थल सरहदी पेशावर नगर के समीप है और वृतान्त के स्मारक स्वरूप यहाँ प्रति रविवार हिन्दू-मुसलमान लोगों का मेला भी लगता है । गोरख के अन्तिम शब्द थे—गुरुभाई गोपीचन्दनाथ, शिष्य भर्तृनाथ, देखना हम जाते है उनके ऐसा कहने से ही योगि समाज ने दोनों को अपना सर्वप्रधान निश्चित कर लिया ।

गोरख की चटाई इतनी चेतन थी कि बहुत दूर पर रहनेवाले शिष्य के स्मरणमात्र से हिलकर उसने गोरखनाथ का ध्यान आकर्षित किया । उसी चटाई पर बैठकर वे स्वर्ग चले गए । —ब्रिग्स

गोरख कलियुग में गोरखपुर से तीन मास की यात्रा जैसे फासले गोरखमढी 'गोरखमण्डी' काठियावाड़ में रहे । ब्रिग्स ने उस स्थान पर ही उनकी मृत्यु के इगित मिलने का वर्णन किया है ।

दर्शन और योग

कुण्डलिनी, साख्य, पातजल योग दर्शन, शकर वेदात, समानता ग्रौर भेद, शाक्त मत ग्रौर उसका समाज, गोरक्षनाथ का दर्शन, हठयोग तथा उनके सिद्धान्त, गोरखपथ, सिद्धि, रामानुज विशिष्टाद्वैतवाद, एक परीक्षा, व्यक्ति-वाद, भारतीय इतिहास शृखला, पूर्ववर्त्ती तथा परवर्त्ती ।

दर्शन और योग*

गोरक्ष की साधना मे शक्ति थी तभी उसने भुजा उठाकर उस विराट तूफान को रोक दिया। अपने युग के एक अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति मत्स्येन्द्र नाथ को उसने अपनी बात का समर्थक बना लिया था। उसने एक अद्भुत क्रांति की थी। क्या गोरखनाथ स्त्री से सचमुच छूट गए थे ? अब हमे यही देखना चाहिए।

कुण्डलिनी

हठयोग प्रदीपिका मे जिन उल्लेखनीय योगियो का नाम आया है उनमे आदिनाथ के बाद मत्स्येन्द्र सर्वप्रथम हैं। श्लावर, आनन्द, भैरव, चौरंगी मीन के साथ गोरक्षनाथ भी आए हैं। चौथे श्लोक मे मत्स्येन्द्र और गोरक्ष का जहाँ नाम है वहाँ टीकाकारने टीका मे आद्या शब्द का अर्थ इस प्रकार लिखा है। हीति प्रसिद्ध मत्स्येन्द्रश्च गोरक्षश्च तौ आद्यौ येषा ते मत्स्येन्द्र गोरक्षाद्या। आद्य शब्देन जालन्धरनाथ भर्तृहरि गोपीचन्द प्रभृतयो ग्राह्या। हठयोग की इस स्पष्ट और सुष्ठु परम्परा के पहले भी इस देश मे मार्कण्डेय का हठयोग था। इस मार्कण्डेय के हठयोग का क्या स्वरूप था वह स्पष्ट नही है। षडाग और अष्टाग योग का भेद विशेष इगित करने मे असमर्थ हैं, क्योकि एक दूसरे ग्रन्थ मे विरोधी तत्वो का समावेश प्राप्त हो जाता है। गुप्त साम्राज्य के पतन काल के समय लिखे गए योग-वासिष्ठ मे कुण्डलिनी शक्ति के उद्बोधन द्वारा प्राप्त होनेवाली सिद्धियो का वर्णन है। कुण्डलिनी शरीर के मर्म स्थान मे, चक्र के आकार वाली, सैंकडो नाडियो का आश्रय, आत्र वेष्टनिका (आँतो से घिरी हुई) नाम की एक नाडी है। उसका आकार वीणा के अग्र-भाग की गोलाई, जल भँवर, या ओकारार्द्ध तथा कुण्डल चक्र के समान है। वह देव, असुर, मनुष्य, खग, नक्र, मृग, कीटादि मे है। वह ऐसे सोई हुई है

---

*यह अध्याय निम्नलिखित ग्रन्थों की सहायता से लिखा गया है —

1. हठयोग प्रदीपिका, स्वात्माराम। 2 योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त, भीकमलाल आत्रेय। 3 शिवसहिता। 4 घेरड सहिता। 5 गोरक्ष पद्धति। 6. अमरौघ शासनम्।

जैसे जाडे से आर्त कुण्डली मारकर सर्पिणी। उरु से लेकर भ्रू तक सबको स्पृशन्ती चचल वृत्ति वाली, अनारत सस्पन्द है। उस नाडी के भीतर, जो कदली कोष की सी कोमल है, वीणा की सी स्पन्दा एक परा शक्ति है। कुण्डलाकार होने के कारण उसका नाम कुण्डलिनी है। वह प्राणिमात्र की परम शक्ति गति देने वाली है। क्रुद्ध सर्पिणी की भाँति फुंकार मारती वह ऊर्ध्वमुखी निरन्तर सास लेती समस्त शरीर मे स्पन्दन उत्पन्न करती है।

हृदय कोष मे आनेवाली सब नाडियाँ उससे इस प्रकार सम्बद्ध है जैसे समुद्र मे नदियाँ मिलती है, उत्पन्न होकर विलीन हो जाती है। नाडियो के मिलन और सम्बन्ध से सब ज्ञानो का बीज सामान्य ज्ञान से उसे पुकारते है। पाँचो ज्ञानेन्द्रियो का बीज कुण्डलिनी शक्ति मे स्थित है और प्राण के द्वारा वह बीज सचालित होता है। वह कुण्डलिनी शक्ति, स्पदन, स्पर्श और ज्ञान सब की शुद्धकला है। सकल्पयुक्त होने मे उसका नाम कला है और चेतन होने से सेचित् है। जीवन से जीव, मनन से मन और बोध से बुद्धि होती है यह प्रसिद्ध है। अहकार प्राप्त होने से वह पुर्यष्टक कहलाती है। अपान वायु का रूप धरकर वह शक्ति सदा अधोन्मुखी होती है। समान वायु से नाभिस्थित तथा उदान मार्ग से ऊर्ध्वमुखी होती है। सब गति नीचे होने से वह शरीर से निकल जाती है और मनुष्य मर जाता है। इसी भाँति मध्य मे रहकर वह ऊपर निकल जाए तो भी मनुष्य को मृत्यु प्राप्त होती है और यदि ऊपर-नीचे न बहकर किसी जीव की परम शक्ति मध्य भाग मे निरुद्ध होकर स्थिर हो जाय तो वह प्राणी सब रोगो से मुक्त हो जाता है। पुर्यष्टक नाम जीव की प्राण नामक शक्ति का नाम कुण्डलिनी है। वह शरीर मे इस प्रकार है जैसे फूल मे सुगध देने वाली मजरी। इस देह रूपी यन्त्र के उदरभाग मे नाभि

---

7 दि सर्पेंण्ट पावर, आर्थर एवेलान। 8 शक्ति एण्ड शाक्तास, वुडरौफ। 9 नाथ सम्प्रदाय, हजारीप्रसाद द्विवेदी। 10 गोरखनाथ एण्ड दि कनफटायोगीज, ब्रिग्स। 11 कर्पूरादि स्तोत्र, एवेलान। 12 महानिर्वाण तन्त्र, एवेलान। 13 सिद्धसिद्धान्त सग्रह, स० भवन, टेक्स्ट्स। 14. सरस्वती भवन सीरीज, वाल्यूम 2, गोपीनाथ कविराज। 15 सर्वदर्शन सग्रह। 16. पुरश्चर्यार्णव भाग 1। 17 गोरक्ष सहिता। 18 गोरक्ष सिद्धान्त सग्रह। 19. गोरखनाथ एण्ड मिडीवियल हिन्दू मिस्टिसिज्म, मोहनसिह। 20 दि वर्ल्ड एज पावर-रियालिटी, वुडराफ। 21 कालिविलास, एवेलान। 22 कौलावली निर्णय, एवेलान। 23 कौलज्ञान निर्णय, बागची। 24 कल्याण, शिवाक। 25. सरस्वती भवन सीरीज, भाग 2, 6। 26 एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स। 27. प्रोसीडिंग्ज आफ दि ओरियण्टल कान्फ्रेंस 2, 5, 6, 12वा सेशन।

के पास परस्पर मिले हुए मुखवाली धौकनियो के समान माँस का पिण्ड इस प्रकार काँपने हुए स्थित है जैसे कि ऊपर और नीचे से बहनेवाले दो जलो के बीच स्थित सदा हिलनेवाला वेतस कुज। उससे भीतर उसकी लक्ष्मी कुण्डलिनी शक्ति ऐसे स्थित है जैसे मूँगे की पिटारी मे मोती की माला। रुद्राक्ष की माला के समान वह नित्य सरसराती है और दण्ड पीडित सर्पिणी के समान ऊर्ध्वमुखी है।

उस कुण्डलिनी मे पूरक प्राणायाम के अभ्यास से जब प्राणी समरूप से स्थित हो जाता है तब सुमेरु के समान स्थिरता और गुरुता की सिद्धि हो जाती है। जिस प्रकार पूरक प्राणायाम के अभ्यास से शारीरिक और मानसिक परिस्थिति को सहकर कुण्डलिनी शक्ति अपने मूलाधार स्थान से ऊपर उठकर सुषुम्णा नाडी के द्वारा ब्रह्मरध्र पर्यंत आती है, और दण्डाकारनिभ होकर सर्पिणी-सी ऊर्ध्वगति को प्राप्त होती है, और सब नाडियो की शक्ति को भी अपने साथ ऊपर ले जाती है तब उसमे शरीर को उडा ले जाने की ऐसी सामर्थ्य हो जाती है जैसे हवा से भरी नीरध्र मशक जल पर तैरती है। जिस समय अन्य नाडियो के व्यापार को रोकनेवाले रेचक प्राणायाम के प्रयोग से कुण्डलिनी शक्ति ब्रह्म नाडी (सुषुम्णा) के भीतर को होकर मस्तिष्क द्वार उन्मुक्त कर वहाँ से बारह अगुल ऊपर की ओर मस्तिष्क मे जाकर एक मुहूर्त के लिए भी स्थिर हो जाती है तो आकाशगामी सिद्ध लोगो का दर्शन होता है। रेचक के अभ्यासरूपी युक्ति से प्राणो को मुख से 12 अगुल बाहर बहुत समय तक स्थिर करने के अभ्यास से योगी दूसरे पुरुष के शरीर मे प्रवेश कर सकता है। रेचक के अभ्यास से जब योगी अपने जीव को कुण्डली के निवास स्थान से बाहर इस प्रकार निकाल सके जैसे हवा मे से सुगन्ध को, तब वह इस चेष्टा-रहित शरीर को लकडी और पत्थर के समान त्याग देता है और दूसरे शरीर मे, चाहे वह जड हो अथवा चेतन, इच्छानुसार प्रवेश करके उसकी सम्पत्ति का भोग कर सकता है। इस प्रकार योगी दूसरे शरीर के भोगो को भोगकर, यदि उसका शरीर बना रहा तो उसी मे, नही तो अपनी रुचि के अनुसार किसी दूसरे शरीर मे प्रवेश करके स्थिर रहता है। अथवा अपनी चिति को समस्त जगत् मे फैलाकर सारे शरीरो मे व्याप्त होकर सर्वत्र स्थिर रहता है। हृदय कमल के चक्र के कोष के ऊपर (अग्नि) तेज का एक कण ऐसा चमकता है जैसे सोने का भँवरा अथवा साध्य मेघ मे विद्युत् कण। वह प्रकाश कण विस्तार भावना के द्वारा वायु की भाँति फैलने और ज्ञानरूप से शरीर मे सूर्यनिभ चमकने लगता है। वह अग्निकण विस्तार पा समस्त अगो सहित शरीर को गला देता है जैसे सोने को अग्नि। शरीर के पार्थिव और जलमय

दोनो भागो को जलाकर अपने-आप भी वह कण विक्षुब्ध प्राण द्वारा कही ऐसे गायब हो जाता है जैसे वायु द्वारा नीहार। उस समय सुषुम्णा नाडी के जल जाने पर कुण्डलिनी शक्ति आकाश मे ऐसी स्थित होती है जैसे अग्नि से निकली हुई धुएँ की लटा। उस समय वह कुण्डलिनी शक्ति अपने भीतर मन, बुद्धि, जीव, अहकार-सहित और नाना प्रकार की वासनाओ से पूर्ण आकाश मे ऐसी सुशोभित होती है जैसे कि नगर से निकला हुआ धुएँ का स्तम्भ। ऐसी अवस्था मे उसका प्रवेश चाहे जिस वस्तु—कमलदण्ड, पहाड, तृण, दीवार, पत्थर, आकाश, पृथ्वी—मे हो सकता है। वही कुण्डलिनी जब स्थूल भाव को धारण करना चाहती है तो फिर इस भावना द्वारा रस से इस प्रकार भरने लगती है जैसे सूखा हुआ चडस पानी से भरे जाने पर फूल जाता है। रस से पूर्ण होकर वह जिस आकार को चाहे ऐसे धारण कर लेती है जैसे चित्रकार के मन की रेखाएँ नाना प्रकार के रूप धारण कर लेती है। दृढ भावना द्वारा वह हड्डियो की इस प्रकार रचना कर लेती है जैसे कि माता के गर्भाशय मे पडा सूक्ष्म बीज स्थूल आकार को धारण कर लेता है। तब वह जीव-शक्ति इच्छानुसार बडे-से-बडा (सुमेर के समान) और छोटे-से-छोटा (तृण के समान) आकार धारण कर सकती है।[1]

जैसे हवा और उसकी चलने की क्रिया, आग और उसकी गर्मी सदा एक ही होती है, वैसे ही चिति और स्पन्द शक्ति एक ही है। मनोमयी स्पन्द शक्ति ब्रह्म से भिन्न नही है। जबकि चिति शक्ति, क्रिया देवी, क्रिया से निवृत होकर, अपने स्थान की ओर आत्मा मे वापस आ जाती है और वही पर शान्त भाव से स्थित रहती है तो उस अवस्था को शिव (शान्त ब्रह्म) कहते है। क्रियादेवीचिच्छक्तिरूपी उस महान् आकृतिवाली स्पन्द शक्ति का अपने असली रूप मे स्थित रहने का नाम शिव है। चिति की चेतनता कुछ स्पन्दन बिना नही रहती। प्रकृति से परे, पुरुष दिखाई न देनेवाला है। भ्रमरूपा प्रकृति परमेश्वर की इच्छारूपी स्पन्दात्मक शक्ति है, तभी तक भ्रमणशीलता है, जब तक कि वह नित्य तृप्त और अनामय शिव का दर्शन नही करती। सवित् मात्र सत्ता से तादात्म्य होने पर जब प्रकृति दैवयोग से पुरुष से स्पर्श करती है तब वह उससे तादात्म्य ग्रहण करती है। शिव की इच्छा चिच्छक्ति शिव को प्राप्त कर शान्त हो जाती है।[2]

---

1. यो० वा० और उ० सि०, आत्रेय, पृष्ठ 267-274।
2 यो० वा० और उ० सि०, आत्रेय, पृष्ठ 313-315।

द्वैत यथा नास्ति चिदात्म जीवयो-
स्तथैव भेदोस्ति न जीव चित्तयो ।
यथैव भेदोऽस्ति न जीव चित्तयो
स्तथैव भेद्रोऽस्ति न देह कर्मणो ।।3।। (3/95/12)

घडा जिस प्रकार मिट्टी ही है उसी प्रकार प्रकृति भी आत्मा ही है। आत्मा का स्पन्दन प्रकृति है। ब्रह्म से उत्पन्न हुए मनो को ब्रह्म ही समझना चाहिए। मन ब्रह्म की शक्ति है। उसकी मनोमय स्पन्द शक्ति उससे अनन्य है—एक ही है। ईश्वर जगत् के बिना नही है। ईश्वर अहभाव और जगत् के बिना नही रहता। चित् की सत्ता जगत् की सत्ता है और जगत् की सत्ता चित् की सत्ता है। सब भेद और विकार ईश्वर मे आकाश के नीलेपन के समान ही स्थित है। जैसे—

ब्रह्म व्योम जगज्जाल ब्रह्म व्योम दिशो दश,
ब्रह्म व्योम कलाकालदेशद्रव्य क्रियादिक,
पदार्थजात शैलादि यथा स्वप्ने पुरादिच,
चिदेवैक पर व्योम तदा जाग्रत्पदार्थ भू ।

सब चितरूप ब्रह्म ही है और कुछ भी नही है।

सांख्य

साख्य के प्रवर्तक कपिल मुनि है। उन्होने स्वय कहा है कि जन्म-मृत्यु से कैवल्य मार्ग उन्होने शिव से ही सीखा है। अब तत्त्वसमास नामक साख्य सूत्रो का सक्षिप्त हिन्दी मे अनुवाद किया जाता है। साख्य और योग को पृथक्-पृथक् अविवेकी लोग ही जानते है, न कि पण्डित लोग। सम्यग् अर्थात् अभ्यासी एक मे ही दोनो का फल प्राप्त करता है। गीता मे साख्य योग को ज्ञान योग तथा सन्यास योग के नाम से ही पुकारा गया है। ससार मे सब सुखी होना चाहते है। दु ख की जड अज्ञान है। सगति—मूल तत्त्व दो प्रकार के है, एक जड और एक चेतन। जड के अवान्तर भेद 24 है 25वॉ चेतन तत्त्व है। जड तत्त्व के प्रथम दो भेद प्रकृति और विकृति है। प्रकृति 8 है। प्रधान अर्थात् मूल प्रकृति महत्तत्त्व, अहकार और पॉच तन्मात्राएँ शब्द तन्मात्रा, स्पर्श तन्मात्रा, रूप, रस तथा गध तन्मात्रा । 16 विकृतियाँ है (पॉच स्थूल भूत—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, 11 इन्द्रियॉ=5 ज्ञानेन्द्रियॉ × श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, और घ्राण और 5 कर्मेन्द्रियॉ—वाणी, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा तथा 11वॉं मन है)। नये तत्त्व के उपादान कारण को प्रकृति तथा इसके विपरीत को विकृति

कहते है। जड तत्त्व के 24 विभागो मे से जो 8 प्रकृतियाँ बतलाई गई है उनमे से प्रधान—मूल प्रकृति ही एक केवल प्रकृति है—बाकी प्रकृति और विकृति दोनो है। महत्तत्व (समष्टिचित्त), प्रधान (मूल प्रकृति) की विकृति और अहकार की प्रकृति है। चेतन तत्त्व पुरुष है। जड तत्त्व से सर्वथा विलक्षण है। इस चेतन तत्त्व की सन्निधि के कारण पूर्वोक्त जड तत्त्व मे एक प्रकार का क्षोभ हो रहा है जिससे प्रधान मे महत्तत्त्व, महत्तत्त्व मे अहकार, अहकार मे तन्मात्राओ और इन्द्रियो का और तन्मात्राओ मे पाँच स्थूल भूतो का परिणाम हो रहा है। चेतन तत्त्व सख्या की सीमा से परे है। जड तत्त्व की उपाधि से उसमे सख्या का आरोप कर लिया जाता है। तभी विकल्प से पुरुष मे बहुत्त्व कहा जाता है। चेतन से प्रतिबिम्बित महत्तत्त्व मे जब समष्टि अहकार बीज रूप से किया हुआ हो तो उसको समष्टि अस्मिता कहते है। जड तत्त्व मे सब प्रकार के परिणामो का निमित्त कारण पुरुष है और इन सारे परिणामो का प्रयोजन भी पुरुष का भोग और अपवर्ग ही है। प्रकृति के सत्त्व, रजस् तथा तमस् तीन गुण है। सृष्टि और प्रलय इन तीनो गुणो की अवस्था विशेष है। 11 इन्द्रियाँ और 5 स्थूल भूत इन 16 केवल विकृतियो का जो तीन गुणो के केवल विकार है, वर्तमान स्थूल रूप को छोडकर अपने कारण अहकार और 5 तन्मात्राओ मे क्रम से लीन हो जाना पुरुप कहलाता है। सृष्टि के तीन भेद है—अध्यात्म, अधिभूत तथा अधिदैव। अध्यात्म—बुद्धि, अहकार, मन, इन्द्रिय तथा शरीर से सम्बद्ध है। अधिभूत—गौ, अश्व, पशु पक्षी अन्य प्राणियो से तथा अधिदैव—पृथ्वी, सूर्य आदि दिव्य शक्तियो से सम्बद्ध है। आध्यात्मिक दुख-सुख दो प्रकार का है—शारीरिक और मानसिक। बुद्धि की पाँच वृत्तियाँ है। वृत्तियाँ पाँच प्रकार की है—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति। प्रमाण तीन प्रकार का है—प्रत्यक्ष अनुमान और आगम। विपर्यय मिथ्या ज्ञान है, जैसे रज्जु मे सर्प भ्रम। विकल्प भेद मे अभेद है। अभाव की प्रतीति निद्रा है। स्मृति इन पाँचो वृत्तियो द्वारा अनुभूत ज्ञान का स्मरण है।

पाँच ज्ञान के स्रोत है—ज्ञानेन्द्रिय, नेत्र, श्रोत्र, घ्राण-रसना और त्वचा। पाँच वायु है, प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान। प्राण का निवासस्थान हृदय, अज्ञान का गुदा, समान का नाभि, व्यान का नाडी जाल तथा उदान वायु सूक्ष्म शरीर को शरीरान्तर वा लोकान्तर मे ले जाता है। कर्म की पाँच शक्तियाँ है—बोलना, पकडना, चलना, मूत्र-त्याग, मल-त्याग। इन कामो को करनेवाली पाँच कर्मेन्द्रियाँ है—वाणी, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा। अविद्या पच पर्वा है—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेश, अभिनिवेश। अशक्ति 28 प्रकार की है जिनमे बुद्धि की अशक्ति 17 तरह की है। इसमे 9 प्रकार की तुष्टि

तथा 8 प्रकार की सिद्धि है। दस मूलभूत धर्म है—अस्तित्व, योग, वियोग, शेष, वृतित्व, एकत्व, अर्थतत्व, अन्यता, अकर्तृत्व और बहुत्व। अव्यक्त की पुरुप के अनुकूल प्रवृत्ति सृष्टि है। प्राणि सृष्टि 14 प्रकार की है—तीन प्रकार के बध तथा तीन प्रकार के मोक्ष है, तीन ही प्रमाण है। यह जाननेवाला दु ख से नही दबाया जा सकता। हेय, हेय हेतु, हान तथा हानोपाय साख्य के मुख्य सिद्धान्त है। साख्य दर्शन पुरुष का बहुत्व है। ईश्वर प्रणिधान से समाधि लाभ होता है। क्लेश कर्म, उनके फल और वासनाओ से असम्बद्ध पुरुष विशेष ईश्वर चेतन है। ईश्वर ईशनशील अर्थात् इच्छा-मात्र से ससार का उद्धार करने मे समर्थ है। मनीषी इद्रिय, मन से युक्त आत्मा को मोक्ता कहते है। सर्वज्ञता का बीज ईश्वर मे निरतिशय है। यह सारा ससार पुरुष की स्वभाव-रूपा स्थिति का ज्ञान करने के लिए है। अविद्या के अभाव से सयोग का अभाव होता है। यह 'हान' है और यही मोक्ष है। निर्मल विवेक ख्याति हान का उपाय है। जानना, करना, साक्षात्, बनाना, अधिकार, गुणो का प्रयोजन समाप्त कर अपने कारण मे लीन होना, गुणो से परे हो अपने स्वरूप मे स्थित होना यह सात प्रान्त भूमि प्रज्ञा है। जिसमे और कुछ शेष नही रहता। चित्त मे निरोध, परिणाम तथा सस्कार शेष निवृत्त हो जाते है। चित्त को बनानेवाले गुण, पुरुष का भोग अपवर्ग का प्रयोजन पूरा करके अपने कारण मे लीन हो जाते है और पुरुष अपने कैवल्य रूप मे अवस्थित हो जाता है। पुरुषार्थ से शून्य गुणो का निज कारण मे लीन होना कैवल्य है। चितिशक्ति की स्वरूपा-वस्थिति ही कैवल्य है।

पातंजल योग दर्शन

पातजल दर्शन पर सर्व दर्शन सग्रह तथा अन्य[1] ग्रन्थो से यहाँ साराश दिया जाता है। सेश्वर साख्य मत ही, पतजलि का योग शास्त्र है। इसके चार पाद है, समाधि पाद, साधन पाद, विभूति पाद, कैवल्य पाद। पहले पाद मे योग शब्द का अर्थ चित्तवृत्ति का निरोध है। द्वितीय मे तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान, क्रिया योग तथा निर्देशपूर्वक व्युत्थित चित्त का क्रिया योग, यमादि पाँच बहिरग साधन का वर्णन है।

---

1 पातजल योग प्रदीप, स्वामी श्री ओमानन्द। 2 योगसाधन की तैयारी, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर। 3 योगानुवाद, राधारमन चतुर्वेदी। 4 योग दर्शनम्, प्रभुदयाल। 5 योग उपनिषद्स्। 6 एन इण्ट्रोडक्शन टु दि योग फिलासफी, वसु। 7. यौगिक साधना, उत्तरयोगा। 8 सर्वदर्शन सग्रह।

तृतीय मे देश बन्ध, चित्त धारणा, ध्यान, समाधित्रय इत्यादि का उल्लेख है। चतुर्थ मे जन्म, औषधि, मत्र, जप और समाधिजन्म सिद्धि कहकर कैवल्य का मर्म बताया गया है। प्रधान प्राचीन 25 तत्व है। 26वाँ परमेश्वर है। वह परमेश्वर स्वेच्छाकर्म से निर्माण शरीर मे अधिष्ठान करके लौकिक और वैदिक सम्प्रदाय की वर्तना करता है और प्राणि-मात्र पर अनुग्रह करता है। योग के 8 भेद है। राज योग अर्थात् ध्यान योग, ज्ञान योग अर्थात् साख्य योग, कर्म योग अर्थात् निष्काम कर्म अनासक्ति योग, भक्ति योग, हठ योग इत्यादि। सब योग राजयोग के अन्तर्गत है। केवल राजयोग के लिए हठयोग की विद्या का उपदेश किया जाता है। यह हठयोग प्रदीपिकाकार का भी कथन है। लययोग और कुण्डलिनीयोग तो राजयोग ही है।

चित्तवृत्ति का निरोध ही जो योग है तो चित्त की पॉच भूमियाँ है। मूढावस्था 'तमोगुण', क्षिप्तावस्था 'रजो गुण', विक्षिप्तावस्था 'सतोगुण', एकाग्रवस्था 'निरुद्धावस्था' तथा 'विवेकख्याति' द्वारा पुरुष भेद का साक्षात्कार। चित्त जड़ है पर ज्ञान पुरुष से प्रतिबिम्बित है। पुरुष की चित्तवृत्ति चेतन-मात्र होती है। पुरुष और वृत्ति तब एक-से दिखाई देते है। अक्लिष्ट—वैराग्य आदि अभ्यास से प्राप्त होती है—उत्पन्न होती है। वृत्तियाँ प्रमाण, विपर्यय, विकल्प निद्रा, स्मृति है। प्रमाण साख्य जैसे ही तीन है। विपर्यय मिथ्या ज्ञान है। विकल्प शब्द से उत्पन्न ज्ञान है, अभाव की प्रतीति निद्रा है। तन्मात्र-विषयक ज्ञान स्मृति है। चित्तवृत्ति-निरोध के दो उपाय है—अभ्यास और वैराग्य। अभ्यास से भूमि दृढ होती है। दिखती और सुनाई देती बातो मे जिसकी तृष्णा अशेष हो चुकी है उसे वशीकार नामक वैराग्य होता है। विकार हेतु होने पर भी चित्त डगमगाता नही है। यह अवस्था आगे बढकर परवैराग्य कहलाती है। वैराग्य की चार सज्ञा है—यतमानव्यतिरेक, एकेन्द्रिय, वशीकार, रागद्वेष से आशिक निवृत्त जब मन मे भी नही रहती तब चौथी अवस्था वशीकार कहलाती है। वितर्क, विचार, आनन्द, अस्मिता, अनुगमात से यह अवस्था सम्प्रज्ञात समाधि है। वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत, अस्मितानुगत समाधि ही सम्प्रज्ञात समाधि है। इसमे वस्तु सशय और विपर्यय (अविद्या) से रहित दृश्यमान होती है, अस्मितानुगत मे बीज रूप से जो अहकार रहता है वह अनुभव करता है 'मै सुखी हूँ'। अन्नमय कोश से प्राणमय कोश जहाँ से मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश होकर आत्मा शुद्ध आत्मतत्त्व तक पहुँचता है। इसमे वह स्थूल कर्म, ज्ञानेन्द्रियो से होकर अहकार, जहाँ से चित्त, महत्त्व होकर ज्ञान और आलोक प्राप्त करता है। बार-बार सम्प्रज्ञात समाधि से विकार बहुत कम रह जाने पर वह दशा असम्प्रज्ञात समाधि

कहलाती है। जो वितर्क और विचार समाधि के परे तथा आनन्दानुगत है, उन्हे विप्रत्यय नामक असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है अर्थात् वे जन्म से ही योग प्रवृत्त होने की सामर्थ्य प्राप्त करते है और पूर्वजन्म की योगसिद्धि उन्हे नये जन्म मे सहायता देती है। जिन्हे ऐसा नही होता उन्हे उपाय प्रत्यय समाधि होती है।

ईश्वर प्रणिधान से शीघ्रतम समाधि लाभ होता है। प्रकृति और पुरुष से यह ईश्वर भिन्न है। क्लेश कर्म, कर्म फल से अलग यह विशेष है—चेतन ईश्वर है। इन्द्रिय और मनोमय आत्मा भोक्ता है। माया प्रपच का उपादान कारण है और माया का प्रभु प्रेरक परमेश्वर उसका निमित्तकारण है। ईश्वर मे अन्य पुरुषो से विशेषता है कि वह त्रिकाल मे ऊपर बताई बातो से असम्बद्ध है। वह काल से वद्ध नही है। उसका वाचक ओम अक्षर है। ओम का बार-बार चिंतन ईश्वर प्रणिधान है। जिसके द्वारा प्रत्येक चेतना का साक्षात्कार होता है। ईश्वरोपासना से जीव और ईश्वर दोनो का ज्ञान होता है। यह अविद्याविशिष्ट जीव है, वृहदारण्यक उपनिषद् मे कहा है कि मन तो अनन्त है। अर्थात् विभु है, इसकी वृत्ति सकोच और विस्तारवाली है। समाधि की एकाग्रता से सत्व रजस् को दबाता है जिससे सूक्ष्म शरीर एकाग्रता वृत्ति दिखाने मे असमर्थ हो जाता है। तब विवेक ख्याति से परे आत्मा अपने शुद्ध रूप मे ठहरती है। दौर्मनस्य, अपूर्ण इच्छा से क्षोभ, अगमेजयत्व अर्थात् शरीर कपन, श्वास अर्थात् वायु पर अधिकार न होना तथा प्रश्वास होना यह योगी के लिए विघ्न है।

एकत्व के अभ्यास से यह दूर हो सकते है। इसलिए वायु पर अधिकार करना आवश्यक है। वायु दस प्रकार के बताए है प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनजय। ये प्राणवायु है। योगी याज्ञवल्क्य ने इनके कार्यो को बताया है। प्राण पर अधिकार होने से शरीर, इन्द्रिय और मन पर भी अधिकार होता है। प्राणो को वश मे करने को ही प्राणायाम कहते है। गन्ध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द से सब बँध जाते हैं। मन स्थिर होता है। शोक-रहित ज्योतिष्मती वृत्ति मन को साधती है। योगी वीतराग हो जाता है अथवा ध्यान अभिमत (इच्छित) मे टिकता है। अब परमाणु और आकाश, सूक्ष्मतम और महानतम दोनो का वशीकार हो जाता है। जो वस्तु जैसी है वैसी ही उसकी धारणा होती है। स्मृति शुद्ध हो जाने पर अर्थ-मात्र से भासित होनेवाली—रूप के ज्ञान से रहित चित्तवृत्ति निर्वितर्क समापत्ति कहलाती है। चित्त यद्यपि बिलकुल शून्य नही होता, यदि वैसा हो तो वह पदार्थ को ग्रहण नही कर सकता, परन्तु उसे ऐसा प्रतीत अवश्य होने

लगता है । अब ध्यान, सवितर्क और सविचार समापत्ति और समाधि मे भेद है, प्रथम मे ध्याता, ध्यान और ध्येय का ज्ञान है । अगले दो मे ध्यान विषयक शब्द तथा अर्थ के ज्ञान से मिला विकल्प रहता है । समाधि मे मात्र ध्येय स्वरूप रहता है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन पाँचो तन्मात्राओ से प्रथम आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी-सज्ञक सूक्ष्म परमाणु उत्पन्न होते है। तत्पश्चात् सूक्ष्म परमाणुओ मे आकाशादि स्थूलभूत उत्पन्न होते है । जो तत्त्व कारण मे लीन हो जाता है, अथवा उसका बोध करता है वही लिग है। प्रधान प्रकृति इन दो बातो से रहित है—अत वह अलिंग है । अध्यात्म प्रसाद होने से प्रज्ञा ऋतभरा होती है, अर्थात् सत्य धारण करनेवाली । पर वैराग्य से उसके भी निरोध हो जाने पर जब सब सस्कार समाप्त हो जाते है तब निर्बीज समाधि होती है । यह समाधिपाद हुआ ।

मध्यम अधिकारी के लिए साधन पाद है । तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान योग है । अविद्या ही सारे क्लेशो की जड है । अनित्य मे नित्य, अपवित्र मे पवित्र, दु ख मे सुख और अनात्मा मे आत्मा को समझने का ज्ञान ही अविद्या है । दृष्ट और दर्शन का एक-सा भासित होने वाला ज्ञान अस्मिता क्लेश है । पुरुष दृष्टा है । चित्त का दर्शन उसका एक कारण है । पुरुष चैतन्य, क्रियारहित, केवल, अपरिणामी स्वामी है जबकि चित्त जड, क्रियामय, त्रिगुणमय और स्व अर्थात् सम्पत्ति है । पर दोनो ही तो एक से दिखाई देते है । जिससे ममत्व और अहमत्व उत्पन्न होता है । राग, द्वेष, मृत्यु-भय पैदा होते है । इन्हे योगी को असप्रज्ञात समाधि से अपने कारण मे लीन कर लेना चाहिए । क्रिया योग से अलग की हुई उपर्युक्त स्थूल वृत्तियो का सूक्ष्म होकर दग्ध-सा बीज-सा बनाकर ध्यान से त्यागने को क्लेश समाप्त करना कहते है । जो यदि बचे रह गए तो अगले जन्म मे भोगने पडते है, जो जाति, आयु और भोग के नाम से सामने आते है । विषय सुख के भोगकाल मे भी परिणाम दु ख, ताप दु ख और सस्कार दु ख बना रहता है । अत विवेकी पुरुष को विषयजन्य सुख तो दु ख ही है । दु ख त्याज्य है । दृष्टा और दृश्य का सयोग हेय हेतु (दु ख का कारण) है । प्रकाश क्रिया, स्थिति जिसका स्वभाव है, भूत और इन्द्रिय, स्वरूप तथा भोग और अपवर्ग प्रयोजन है, वह दृश्य है । जो गुण तीन है उनकी चार अवस्थाएँ है—विशेष, अविशेष, लिंगमात्र और अलिंग । विशेष 16, अविशेष 6, लिंगमात्र, सत्तामात्र महत्तत्व तथा अलिग मूल प्रकृति है । यह अलिंग पुरुष के लिए व्यर्थ है । दृष्टा देखने की शक्ति-भर है । शुद्ध होकर भी चित्त की वृत्तियो के अनुसार वह देखनेवाला है । वह पुरुष के हेतु ही समस्त दृश्य है । स्व और स्वामि शक्ति के स्वरूप की उपलब्धि का कारण सयोग है। अर्थात् वह साक्षात् ही सयोग कहलाता है । अदर्शन रूपी

सयोग का कारण अविद्या है। विवेक ख्याति अर्थात् विवेक ज्ञान शुद्ध हो तो वह हान का उपाय है। निर्मल विवेकख्याति मे प्रज्ञा उत्पन्न होती है। उसकी सात प्रकार की सर्वोच्च भूमि होती है। ज्ञेयशून्य, हेयशून्य, प्राप्यप्राप्त, चिकीर्षाशून्य (जो करना था वह कर लिया) चित्त विमुक्ति, गुण लीनता, आत्म-स्थिति अवस्था से होता योगी जीवन्मुक्त कहलाता है। चित्त जब अपने कारण मे लीन होता है तब उसे विदेह मुक्त समझना चाहिए। योगाग अनुष्ठान से अशुद्धि क्षय होने पर ज्ञान दीप्ति से विवेक ख्याति प्रकाशित होती है। अब यम कहते है वे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह है। अस्तेय का अर्थ अन्याय से धन न छीनना है तथा अपरिग्रह का अर्थ भोग सामग्री से अधिक न जोडना है। जाति, देश, काल, समय से अवच्छिन्न नियम—यम जो सार्वभौम है—वे महाव्रत कहलाते हे । शौच, सतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान यह नियम है। शौच दो है—बाह्य और आभ्यन्तर। सब कर्मो का ईश्वर मे समर्पण ईश्वर प्रणिधान है। जब चित्त मे वितर्कभाव उठे तब उन्हे उनके विपरीत भावो के चिंतन से दबाना चाहिए। वितर्क, हिंसा आदि यमनियम विरोधी है। सत्य मे योगी की दृढता हो जाने पर वह क्रिया-फल का आश्रय बनता है, अर्थात् अमोघ वचन इत्यादि। ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा से वीर्यलाभ होता है। शौच से अपने अगो से जुगुप्सा होती है तथा दूसरो मे अससर्ग। आभ्यन्तर शुद्धि मे चित्त की शुद्धि, मन की स्वच्छता, एकाग्रता, इद्रिय विजय, आत्म दर्शन-योग्यता प्राप्त हो जाती है। सतोष से उत्तम सुख होता है। तप से अशुद्धि-क्षय होने पर शरीर और इद्रिय शुद्ध होते है। स्वाध्याय से इष्ट देवता का साक्षात् होता है। समाधि की सिद्धि ईश्वर-प्रणिधान से होती है। अब आसन का लक्षण बताते है। स्थिर सुखमासन। जो स्थिर व सुखदायी हो वह आसन है। जिस रीति से स्थिरतापूर्वक बैठ सके वही आसन है। इसमे कठिनता का आभास नही है। जब योगी स्वाभाविक चेष्टा नही करता आसन की सिद्धि होती है, जिससे द्वन्द्व का प्रहार बन्द होता है। आसन मे श्वास-प्रश्वास को रोकना प्राणायाम है। योगी याज्ञवल्क्य के अनुसार प्राण और अपान को मिलाना प्राणायाम है। प्राणायाम की चारो अवस्था समाप्त होने से प्रकाश का आवरण अर्थात् विवेक ज्ञान का परदा क्षीण यानी फट जाता है। धारणा मे मन की योग्यता होती है। इन्द्रियाँ चित्त का अनुकरण करने लगती है। प्रत्याहार से इन्द्रियो का उत्कृष्ट वशीकार होता है। पौराणिक मत है कि प्राणायाम द्वारा पवन और प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियवशीकृत करके शुभ आश्रय मे चित्त को स्थान दे।

साधन पाद मे योग के पाँच बहिरग साधन—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार बतलाये गए है। अब विभूतिपाद प्रारम्भ करते हैं। इसमे अन्तरग

धारणा, ध्यान, समाधि का निरूपण है । इन तीनो को मिलाकर सयम कहते है । जब ध्यान का स्वरूप शून्य-जैसा हो जाता है तो उसे समाधि कहते है । सयम की सिद्धि से प्रज्ञा का आलोक फूटता है । यम, नियम की अपेक्षा यह तीनो अन्तरग है । किन्तु निर्बीज समाधि की अपेक्षा बहिरग है । क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्तावस्थाएँ अर्थात् व्युत्थान के सस्कार का दबना और निरोध अर्थात्, परवैराग्य या रुकने के सस्कार का प्रगट होना, इन दो सस्कारो मे चित्त का लगना निरोध परिणाम कहा जाता है । व्युत्थान के सस्कार वृत्तियो के निरोध होने पर भी नही रुकते । निरोध सस्कार स्थिर करने से चित्त की प्रशान्त गति होती है ।

धर्म परिणाम (अन्य धर्म प्राप्ति), लक्षण परिणाम (काल परिणाम भविष्य—उदित—भूत) तथा अवस्था परिणाम का सयम होने पर भूत, भविष्य का ज्ञान होता है । नाभिचक्र मे काया व्यूह का ज्ञान है । इसके सयम मे शरीर का ज्ञान होता है । सब जानने का उपाय प्रातिभ ज्ञान कहलाता है । हृदय मे सयम करने से चित्त का ज्ञान होता है । उस स्वार्थ सयम से प्रातिभ, श्रावण, वेदना, आदर्श, आस्वाद, वार्ता ज्ञान—यह छह सिद्धियाँ होती है जो समाधि मे विघ्न और व्युत्थान मे सिद्धियाँ है । आगे भूत जय से सिद्धियाँ प्राप्त होती है जो अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशितृत्व इत्यादि है । चित्त और पुरुष की समान शुद्धि होने पर कैवल्य होता है । इस पाद मे तीनो अग, उनकी सज्ञा, परिणाम, सयम की तीन प्रकार की सिद्धियाँ —पूर्वान्त, परान्त और मध्य, समाधि से भुवन ज्ञान, काया व्यूह ज्ञान, इन्द्रिय-जय बताकर चित्त के अपने कारण मे लीन हो जाने को मुक्ति कहा गया है ।

अन्तिम कैवल्य पाद का वर्णन करते है । सिद्धियाँ पाँच प्रकार की है । जन्मजात सिद्धि जो जन्म से ही निहित मिलती है, औषधिजा सिद्धि रसायनादि से प्राप्त होती है, मन्त्रजा सिद्धि, तपजासिद्धि तथा समाधिजा सिद्धि । समाधि से उत्पन्न चित्त ही कैवल्य के उपयोगी है, अन्य बाधक है । अस्मिता से योगी निर्माण चित्त होते है । अर्थात् काया बदलकर शीघ्र प्रारब्ध कर्म भोग लेते है । एक चित्त सब चित्तो का प्रवर्तक है । उसी से प्रवृत्ति भेद होता है । ध्यानज अर्थात् चित्त समाधि से उत्पन्न होने पर अनाशय, वासनारहित होता है । उसकी आत्मा कैवल्य की ओर उन्मुख होती है वह विवेक ख्याति से भी अलग हो जाता है । उसकी अवस्था को धर्ममेघ समाधि कहते है । प्रसख्यान अर्थात् प्रकृति और पुरुष का विवेक साक्षात्कार भी दूर होने लगता है । तब धर्ममेघ समाधि होती है जो विवेक ख्याति का ही फल है । सर्वोच्च फल है । पुरुष तब केवल हो जाता है । अनादिकाल का लिंग अर्थात् चिन्ह ऐसा शरीर भी विरत हो जाता है और (सूक्ष्म शरीर) लिंग

शरीर अपने उपादानो मे लीन हो जाता है, क्योकि यह सब प्रकृति के ही तो परिणाम है। चिति शक्ति का अपने स्वरूप मे अवस्थित हो जाना कैवल्य है। अर्थात् व्युत्थान समाधि और निरोध के सस्कार मन मे लीन हो जाते हैं, मन अस्मिता (अहकार) मे, अस्मिता बुद्धि (चित्त) मे और चित्त प्रधान प्रकृति मे लय हो जाती है।

पतजलि के योग सूत्र का समय दूसरी या तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व समझा जाता है। पतजलि के योग सूत्र मे तप का नाम आता है। तप शरीर को कष्टप्रद साधनाओ मे ले जाना है। ऋग्वेद मे भी विभूति पाद मे वर्णित सिद्धि फल से उडते योगियो के से मुनियो का वर्णन मिलता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् मे योग बिलकुल प्रगट ही था। ऊपर हम बौद्ध और जैनो मे इसका प्रभाव प्राचीन काल से ही देख चुके है। अब इन पर विचार प्रगट करने के पहले आवश्यक है कि शकर के वेदान्त दर्शन को भी सक्षेप मे देख लिया जाए, जिसकी अन्त मे परीक्षा करके हम आगे बढेगे। साख्य ने प्रकृति प्रधान मानी। उससे बुद्धि, बुद्धि से अहकार, अहकार से सूक्ष्म तथा स्थूल तन्मात्राएँ। आत्मा चेतन है। वह अपने प्रकाश मे अवस्थित है जिससे चेतन और जड भ्रम मे पडते है जिससे अहकार का उदय होता है। पृथ्वी, गन्ध, जल, रस, अग्नि दृष्टि, वायु, स्पर्श, आकाश, श्रवण यह तत्त्व तथा तन्मात्राएँ हुई। इन्द्रियो का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। अब ब्रह्म जब क्रिया से दूर हो गया तो शकर ही वह प्रकाण्ड मेधावी था जिसने उस सबको एक ढग से आगे रखा। साख्य का प्रभाव अवश्य था। शकर ने आत्मा के चारो ओर आवरण माने। साख्य मे जहाँ मनस्, बुद्धि और अहकार थे वहाँ वेदान्त मे मनस् विज्ञान और अहकार ने स्थान ले लिया। इसमे बौद्ध प्रभाव काफी मुखर था।

शंकर वेदान्त[1]

अज्ञान, अचेतन माया, अविद्या यह सब शब्द बौद्धो मे चलते थे। वस्तु समष्टि का एकत्व, ब्रह्माण्ड का एकत्व, जिसके अतिरिक्त द्वितीय नही, अवास्तव समस्त के समस्त गुणो से अतिरिक्त, वास्तविक सत्य और अस्तित्व की स्वभाव-स्थिति—इस भाव के वाक्याश उनमे भी अपने भिन्न शब्दान्तरो के साथ चलते

---

1 दी क्राउन आफ हिन्दुइज्म, फर्कुहार। 2 इण्डियन थीइज्म, मैकनिकल। 3. दी फिलासफी आफ योगवासिष्ट, आत्रेय। 4 वेदान्त सिद्धान्त मत मार्तण्ड, देवदत्त शर्मा। 5 वेदान्त फिलासफी, एम० एस० त्रिपाठी। 6. दि वेदान्त फिलासफी। 7 दी फिलासफी आफ दी वेदान्त, पाल ड्यूसन। 8 दि इंग्लिश वर्क्स आफ राजा राममोहन राय, वाल्यूम-1 9. वेदान्त दर्शन। 10 दी वर्ल्ड एज पावर रियलिटी, वुडराफ।

थे । अविद्या से ही चेतना भ्रांति, दर्पण की छवि मे वस्तु सत्य का मिथ्याभाव भी उनमे था । शकर मे भी यह मिलता है । वास्तव मे यह विचार बहुत दिनो मे पकते आ रहे थे । योगवासिष्ठ और त्रिपुर सम्प्रदाय की दार्शनिकता मे ऐसी मिलती-जुलती शब्दावली का प्रयोग प्रचलित था । साख्य का बौद्ध, वेदान्त और शैव तथा वैष्णव मत पर प्रभाव पडा । साख्य के सृष्टि उत्पत्ति के सिद्धान्त को हेर-फेर करके प्राय सबने स्वीकार कर लिया । चेतन तत्त्व, प्रकृति, मनस्, अहकार और भूत का प्रभाव स्वीकार कर लिया गया । इनके नाम अवश्य बदल दिये गए । शकर से पहले उत्तर मीमासा का व्यास कृत वेदान्त चला आ रहा था । शकर ने इसे साफ किया और स्फटिक की भाँति उपस्थित किया । उसने उपनिषदो से यह चमक पाई थी । उपनिषदो के दर्शन का प्रभाव साख्य और बौद्ध मत पर पडा था यह ऊपर देखा जा चुका है । अब शकर के हाथ मे यह हुआ कि उपनिषद् मे सेश्वरवाद घुसकर ऐसे निकला कि बौद्ध मत के सार चितन को वह अपने साथ खीच लाया जिसमे तत्कालीन बिखरे हुए मत आकर लय हो गए । यह दार्शनिक तत्त्वो का एक आर्यचितन आर्येतर चितन के साथ यहाँ सूर्य के समान देदीप्यमान हो उठा । जिस प्रकार बौद्ध इस ज्वाला को नही सह सके, स्वय ब्राह्मण भी इस वस्तु को देखकर चमत्कृत हो गए और उन्होने मुक्तकठ जय-जयकार किया । शकर ने शैव सिद्धान्त को ऐसे खीचकर अपना लिया कि बहुत-से भेद तो इसी से टूक-टूक होकर गिर गए । आगे हम देखेगे कि रामानुज ने कैसे शकर का सार तत्त्व लेकर वेदान्त को एक नया रूप दिया जो और भी सशक्त सिद्ध हुआ ।

नि श्रेयस अर्थात् ससार और अविद्या से छूटकर मिलना ही परम प्रयोजन है । इसके लिए आत्मन् का ज्ञान आवश्यक है । यह प्रवृत्ति लक्षण धर्म है । जिसका ज्ञान शुद्ध है वह नि श्रेयस का सान्निध्य प्राप्त करता है । इस से समस्त पुरुषार्थ प्राप्त होता है । इस परम पुरुषार्थ को प्राप्त करना सरल नही है ।

जो कुछ है वह ब्रह्मन् है । वह परमात्मन् है । चैतन्य, ज्ञान वह एकमात्र है । उसके गुण नही है । ज्ञान भी उसका स्वरूप-मात्र है । वह अतीत निर्गुण है । उसके पूर्ण और अलग होने के कारण ससार कैसे होता है ? यह काम माया या अविद्या करती है । यह न सत् है, न असत् । अत इसे सदसद्विलक्षण कहा जा सकता है । माया मे उपादान है अर्थात् ससार है । ब्रह्म अधिष्ठान रूप मे ससार से सम्बद्ध है क्योकि माया उसकी शक्ति है । इस अवस्था मे ब्रह्म को ईश्वर कहना चाहिए । माया ईश्वर की आज्ञा से भेद प्रगट करती है और नाम रूप का उदय होता है । इससे ससार और उसके अनेक दृश्य उत्पन्न होते है । माया से वस्तु के उपाधि लगती है । ब्रह्म सबमे व्याप्त रहता है । माया के कारण सब अलग-अलग दिखाई देता है । और इसी कारण अनेक

जीव दिखाई देते है। प्रत्येक जीव मे ब्रह्म ही सत्य है। जो भेद है वह माया का परिणाम है।

सासारिक रूप मे अर्थात् व्यवहार मे अनेक जीव अनेक कार्य-रत है। अज्ञानी जीव माया के आवरण को फाडकर देख सकने मे असमर्थ है। इसलिए ब्रह्म को न देख सकने के कारण जीव मायाकृत उपाधि मे मन लगाता है और सत्य को शरीर मे ढूँढता है। इन्द्रिय मनस् मे खोजता है। आत्मा जो वास्तव मे चित्, चैतन्य और असीम तथा अक्रिय है वह सीमित हो जाती है और उसकी शक्ति, ज्ञान सब सीमित हो जाते है। तब वह पाप-पुण्य से घिरता है। जिसके चक्र को उसे भोगना पडता है। पूर्वजन्म के कृत्यो का फलाफल भोगने जीव को ईश्वर उसके कर्मो का फल देता है। यह अनन्त-अनादि चक्र निरन्तर चलता रहता है। इस ससार से मुक्ति का उपाय वेदो ने बताया है। कर्मकाण्ड यद्यपि अपने स्थान पर उचित है किन्तु उससे यह काम पूरा नही हो सकता है। ज्ञान काण्ड मे भी सगुण परमात्मा की निम्न अवस्था है। निर्गुण उच्च है, सर्वोच्च है। पराविद्या जाननेवाले के लिए आत्मा और परमात्मा मे भेद नही है। परमात्मा ही विदेह मुक्ति है। वह अपने-आप माया को पीछे खीच लेता है।

शकर के वेदान्त मे धर्म और दर्शन आकर एक हो गए है। इस प्रकार जीव, जगत् और परमात्मा तीन बाते सामने आती है। परमात्मा शिव है, जीव प्राणी है। ब्रह्म सत्य है। जगत् मिथ्या है। जीव ब्रह्म ही है, और कुछ नही है। शकर ने साराश रूप करोडो ग्रन्थो को मथकर रख दिया। वेदान्त मे ब्रह्म के तीन रूप है—ब्रह्म परमात्मा, ब्रह्म और माया, जगत् तथा ब्रह्म और जीव। इस त्रिपुटी का अन्त स्वय ब्रह्म है। परमात्मा है। ब्रह्म का कोई स्वरूप नही है। वह एक है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। वह मात्र परम आत्मन् है। दृश्य-अदृश्य जगत् का वह ही कारण है। वह परिवर्तनशील नही है। वह सीमित मे असीम है। माया के द्वारा वह मूल है जो सब सृष्टि मे रहकर भी उस सबसे परे है। विवर्तवाद से वह दृश्य है। सृष्टि नई सृष्टि नही है। वह विवर्त है। ब्रह्म तो नही बदलता पर जीव उसे देख नही पाता। रज्जु और सर्प की भ्राति यही होती है। रज्जु बिना सर्प की भ्रान्ति नही होगी। इसी प्रकार ब्रह्म बिना जगत् की भी नही हो सकती। रज्जु सर्प नही हो जाती, न ब्रह्म जगत् हो जाता है। अधकार ही अविद्या है। ब्रह्म जो परे है वही जगत् का कारण है। यह विवर्तवाद का सिद्धान्त योगवासिष्ठ मे भी मिलता है। पर इतना मुखर नही। शकर मे चार्वाक का प्रत्यक्ष, बौद्धो का अनुमान, साख्य का शब्द और श्रुति, नैमायिक का उपयान, प्रभाकर मीमासा की अर्थपत्ति तथा भट्ट की अनुपलब्धि सब ही आवश्यक हैं। योगवासिष्ठ मे ब्रह्म भावना मनोलय और

प्राण-निरोध ही मुख्य है । ससार मे दुख ही दुख है। ससार मनस् का प्रत्यक्षीकृत स्वरूप है । वह बुद्धि, अहकार और चित्त का रूप धारण करता है। कर्म कल्पना, वासना, प्रकृति उसके अनेक रूप है । अविद्या सात प्रकार की है । बीज जागृत, जागृत, महाजागृत, जागृत स्वप्न, स्वप्न, स्वप्न जागृत तथा सुषुप्ति । यहाँ ब्रह्म बौद्धो के आलयविज्ञान की भाँति ब्रह्म और तथता से उत्पन्न होता है । (अश्वघोष)

शकर वेदान्त मे इसका प्रभाव है । ब्रह्म तो नेति-नेति है, इस नेति-नेति मे बौद्ध मत का प्रभाव है कि जो परम है वही वहाँ महायान का शून्य है, क्योकि स्वरूप और गुण का अत्यन्त अभाव है । तैत्तरीय उपनिषद् मे यह भाव आता है। ब्रह्म के दो रूप बताये जाते है। सगुण और निर्गुण प्रथम ही ईश्वर है। द्वितीय तो वही है जिसे नेति-नेति कहा जा सकता है । ईश्वर ही स्रष्टा, पालक और शासक है । वह सर्वशक्तिमान, अनन्त, आकाश से भी विस्तृत और शून्य से भी विराट् है । वह फलदाता है, वह वैषम्यनैर्घृण्य (विषमता और घृणा) से नही बाँधा जा सकता । प्राणी की असाम्य दशा उसके पाप-पुण्य का दोष है, ईश्वर इसमे निर्दोष है । वह सदसत् का रूप है । मूल रूप मे तो सगुण और निर्गुण ब्रह्म एक ही है, क्योकि ब्रह्म तो एक ही है । ईश्वर केवल सगुण ब्रह्म है। मनुष्य की बुद्धि, देश, काल, निमित्त से घिरी है । जब बुद्धि ससार से खिचकर ब्रह्म मे लय होती है तो वह स्वरूपानुसधान है। अद्भुत सृष्टि का अधिष्ठान ब्रह्म है, क्योकि सृष्टि की सत्ता उसके अपने कारण से नही है। कारण तो ब्रह्म ही है । वह सत् है, सत् एक है सब नही, वह ज्ञान है, श्रेयस् है, एकान्त है, अद्वैत है, अखण्ड अद्वैत है । वह सर्वव्यापी, अत्यन्त सूक्ष्म है । उस ब्रह्म का पूर्ण स्वरूप सच्चिदानन्द है । चैतन्य होने से वह चित् है, आनन्दमय होने से वह आनन्द है । वह समान भाव से सबमे व्याप्त है, वह अमृत है। वह अक्षर है । शरीर मे वह अध्यात्म है । वह एक लौह गोल के समान अग्निताप से तापित अपने-आप चमकता है, सारे ससार मे उसका प्रकाश व्याप्त होता है । अन्तर-बाहर व्याप्त, उससे जगत् भासित होता है । माया उस की विशेष शक्ति है, विस्तार करनेवाली है । दृश्यमान विश्व मे जीव छाया-माया मे फँसा है, ज्ञान मार्ग से प्रतिबिंब स्पष्ट होता है । सुविचारणा से तत्त्व ज्ञानानन्द होता है । ईश्वर को जाननेवाला ज्ञानी ईश्वर सृष्टि को समझता है और जीव सृष्टि को लाँघकर मनोराज्य मे विचरण करता है ।

जगत् के कारण और आदि को समझने का इच्छुक जीव थोडी ही दूर चलकर घबरा जाता है । माया के अनेक नाम है—प्रकृति, अविद्या, शक्ति, मा अर्थात् नही, या अर्थात् वह, वह नही । जीव निरन्तर उसे वह अर्थात् 'तत्' समझता है । परन्तु 'या' मे भटकता है । माया त्रिगुणात्मिका है—सत्त्व, रजस्,

तमस्, उसका शुद्ध सत्त्वरूप ब्रह्म है। सर्वज्ञ ईश्वर उसका स्वामी है। इन दो के सम्बन्ध से जगत् का प्रकटीकरण है। माया अनिर्वचनीया है। उसके कार्य से जानी जा सकने योग्य वह कार्यानुमेया है। जीव स्वरूप मे माया उपाधि पूर्ण है। ईश्वर सम्बन्ध मे विश्वमाया, जीव स्वरूप की उपाधि अविद्या है। विज्ञान से वह दूर हो जाती है अत वह सत् नही है। किन्तु वैसे वह सदैव रहती है। इसलिए वह असत् भी नही है। इस प्रकार ईश्वर से मिलकर सृष्टि कर्त्री होते हुए भी आवरण शक्ति और विशेष शक्ति धारण करती हुई भी ब्रह्म ही है। वह सबमे, सृष्टि मे व्याप्त है, मायी (स्वय शिव) मायी है। माया तुच्छा, निर्वचनीया और वास्तवी है, श्रुति, मुक्ति और लौकिक बोध का यही मत है। वह स्वय स्वतन्त्र नही है किन्तु वह दृश्यरूप से ही तो असग कही जा सकती है। चिदाभास से नही होते हुए को होता हुआ सा दिखा देती है। उसमें दुर्घटत्व की शक्ति है। वह तो प्रश्न रूप है। जगत् उसका इन्द्रजाल है। वह अचिन्त्य है। इस अचिन्त्य रचना शक्ति से पूर्ण माया है। वह ईश्वर जिसकी माया दासी है वह माया के सम्बन्ध मे प्रगट होता है। उसे ही महेश्वर, अन्तर्यामी, जगद्योनि समझना चाहिए। माया एक दीर्घ स्वप्न है।

अनात्म जड और आत्मन् इन दो के स्वरूप मे ज्ञान विभाजित है। ज्ञान के लिए ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान निम्न और उच्च दो प्रकार का है। प्रथम अनात्मन् है, दूसरा आत्मन्। ब्रह्म मूल ऊपर है, शाखा-प्रशाखा जगत् नीचे फैलती है।

जगत् दो प्रकार का है—जड और अचिन्त्य। माया जड है, जगत् असत् है पर अपनी व्यवहारिकी सत्ता मे वह है।

उक्त द्वन्द्व वैसा ही है जैसा गौतम को आत्मा तथा पुनर्जन्म के सम्बन्ध में हुआ था। इसी तरह से शकर के दर्शन मे ब्राह्मण कर्मकाण्ड पूरा का पूरा घुस गया।

ब्रह्म जिज्ञासा के लिए विवेक, विराग, षट्सम्पत्ति, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, गुरु और समाधि की आवश्यकता है। इसीसे आत्मज्ञान होता है। शरीर मे चिदाभासयुक्त अत करण, कूटस्थ चैतन्य और आवरण शक्ति तीनो है। अहकार से जीव अपने को कर्ता-भोक्ता समझता है। उसे चिज्जड-ग्रन्थि कहते है। अहता, ममता, परता उसमे घुस जाती है। मनुष्य तीन प्रकार के होते है—पामर, विषयी और मुमुक्षु। कर्म से मुक्ति होती है। सम्यग् दर्शन से ही जीव जगत् परमार्थ का सत्य ज्ञात होता है। जीव—चैतन्य, अधिष्ठान, लिग देह और चिच्छाया का एकत्रीकरण है। प्रत्यगात्मा अपने ही आलोक में दीप्त रहती है। आत्म के प्रकाश से प्रतिबिम्बित अन्तेन्द्रिय को साभासत.करण कहते हैं। यह सब मिलकर अह बनते है। जीव का पूर्ण रूप देह, इन्द्रिय, मन

बुद्धि का सघात है । शरीर तीन है—स्थूलोपाधि, सूक्ष्मोपाधि, कारणोपाधि । तुरीया, सुषुप्ति, अज्ञान से जीव को विपरीत ज्ञान, प्रज्ञा के प्रभाव से होता है वह परमात्मा को लिग देह ही समझने लगता है । वस्तुतन्त्र का सम्यक् ज्ञान होने पर मोक्ष हो सकता है । इसके लिए विवेक ज्ञान की आवश्यकता है । जीव को अपने को परमात्मा से अभेद समझना चाहिए । निदिध्यासन, समाधि से भेद मिटते है, दु ख-निवृत्ति होती है । तत्त्वमसि का अनुभव होता है और वेदान्ती कह उठता है सर्व खल्विद ब्रह्म । तभी शकर ने अपरोक्षानुभूति में कहा है—दृष्टि ज्ञानमयी कृत्वा पश्येत् ब्रह्ममय जगत् ।

जीव— यथा नद्य स्यन्दमानः समुद्र
अस्त गच्छन्ति नामरूपे विहाय
तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्त
परात्पर पुरुषमुपैति दिव्यम् ।

समानता और भेद

इस प्रकार हम देखते है कि उपनिषद् के ब्रह्म सम्बन्धी उद्गार, बौद्ध दर्शन तथा साख्य को शकर ने एक उत्कृष्ट दर्शन के रूप मे ढाल दिया जिसमे परमात्मा, ससार, जीव और मृत्यु के अनन्तर की बातो को इकट्ठा करके रख दिया । वेदान्त मे तत्त्वमसि तथा आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति स पडित —आदि सिद्धान्त स्वीकार किये गए । किन्तु व्यावहारिकी सत्ता के द्वार से जो शकर का व्यवहार ब्राह्मण सत्ता के हाथ मे चला गया यह सब फिर ऊँचे सत्य की बाते हो गई । शकर ने कहा था कि जो मेरे अद्वैत को जानता है वह ब्राह्मण हो या चाण्डाल मेरा गुरु है । किन्तु यह नही हो सका । शकर ने बौद्ध मत को छिन्न-भिन्न कर दिया और ऐसी हालत कर दी कि दार्शनिकता का अभिमान ही उससे छिन गया । अब उसका दूसरा स्वरूप प्रबल रह गया जो कौल मार्ग मे चला गया था । उसे यहाँ न देखकर शाक्त सम्प्रदायो के साथ देखना उचित होगा । कपिल का शिव से सब सीखना सम्भवत शैव मत का आर्यों पर आरम्भिक प्रभाव बताता है, जब आर्यो ने योग की उच्चस्तर की बातो को लेकर ही उन्नत किया था ।

शकर ने ब्राह्मण धर्म को निर्द्वन्द्व रूप से पुन प्रतिष्ठापित किया । उसने यह स्पष्ट किया कि वेद और उपनिषद् के माननेवालो मे व्यर्थ ही विवाद है और वह भी लघुतम भेदो पर । उन्हे छोडो और एकत्र हो जाओ । अपना कार्य स्वय शंकर को ज्ञात था ।

साख्य, पातंजल योगदर्शन, बौद्धदर्शन इत्यादि के अनन्तर वेदान्त दर्शन को

इस प्रकार सक्षिप्त किया जाता है।[1] साख्य मे —जगत्=प्रकृति परिणाम मे त्रयोविंशति तत्त्वात्मक। जगत्कारण=त्रिगुणात्मक प्रकृति। ईश्वर=नही। जीव=असग चेतन, विभु नाना, भोक्ता। बन्ध हेतु=अविवेक। बन्ध=अध्यात्मादि त्रिविध दुख। मोक्ष=त्रिविध दुखध्वस। मोक्ष साधन=प्रकृति-पुरुष-विवेक। अधिकार=सदिग्ध विरक्त। प्रधान काण्ड=कर्मकाण्ड। वाद=परिणामवाद। आत्मपरिमाण सख्या=विभु नाना। प्रमाण=प्रत्यक्ष अनुमान, शब्द। ख्याति=अख्याति। सत्ता=जीव जगत्, परमार्थ सत्ता। उपयोग=त्व पदार्थ शोधन।

योग मे —जगत प्रकृतिपरिणामत्रयोविशति तत्त्वात्मक। जगत् कारण=कर्मानुसार प्रकृति और तन्नियामक ईश्वर। ईश्वर क्लेश कर्म विपाक आशय असबद्ध पुरुप विशेष। जीव=असग चेतन, विभुनाना, कर्ता, भोक्ता। बन्ध हेतु=अविवेक। बन्ध=प्रकृति पुरुष सयोगजन्य अविद्यादि पचक्लेश। मोक्ष=प्रकृति पुरुप सयोगजन्य अविद्यादि पचक्लेश निवृत्ति। मोक्ष साधन=निर्विकल्प समाधिपूर्वक विवेक। अधिकार=विक्षिप्त चित्तवान। प्रधान काण्ड=उपासनाकाण्ड। वाद=परिणामवाद। आत्मपरिमाण सख्या विभुनाना प्रमाण=साख्य के तीनो। ख्याति=अख्याति। सत्ता=जीव जगत् परमार्थ सत्ता। उपयोग=चित्त की एकाग्रता।

वेदान्त मे —जगत्=नानारूप क्रियात्मक माया का परिणाम चेतन का विवर्त। जगत् कारण=अभिन्न निमित्तोपादान ईश्वर। ईश्वर=मायाविशिष्ट-चेतन। जीव=अविद्याविशिष्ट चेतन। बन्धहेतु=अविद्या। बन्ध=अविद्या-तत्कार्य। मोक्ष=अविद्यातत्कार्य निवृत्तिपूर्वक परमानन्द ब्रह्म की पूर्ति। मोक्ष-साधना=ब्रह्मात्मैक्यज्ञान। अधिकार=मलविक्षेप, दोपरहित, चतुष्टय साधन सम्पन्न। प्रधानकाण्ड=ज्ञान काण्ड। वाद=विवर्तवाद। आत्मपरिमाण सख्या-विभु एक। प्रमाण=षट्। ख्याति=अनिर्वचनीय। सत्ता=परमार्थरूपात्म सत्ता व्यावहारिक और प्रातिभासिक जगत् सत्ता। उपयोग=तत्वज्ञानपूर्वक मोक्ष।

सक्षेप मे यही भेद और समानता है। विस्तार से इस विषय मे न जाकर यह कह देना काफी होगा कि भारतीय विचारधारा का एक यह पक्ष था। जबकि दूसरा अभी पक रहा था। वह रामानुज के हाथो अपनी स्पष्ट भक्ति की रूपरेखा लेकर अभी कुछ दिन बाद प्रगट होनेवाला था। किन्तु इनके अतिरिक्त एक तीसरी विचारधारा और थी। वह शिव और शक्ति नाम से अभिहित की जा सकती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जैसे एक विचार-

1. सद्ग्रन्थ पचग्रन्थी।

धारा को शकर ने माँजा, दूसरी को रामानुज ने, उसी प्रकार तीसरी का भार गोरक्षनाथ के कन्धो पर आ पडा था। उपसहार मे हम उनकी सफलता और असफलताओ पर सक्षेप मे विचार करेगे। जैन धर्म को अलग छोडकर यही तीन धाराएँ हमारे आलोच्यकाल की मुख्य विचारधाराएँ है। इतिहास का वह युग जैन धर्म का नही, वरन इन तीन का है; क्योकि सब-कुछ जो उथल-पुथल मे नया रूप ग्रहण कर रहा था वह इन्ही तीन के हाथ । अब दार्शनिक पक्ष मे शिव और विष्णु का युद्ध समाप्तप्राय था। भक्ति के क्षेत्र मे वह तुलसी तक बना रहा। इसको यही त्यागना उचित है, क्योकि विषय हमारे आलोच्यकाल के बाहर का हो जाता है।

ऊपर हम देख चुके है कि योगवासिष्ठ मे कुण्डलिनी ज्ञान था किन्तु चक्र ज्ञान उसमे विशेष नही है। पतजलि के टीकाकारो ने अवान्तर काल मे हठयोग की आसन क्रियाओ को उसके आसनवाले सूत्र के साथ जोड दिया है। निस्सन्देह ही वे क्रियाएँ हठयोग प्रदीपिका से प्रभावित है। हठयोग प्रदीपिका गोरक्षनाथ के बाद की रचना है। तब योग के दो रूप भारत मे थे यह स्पष्ट हुआ। एक साख्य का आर्ययोग दूसरा आर्येतरो का योग जिसमे शरीर की अन्तर-बाह्य चेष्टाएँ कही अधिक थी जबकि साख्य तथा पतजलि के राजयोग की स्वीकृति मे योग को एक उच्चस्तर से देखा गया था। पतजलि मे प्राणायाम है और उसके पूरक, कुम्भक, रेचक इत्यादि भेद का सविस्तार वर्णन हुआ है। पतजलि मे तप शब्द का प्रयोग है। हठयोग मे तप से इगित शरीर को कष्ट देने की भावना नही है। यह घेरण्डसहिता और शिवसहिता मे प्रगट है। ऊपर हम देख चुके है कि कापालिक मत और कौल मार्ग मे योग और नाडी ज्ञान पद्म-चक्रज्ञान था। अब हमे उसीको सविस्तार देखना चाहिए। आर्यसामाजिकता के भीतर की दार्शनिक विचारधारा को हमने सक्षेप मे देखा। हमारे आलोच्य काल मे उसने एक अद्भुत स्पष्ट स्वरूप ग्रहण कर लिया। यह शकर के हाथो ही पूर्ण हो सका। आर्यसामाजिक व्यवस्था के बाहर शिव तत्त्व और बुद्ध तत्त्व कैसे हिल-मिलकर शाक्त मच पर एक होकर आ गए थे, इस पर विचार किया जा चुका है । अब उसकी दार्शनिकता, हठयोग, नाडी तथा चक्रज्ञान इत्यादि विषयो को देखकर गोरक्षनाथ के हठयोग और दर्शन को देखना चाहिए।

किंवदन्ती है कि शकर ने षट्चक्र योग का विरोध किया था। उनका कापालिक क्रकच से विवाद हुआ। शिव ने क्रकच को अपने मे लय कर लिया। शकर ने तान्त्रिकता का भी विरोध किया था।

योग के इस रूप को देखने पर ज्ञात होता है कि यह साधना भी अपने भीतर अनेक आर्यसामाजिक व्यवस्था मे स्वीकृत नामो को दिखाती है—जिसमे बसिष्ठ उल्लेखनीय है। हठयोग की एक परम्परा मे भी वसिष्ठ का नाम

आता है। परशुराम तथा सनत्कुमार ऐसे ही अनेक नाम मिलते हैं, जिनमे दत्तात्रेय का नाम पहले आ चुका है।

शाक्त मत और उसका समाज

वज्रयान ने शून्यता के साथ महासुख की जो कल्पना की तो शून्यता ही को वज्र माना। यह देवी रूप है—जिसके प्रगाढ आलिंगन मे मानव-चित्त (बोधि-चित्त या विज्ञान) सदा बद्ध रहता है तथा यह युगल-मिलन सब काल के लिए सुख तथा आनन्द उत्पन्न करता है। यहाँ जगत् की उत्पत्ति का कारण वैषम्य कहा गया। समता प्रलय की सूचिका मानी गई। वज्रयान मे वैराग्य का दमन करनेवाला वीर है। विशुद्ध होने पर ललना और रसना (ऊपर कापालिक मत मे यह नाम आ चुके हैं) अवधूती के रूप मे बदल जाती है। अवधूतिका के लिए डोम्बी शब्द आता है। वाम शक्ति और दक्षिण शक्ति के मिलान से जो अग्नि या तेज उत्पन्न होता है, उसकी प्रथम अभिव्यक्ति नाभिचक्र मे होती है। इस अवस्था मे वह शक्ति अच्छी तरह विशुद्ध नही होती। सहजिया भाषा मे इसका साकेतिक नाम चाण्डाली है। जब चाण्डाली विशुद्ध हो जाती है तब उसे डोम्बी या बगाली कहते है। वज्रयान की चरम अनुभूति वास्तव मे पूर्णाद्वैत की भावना ही है।

शाक्त उपासना की दार्शनिकता भी यही अद्वैत है। शाक्त मत के अपने दर्शन के साथ कुछ विशेष सामाजिक व्यवहार थे जिनको दर्शन के साथ रखकर समझ लेने से सरलता होगी। ऊपर अह् को मिटाने की उनकी तीव्र चेष्टा का उल्लेख हो चुका है। यहाँ अब कुछ नियमो का दर्शन किया जाता है।

वेद-विरुद्ध रूप मे तन्त्र मे एक यह विशेषता है कि यहाँ शरीर को कष्ट देना अस्वीकृत है। भूखे-प्यासे कालिका की उपासना नही करनी चाहिए। जब शिव और जीव एक ही हैं तो अपने-आपको नैवेद्य देने से क्या लाभ है? शिव ही तो जीव के रूप मे भूख, प्यास से व्याकुल रहता है। ब्रह्मा ब्रह्मलोक मे है। विष्णु विष्णुलोक मे, रुद्र कैलाश मे, श्रीकृष्ण गोलोक मे, किन्तु महादेवी अर्थात् शिव की शक्ति सब समय मे सब स्थानो पर है। उनके अनेक भेद है। शैव, वैष्णव, गाणपत्य, सौर तथा चीनाचार, बौद्ध सभी रूपो से उनकी पूजा की जाती है। साधक दिव्यभाव, वीरभाव तथा पशुभाव से उनकी पूजा के अधिकारी है। विभिन्न तन्त्रो मे बिखरे हुए उनके अनेक-अनेक नाम हैं।

स्त्री बनकर यदि साधक उपासना करे तो वह वामाचार मे ब्रह्मचारी भी रह सकता है।[1] श्मशानसाधना से ही सब वासना जल जाती है। श्मशान दो

1 वामाचार भवेत् तत्र वामा भूत्वा यजेत् परा।

प्रकार के है। एक चिता दूसरी योगिनीरूपा महाकाली। किन्तु जिस स्त्री को देवता मान लिया जाता है वह फिर भोग की वस्तु नही रहती।[1]

कल्प के प्रारम्भ मे चिन्मयी महादेवी जब देवरुद्र की तपस्या से प्रसन्न हो गईं तब गहन गम्भीर अम्भराशि पर बहते हुए उन्होने विराट् रूप धारण किया और उन्हे दिखाई देने लगी। महादेवी की आज्ञा से तब देवरुद्र ने सुषुम्णा मे करोडो ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और ब्रह्माण्ड देखे। देवी के हृत-कमल मे अभूत विस्मय करते हुए रुद्र ने वहाँ शब्दब्रह्म की मूर्ति आगम, निगम, और अन्य शास्त्रो को धारण करते हुए देखी। उन्होने देखा कि आगम उसमे परमात्मा थे। चारो वेद अंगो सहित जीवात्मा थे। षट्दर्शन तन्मात्राएँ, महा-पुराण और उपपुराण स्थूल शरीर, स्मृति हाथ तथा अन्य अग थे और अनेक शास्त्र उनके केश थे। 50 मातृकाएँ उनके हृत्कमल के किनारो पर, दलो पर, तेजस् पूर्ण थी। उस विराट् रूपिणी के उस कमल के भीतर आगम सहस्रो सूर्य, चन्द्रमाओ के समान देदीप्यमान, धर्म और ब्रह्मज्ञान से पूर्ण थे जिनमे माया को नष्ट कर देने की शक्ति थी। वे सर्व सिद्धियो से भरे हुए थे और ब्रह्मनिर्वाण की ा मर्थ्य धारण करते थे। महादेवी की अनुकम्पा से देव रुद्र ने सब वेद, वेदान्त, पुराण, स्मृति और अन्य शास्त्र पूर्णरूप से जान लिये। बाद मे ब्रह्मा और विष्णु ने यह विद्या शिव से ग्रहण की।

देवीगीता मे लिखा है कि ब्रह्मा, विष्णु, ईश्वर, सदा शिव आदि देवी के चरणो पर बैठे महाप्रेत है। पचभूत से निर्मारिणत वे पचतत्त्व के ही प्रतीक है। देवी स्वय ओम है, चित् है और उन सबसे परे है। उनकी उपासना मे जो रत है वह सब विघ्नो से मुक्त है। वह उन्मुक्त कुन्तला, कपालधारिणी है।

उस देवा के अनेक रूप है। वह अनेक देवताओ के सम्बन्ध मे अनेक रूप धारण करती है। देवी का आदि और अन्त नही है। अनेक सप्रदायो मे उसके ही भिन्न-भिन्न रूपो की उपासना प्रचलित है।

गणेशार्क हरीशाना दुर्गारूपा सरस्वती
महाश्यामा महाविद्या पूजनीया यथा क्रमम्।
न कुर्याद् भेदमेतेषा कौलिको वैष्णवस्तथा
गणेशार्क हरीशान् दुर्गाणा परमार्थवित।
पूजयेदैक्यभावेन देवीभक्तश्च बुद्धिमान्
देवीचक्रेऽर्चयेत सर्वान् शिवलिगेऽथवा शिवे,
शालग्राम शिलायाम वा सूर्यपीठेऽथवा शिवे।

1. योगिनीतन्त्र, 9वा पटल।

श्रीगणेश्वर चक्रे वा न भेद कारयेत् सुधी
भेद वै कुरुते यस्तु स शैव शिवहा भवेत् ।[1]

देवी-भक्त भेद बुद्धि से काम नही लेते । वह तो ऐक्यभाव के माननेवाले हैं । भेद तो किसी भी सम्प्रदाय से नही करना चाहिए यदि उनमे भी देवी के प्रति भक्तिभावना है । देवी की इस ऐक्य सविधायनी शक्ति की भावना मे वह पृष्ठभूमि मिल जाती है जिसके कारण सब स्त्रियो को एक-सा माना गया है ।

स्त्री को लता के समान माना गया है । वह पाँचवाँ तत्त्व है । शवासन करते समय साधक चाण्डाल या गीदड के शव पर बैठकर मन्त्रपाठ करता है । योग मार्ग मे वह गुरु-उपदेश के अनुसार शव पर सीधा लेट जाता है । चितारोह या चितासाधन मे वह अपवित्र बुझी चिता पर बैठकर मन्त्रपाठ करता है । साधक की अग्नि हविष्य तथा फल आदि सबमे ही तो ब्रह्म है, जो यह ध्यान करके क्रिया मे रत होता है, वह ब्रह्म को प्राप्त करता है । उक्त विचार ब्रह्म को सब-कुछ अर्पण कर देने वाले सिद्धात से बहुत मिलता-जुलता-सा है । ऊपरी स्नान आवश्यक नही । अत करण शुद्ध होना चाहिए । परब्रह्म को जो अर्पित है वह पवित्र है । गङ्गा का जल और शालिग्राम चाण्डाल के स्पर्श से अपवित्र हो सकते हैं किन्तु

परब्रह्मार्पिते द्रव्ये स्पृष्टास्पृष्टाच विद्यते ।

उस भोजन को खाने मे जाति-पाँति को मानने की कोई भी आवश्यकता नही है । एक-दूसरे की थाली का उच्छिष्ठ खाने मे भी नही हिचकिचाना चाहिए । वह तो चाण्डाल के हाथ से भी खाया जा सकता है । कुत्ते के मुँह से भी उसे निकालकर खा लेने मे हानि नही है । वेदान्त के ज्ञानी ब्राह्मणो को भी ब्रह्मार्पित भोजन चाण्डाल के हाथ से खा लेना चाहिए । सौ ब्राह्मणो की हत्या मे उतना पाप नही जितना उसे खाने से अस्वीकार करने मे है । इस साधना मे लगे मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह सत्यवादी हो, दयावान हो और सदैव ब्रह्मचिन्तन मे तत्पर हो । कौलसाधना मे शाक्त, शैव, सौर, गाणपत्य, वेदपाठी ब्राह्मण सब लिये जा सकते है । कलियुग मे पशुभाव नही है । दिव्यभाव प्राप्त करना कठिन है । वीर साधना फलवती हो सकती है । सृष्टि के पहले शक्ति मे तमस् रूप से सब निहित रहता है । देवी सर्वरूपिणी, सर्वस्वरूपा, मूल प्रकृति के रूप मे जननी, विश्वविराट्, तेजस्, हिरण्यगर्भ, अव्याकृत प्रज्ञा और अव्यक्त है । सृष्टि उसका तम=रज=सत=रस, पूर्ण चिदानन्द प्रकाश है । वह महाकाल को निगल जाती है । वह आद्याकालिका

---

1. रुद्रयामल ।

है। मूलप्रकृति और तुरीयब्रह्मन का मिलन वह आद्याकाली है।[1] पूर्वजन्मो के कार्यो के फलस्वरूप आत्मा कौलमत की ओर आकर्षित होती है। इस कौल धर्म मे ही कलियुग मे सत्य, त्रेता और द्वापर की भाँति खुलेआम मदिरा पी जा सकती है। जो साधु श्मशानसाधना, शवसाधना और लतासाधना करते है, वे कुल साधु कहलाते है। वे किसी भी रूप मे रह सकते है—

अन्त शाक्त बहि शैवा सभामध्येच वैष्णवा
नानारूपधरा कौला विचरन्ति महीतले।

कौल साधक के इस प्रकार अनेक रूप है।

कुलस्त्रिय कुलगुरु कुलदेवी महीश्वरिं
नित्ययत्पूजयेद्विश्व सकुलाचार उच्यते।[2]

कुलदेवी की पूजा नितान्त आवश्यक है। इस कौल साधना के भिन्न रूपों मे भी छोटे-बडो का स्थान है—

कौलिकोऽङ्गुष्ठता प्राप्तो वाम स्यात् तर्जनी सम
चीनक्रमो मध्यम स्यात् सिद्धान्तीयो वरोभवेत्
कनिष्ठ शाबरो मार्ग इति वामस्तु पचधा।[3]

वाममार्ग के यही मुख्य पाँच स्वरूप है। इनमे शैव भी है। यह सात पाशुपत तो निकट है—

शिखीमुडी, जटीचैव द्वित्रिदडी क्रमेणच
पकदडी महेशानि वीर शैवस्तथैवच
सप्त पाशुपता प्रोक्ता दशधा वैष्णावस्तथा।

इन सबमे प्राय. शक्ति ही प्रधान तत्त्व है। उस तत्त्व के साथ अपने-अपने परिमाण मे योग भी सन्निहित है। इस योग मे शरीर के भीतर सूक्ष्म-लिंग माने गए है।

तभी मेरुतन्त्र मे कहा है—

सयोगो देहलिंगस्य नाशक कालयोगकृत।

कौलमार्ग ससार मे वासना फैलाने का पथ नही है। उसका उपदेश स्वयं शिव ने दिया है।

ससार के हितार्थ ही शिव ने पार्वती को कौल शिक्षा दी है। शिव ने सतयुग, त्रेतायुग तथा द्वापर मे श्रुति से ससार को मुक्तिपथ बताया था।

---

1. महानिर्वाण तन्त्र।

2 रुद्रयामल। नित्य कुलस्त्री, कुलगुरु और कुलदेवी की पूजा करनी ही कुलाचार कहलाता है।

3 मेरुतन्त्र, कौल अगूठा, वाम तर्जनी, चीनक्रम बीच की, अगुली, सिद्धान्तीय अनामिका तथा शाबर मार्ग कनिष्ठा के समान है।

कलियुग के लिए कौल ही सर्वोच्च मार्ग है। वह तन्त्र मे प्रकट हुआ है। आगम मे शिव पार्वती को शिक्षा देते है। निगम मे इसके विपरीत होता है।

मन्त्र का लिंग उसके देवता के बदलने के साथ बदल जाता है। शारदा तिलक के अनुसार हुँ, फट पुरुष देवता का चिह्न है स्वाहा स्त्रीलिंग है। पुल्लिग का अन्त नमः से होता है।

महानिर्वाणतन्त्र मे शिव ने पार्वती से कहा है। हे आद्या! शक्ति पूजा की पॉच आवश्यकताएँ यह है। मद्य, मास, मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुन। यह ही पच तत्त्व है। इनके बिना शक्ति पूजा केवल अभिचार है। वज्रयान मे भी इन पॉच तत्त्वो का उल्लेख है। वहाँ यह नितान्त आवश्यक है। बोधिसत्व तो इनके बिना बिलकुल अपूर्ण है। चक्रपूजा मे इन सबकी आवश्यकता है।

प्रवृत्ति के पॉच रूप वास्तव मे निवृत्ति के ही सरलतम साधन है। इनसे साधक को घृणा नही करनी चाहिए। मद्य तो विशेष प्रिय वस्तु है।

महानिर्वाणतन्त्र मे देवी के प्रश्न करने पर सदाशिव कहते है। सत्य और त्रेता तथा द्वापर मे चार वर्ण थे और चार ही आश्रम थे। कलि मे पॉच वर्ण है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और सामान्य (निम्नजाति)। हे देवी अब केवल दो आश्रम है। ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ तो समाप्त हो गए। गार्हस्थ्य और सन्यास शेष है। सन्यास भी अनैतिक और आध्यात्मिक रूप से निर्बल है। वे वैसे नही रहते जैसे पहले रहते थे। जाति, वर्ण, आश्रम से ऊपर तो केवल अवधूत रहता है। जो ब्रह्म मे ध्यान लगाता है उसके लिए आवश्यक है कि वह अच्छा आदमी हो। गृहस्थ को अपनी पत्नी को कभी दण्ड नही देना चाहिए। उसे उसका ऐसे सम्मान करना चाहिए जैसे अपनी माता का। बुद्धिमान व्यक्ति को अपनी स्त्री को अकेला ही मेलो मे नही भेज देना चाहिए। मनुष्य की देह धन, इच्छा और मुक्ति का घर है। उसका कभी क्रय-विक्रय नही होना चाहिए। यदि वह बेचा गया है तो मेरी आज्ञा से वह क्रयविक्रय अस्वीकृत है। भैरवी चक्र या तत्व चक्र के अतिरिक्त मनुष्यो को अपनी-अपनी जाति मे विवाह करना चाहिए। तन्त्रातर के अनुसार ब्राह्मण सब जातियो की स्त्री से विवाह कर सकता है। क्षत्रिय वैश्य और शूद्र से। वैश्य ब्राह्मण और क्षत्रिय के अतिरिक्त तथा शूद्र पहले तीन के अतिरिक्त सबसे कर सकता है, सामान्य मात्र सामान्य से। विधवा भी पुर्नविवाह कर सकती है। केवल एक बन्ध है कि स्त्री एक पति के रहते दूसरे से विवाह नही कर सकती। वीरसाधक के हाथ मे कैसा भी, कच्चा-पक्का, चाण्डाल, म्लेच्छ, किरात या हूण द्वारा छुआ भोजन पहुँचकर पवित्र हो जाता है। चक्र मे जातिदर्प नरक मे डालनेवाला होता है। चक्र मे जो छ मास उपासना करता है वह राजा हो जाता है। सालभर से मृत्युजय, नित्य करने से तो उसे निर्वाण मिल जाता है। शक्ति

अग्नि का अस्त्र है जैसे वरुण का पाश है । हे परमेश्वरी, शैव पत्नी और उसके पुत्र को पति की मृत्यु के बाद उसकी सम्पति प्राप्त करने वाले से सम्पत्ति के अनुरूप धन पाने का अधिकार है । परवर्त्ती विचार होकर भी महत्त्वपूर्ण है। पुत्र को अपने माता-पिता, प्रजा को अपना राजा, पत्नी को पति तब तक नही छोडना चाहिए जब तक वे घोर अपराधी न हो। जो दूसरे की सम्पत्ति प्राप्त करे उसे धनवाले का धर्म स्वीकार कर लेना चाहिए । ससार मे दो तरह के कर्म हैं। अच्छे और बुरे, बुरे का फल सदैव अत्यन्त कष्टदायक होता है। हे देवी, मनुष्य सोने और लोहे की शृङ्खला मे फँसा है । ज्ञान के बिना कही मुक्ति नही है । क्षीणतमस् ज्ञान से आत्मा के निर्मल होने पर निष्काम कर्म से प्राप्त ही ब्रह्म है जिसके लिए निरन्तर तत्त्व विचार की आवश्यकता है ।

मुक्ति जप, होम या सौ व्रतो से नही मिलती। वह तो ब्रह्मज्ञान से मिलती है। जो अज्ञान से मिट्टी और पत्थर, लकडी और धातु की मूर्तियो को ईश्वर समझकर उपासना मे रत है वे तो कभी मुक्त नही हो सकते । यदि वायुभक्षण, पल्लव दाना और जल भक्षण से मुक्ति मिलती तो साँप, गाय, भैस, पक्षी और जलचर कभी के मुक्त हो गए होते। ब्रह्म सद्भाव सबसे उच्च अवस्था है। ध्यान भाव मध्यम है । स्तुति और जप अन्तिम है । जो बाह्य उपासना करते है वे तो निकृष्टतम है । योग जीव और आत्मन् की एकता है, पूजा पूजक और पूज्य की । किन्तु जो जानता है कि सब ब्रह्म है उसके लिए न जप, न योग, न पूजा कुछ भी आवश्यक नही है । जो ब्रह्म ज्ञाता है उसके लिए तो पाप और सुकृत कुछ भी नही । वह प्रगट रूप से सृष्टि मे रहकर भी नही रहता । एक आत्मा होने के कारण मनुष्य मनुष्य से प्रेम करता है । (जो ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा अन्य जातियाँ ब्रह्म मत्र की उपासक है वे भले ही गृहस्थ हो, यती हो । पूर्णाभिषेक सस्कारो से दीक्षित व्यक्तियो को शैवावधूत समझना चाहिए।) जो कौल चाडाल अथवा यवन को कुल धर्म मे उन्हे नीच समझकर दीक्षा नही देता वह स्वय नीच है। जो स्त्री का अपमान करता है वह पतित है । जैसे हाथी के पग चिन्हो मे सब पशुओ के पग चिन्ह खो जाते है वैसे ही कुल धर्म मे सब धर्म लय हो जाते है ।

कौल धर्म से परे कोई और धर्म नही है । इसको मानने से साधक स्वाधीन इन्द्रिय सचार करता है। वह षड्वर्गविजय की क्षमता रखता हुआ निर्द्वन्द्व नित्य शक्तिमान होता है ।

इस प्रकार यह प्रगट होता है कि कौल मार्ग के कुछ अपने विशेष नियम थे । जो उन्होने अपने विशेष वर्ग के लिए स्वीकृत कर लिये थे। ये नियम परवर्त्ती काल मे कुछ वैदिक होने का प्रयत्न करते हुए दिखाई देते है । किन्तु अपने प्रारम्भिक स्वरूप मे वे नि.सन्देह तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था मे एक

उथल-पुथल मचा देने की शक्ति रखनेवाले सिद्धान्त थे जिनसे ब्राह्मण वर्ग पर केवल प्रहार ही हुआ करते थे, चाहे वह शैव मत का प्रभाव हो चाहे बौद्ध का।

सिद्धि तत्त्व की एक बडी प्रधानता मानी जाती थी। यक्षिणी आदि उपविद्याओ का भी प्रचार था।

किन्तु कौल साधना मे योगि-साधना की ही भाँति गुरु को बहुत आवश्यक बताया गया है। वह पथ-प्रदर्शक है। गुरु का स्थान अत्यन्त उच्च माना गया है। उसके बिना साधक ठीक पथ पर नही चल सकता।

रुद्रयामल मे—

गुरूरेव परोमन्त्रो गुरूरेव परो जप
गुरूरेव परा विद्या नास्ति किंचित् गुरू बिना।
यस्य तुष्टा गुरूदेव तस्य तुष्टा महेश्वरी
येन सन्तोषितो देवि गुरू स हि सदाशिव ॥[1]

किन्तु साथ ही ब्रह्म वैवर्त मे—

ये गुरूद्रोहिणो मूढा सततं पाप कारिण
तेषा तु यावत् सुकृत दुष्कृत स्यान्नसशय ।[2]

मेरुतत्र मे—

घृणा शका भय लज्जा जुगुप्सा चेति पचमी
कुल शील तथा शक्तिरष्टा पाशा प्रकीर्तिता।
पाशबद्ध पशु प्रोक्त पाशमुक्त सदाशिव
तस्माद्पाशहरोयोऽत्र सगुरूर्नान्यिउच्यते ॥[3]

कौलरत्नावली मे—

न गुरो सदृश वस्तु न देव शकरोपम
न च कौलात्परो योगो न विद्या कालिका समा।[4]

---

1 गुरु ही परममन्त्र तथा परम जप है। गुरु ही परा विद्या है। उसके बिना कुछ नही। जिससे गुरु प्रसन्न है उससे महेश्वरी भी प्रसन्न है। जिससे गुरु सन्तुष्ट है उससे सदाशिव सन्तुष्ट है।

2 जो गुरुद्रोही है वे सतत पाप करते है। नि सशय उनके सुकृत भी बुरे कर्म है।

3 घृणा, शका, भय, लज्जा, जुगुप्सा, कुल, शील, शक्ति 8 पाश है। पाशबद्ध पशु है, पाशमुक्त सदाशिव। गुरु ही पाशहर है।

4 गुरु सदृश कोई वस्तु नही। न देवता शकर समान ही। कौल से परे योग नहीं। विद्या कालिका समान नही।

आगमसार मे—

गकार सिद्धिद प्रोक्तो रेफ पापस्य दाहक
उकार शिव इत्युक्तास्त्रितयात्मा गुरू पर. ।[1]

कुलार्णव के अनुसार इस गुरु को—

अन्तर्मुखो बहिर्दृष्टि सर्वज्ञो देशकालविद् ।[2]

होना भी आवश्यक है। जिसके न होने पर गुरु को त्याग देने मे साधक का अपराध नही है। वाम मार्ग मे भिन्न मडलो की भिन्न बलि है। इसमे अप-देवताओ की भीड है। इससे इगित होता है कि इसमे कैसे समाज के देवता आ घुसे थे।

पुरश्चर्यार्णव मे—

ब्रह्मस्थाने तु वेतालो मेषस्तस्य बलि पुर ।
विष्णु स्थाने भैरवी स्यादजस्तस्य बलिर्मत ॥
भैरवस्तु शिवस्थाने महिष बलिमिच्छति ।
गौडी माध्वीच पैष्ठीच सुरास्तन्त्र क्रमान्यता ॥
मत्स्यमास मद्ययुक्त भूतेभ्यो बलिरिष्यते ।
पितृभ्य सासवफल यक्षेभ्य कुक्कुटो मधु ।
भेकोन्दुरु बलिर्नागे वाममार्गे बलिस्त्वयम् ॥[3]

यक्ष और कुक्कुट साथ-साथ आते है। वेताल का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

काली के लिए पुष्प अर्पित करने की आवश्यकता है। वहाँ—

वज्र पुष्पेरार्पितेन यथा तुष्यति कालिका ।
नस्वर्णैनच रत्नैश्च न स्पर्शमणिभिस्तथा ।
अभावे वज्र पुष्पस्य जवा पुष्पेण पूजयेत् ।
अर्क पुष्पेण वा पूज्या कालिका सर्वमगला ।[4]

---

1. गकार सिद्धिदायक है। रेफ पाप का दाहक है। उकार शिव है। तीनों की आत्मा ही परमगुरु है।

2 अन्तर्मुख, बहिर्दृष्टि, सर्वज्ञ, देशकाल का ज्ञाता।

3 ब्रह्म स्थान में वेताल की बलि मेष है। विष्णु स्थान में—भैरवी अज। शिवस्थान में भैरव—महिष। इनके लिए क्रमानुसार गौडी, माध्वी, पैष्ठी सुराएँ है। भूतों को मत्स्यमास मद्य युक्त बलि, पितृ को स-आसव। यक्षों को मुर्गा और शहद। मेढक और चूहा नाग को। यह वाम मार्ग की बलि है।

4 वज्र पुष्प अर्पण से कालिका जैसी प्रसन्न होती है वैसी स्वर्णरत्न तथा स्पर्शमणि से भी नही। वज्र पुष्प के अभाव में जवा पुष्प से पूजन करे। अथवा सर्वमगला कापालिका का अर्क पुष्प से पूजन करे।

और—

वज्रपुष्पेण सर्वत्र पूजयेच्चीनसुन्दरीम् ।[1]

चीन सुन्दरी की सर्वत्र वज्रपुष्प से उपासना होनी चाहिए।

कौल मार्ग मे स्त्री को अनेक सुविधाएँ है ।

यामल मे—

नियम पुरुषै ज्ञेयो न योषित्सु कदाचन् ।[2]

वीर तन्त्र मे—

नन्यासो योषिताचात्र न ध्यान नच पूजन ।
केवल जप मात्रेण मत्रा सिद्धचन्ति योषिताम् ।।[3]

नियम और सिद्धि की कठिनाइयाँ तो केवल पुरुषो के लिए है ।

मेरौ—

स्त्रिय शतापराधावा पुष्पाणि न ताडयेत् ।
दोषान् न गणयेत् स्त्रीणा गुणानेव प्रकाशयेत् ।[4]

तथा

कन्या कुमारिका नग्ना उन्मत्ता अपि योषित ।
न निंदेत जुगुप्सेत् न हसेन्नावमानयेत् ।
एक वृक्ष श्मशानाच समूह योषितामपि ।
नारीच रक्त वसनाम् दृष्टा वन्देत भक्तित ।[5]

—स्त्रियो का कैसा भी अपराध हो तो उन्हे फूल से भी नही मारना चाहिए। उनका अपमान नही करना चाहिए । स्त्री के प्रति इस अतीव सम्मान मे यदि एक और शक्ति के दैवी स्वरूप के प्रति श्रद्धाभाव है तो दूसरी ओर स्त्री के शरीर से घोरतम अनुरक्ति है । शाक्त सम्प्रदायो की विचारधारा मे एक विशेष प्रकार का द्वन्द्वभाव न्यस्त रहा है । गोरक्ष मे ऊपर देखा जा चुका है

1 सर्वत्र वज्र पुष्प से चीन सुन्दरी की अर्चना करे ।

2 नियम पुरुष को जानने चाहिए, स्त्रियों के लिए वह आवश्यक नही ।

3 स्त्रियों के लिए न न्यास, न ध्यान, न पूजा, केवल मन्त्र के जपमात्र से उन्हें सिद्धि मिल जाती है ।

4 स्त्रियों को सैकड़ों अपराध पर भी पुष्प से भी नही मारना चाहिए । उनके दोष न गिनकर केवल गुणों को प्रकाशित करे ।

5 कन्या, कुमारी, नग्न और उन्मत्त हुई स्त्री को देखकर भी, न उसकी निन्दा करे न जुगुप्सा, न हँसे और न अपमानित करे ।

एक वृक्ष या श्मशान या समूह में स्त्रियों को देखकर, चाहे वह रक्त वसना ही क्यों न हों भक्ति से उनकी वदना करे ।

उसके प्रति कितना कर्कश विद्रोह था। कौल साधक के लिए प्राणायाम एक आवश्यकता है क्योकि शरीर की वायु को वश मे करना साधक की सिद्धि मे सहायक है। अनेको तन्त्रो मे श्वास-प्रश्वास के भेद दिये गए है। यह प्राणायाम साधना की योग पद्धति का एक अग है जिससे साधक अपने को जितेन्द्रिय करने का प्रयत्न करता है। यह जितेन्द्रिय गोरखनाथ की भाँति नही है। कौल साधक का चरम लक्ष यौन सम्बन्धो के मार्ग से ही प्राप्त होता है। प्राणायाम के साथ बीज तथा पदमो का भी सविस्तार वर्णन किया गया है। वायु से शरीर को अमृत से आप्लावित करके साधक को पच भूतो का लय करना चाहिए। किन्तु चरमावस्था मे देवी रूप के चिन्तन का ही उल्लेख है।[1]

इसमे वर्ण और मातृका, उनके रग, उच्चारण और विशेषताओ का भी अपना हाथ रहता है।[2]

भूत शुद्धि के लिए आवश्यक है कि साधक उस परा विद्या को समझे जिससे आकाश, वायु, अग्नि, जल इत्यादि से कलेवर उत्पन्न होता है।[3] यह

---

1 वामनासा पुटेनाथ पूरयित्वा समीरणम्।
सविदुवायु बीजच धूम्रवर्ण विभाव्यच ।।
तदेव बीज देवेश पचाशब्दारमीरयेत।
तदुत्पन्नेन वातेन शुष्क देह विचिन्त्यच ।।
सहेवरेचैब्दायु ततो नासापुटेनच।
वामेन वायुमुत्तोल्य सहस्रदल मध्यग ।।
विभाव्य परमात्मान चन्द्ररूप वरानने।
सानुस्वार वायुवीज पञ्चाशब्दानमुच्चरन ।।
तस्मात् चन्द्रात् सुधावृष्ट्या देहमाप्लाव्य सुन्दरि।
भूवीजैन सनादेन शुद्ध सयोज्य विग्रहम ।।
लौनीकृतानियानहि पचभूतानि वैपुरा।
यथास्थान स्थापयित्वा ब्रह्म बीज पुनर्गृणन।
अहकारादिभिस्तत्वै सहैव परमात्मनि।
जीवात्मान समाकृष्य स्थापयित्वा हृद्वुजे ।।
देवीरूपमथात्मान चिन्तयेत्तुराभूर्जित। (महाकाल सहिता)

2. नाभि देशेच य कार वृम्र वायु विचिन्तयेत्।।
तेनैव शोधयोल्लिग तनु षोडशमात्रया।
कर्मात्मक चतु षष्ट्या कुम्भयित्वा समाचरेत्।।
द्वात्रिशन्मात्रया दक्षे रेचैन तेन वा पुन (यामल)

3 पुनरुत्पातयेद्देह पवित्र परमात्मना।
परब्रह्मात्मिका विद्या प्रकृतिर्मातृका परा ।।

जगन्माता की शक्ति का ही प्रसाद है। भूत एक-दूसरे मे विलीन होते हैं। देह पवित्र परमात्मा है, तभी देह का नाश तथा उसको कष्ट नही देना चाहिए।

कौल साधक की यह मनोवृत्ति नितान्त भौतिक है, तथापि उसका आधार पृथ्वी पर कही नही होकर भी आकाश मे ही स्थित है।

शक्ति को जगाने के लिए शरीर के भीतर की शक्ति कुण्डलिनी को जागृत करना अत्यन्त आवश्यक है। परमात्मा मे उसको मिलाकर पचभूतो का वही ऐक्य करना चाहिए और ध्यानयोग से मन से उसे सोऽह, सोऽह का अर्थात् 'वह मै हूँ, वह मै हू' का चिन्तन करना चाहिए।[1] कुण्डलिनी मूलाधार से चलती है। वह अमृत औघा है। वह सुषुम्णा के पथ से ऊर्ध्वगामिनी होती है। वह सूक्ष्मा और तेजस्वरूपिणी है।[2]

अजायत जगन्मातुराकाश नभसोनिल
समारणादभूद्वह्निवह्नेरापस्ततो मही ।।
स्वीयमेभ्योऽपिभूतेभ्यस्तेजोरूप कलेवरम्
देवताराधने योग्यमुत्पन्नामिनि भावयेत्
भूतशुद्धिरिय प्रोक्ता महापापौघनाशिनी ।। —सिद्धान्त सग्रह

1 अथवाकुण्डलीदेवी पचभूतादिनासह
परमात्मानिसयोज्य तयोरैक्य विभाव्यच ।।
ध्यानयोगेनमनसा सोऽह सोऽह विभावयेत्। —उड्डीश तन्त्र

2. अथान्तर्मातृकान्यास वक्ष्येत्त शुद्धिकारकम् ।
यत्कृत्वा योगिनाचित पातके न प्रवर्तते ।।
मूलाधारध्वनिश्रुत्वा प्रबुद्धाशक्तिकुण्डली ।
ज्वलत्पावकसकाशा सूक्ष्मातेज स्वरूपिणी ।।
मूलाधाराच्छिर पद्मम् स्पृशन्ति विद्युदाकृतिः
त्वया स्पृष्टाशिर पद्मादमृतौघस्वरूपिण ।।
निर्गतान्मातृकावर्णान् सुपुम्णावर्त्मना तनुम् ।
स्थापयित्वा स्थितानेतानेव ध्यात्वा प्रविन्यसेत ।।
कठे विशुद्धि चक्राख्य पद्मषोडशपत्रक ।
ऊर्ध्वास्य प्राग्दलात्तत्र सस्थिता षोडशस्वरा ।।
एव सचित्य तारादि विन्दुयुक्त नमोऽन्तकम् ।
वदेत् स्वरच सर्वेषु वर्णेष्वप्येषु पद्धति ।।
हृदयेनाहतचक्र ध्यायेद्द्वादशपत्रक ।
पूर्वपत्रान्तर्दलेषु प्राग्वत् कादीन् प्रविन्यसेत ।।
मणिपुर ततश्चेकं चिन्तयेन्नाभिमण्डले ।

इस उपासना मे चक्रो के साथ वर्णों को भी काफी महत्त्व दिया गया है। शाक्त सम्प्रदाय मे कुण्डलिनी का महत्त्व होते हुए भी उसको कोई बहुत बडी शक्ति के रूप मे स्वीकार नही किया गया है, क्योकि शक्ति तो पास बैठी स्त्री है जो शरीर से बाहर है।

किन्तु कौलसाधक के लिए आवश्यक है कि उसमे माया न हो, अहकार न हो। वह अपने ऐसे गुणो[1] से देवता की उपासना करता है जिन्हे वह उसके चरणो पर पुष्प की भाँति अर्पित करना है।

मूलाधार को चतुष्कोण अग्निकुण्ड-सा चिंतन करते हुए[2] वह वही कुण्डली

दशपत्र तत्र डादिवर्णान् प्राग्वद्विचिन्तयेत् ॥
स्वाधिष्ठान लिगमूले चक्र षड्दलमुच्यते ।
चिन्तयेद्बादिलास्तत्र षडवर्णानपि पूर्ववत् ॥
मूलाधारामिदचक्र पद्माकृतिचतुर्दल ।
व श ष स तत्र चिन्त्य पूर्वांशादिदलेषुच ॥
आज्ञाख्यचक्र भ्रूमध्ये द्विदल कमलाकृति ।
ह क्ष वयायेदय कार्यो मनस। केवलैनंतु ॥
स्वदेहऽनामया कार्यं पुष्पेण सुरमूर्तिषु ।
अनादित्वान्न् ऋष्यादि ब्रह्मवध्यानमस्यतु ॥ —मेरुतन्त्र

1. अनायामनहकार स्रागमपद तथा,
अमोहमदढभच अद्वेषाक्षोभकौ तथा ।
अमात्सर्यमलोभच दश पुष्पविदुर्बुधा
अहिसा परम पुष्प पुष्यमिन्द्रियनिग्रह ॥
दयापुष्प धर्मपुष्प ज्ञानपुष्प च पचमम्
इत्युक्तैरुत्तमै पुष्पै पूजयेत् परदेवताम् ॥ —श्यामा रहस्य

2. मूलाधारे चतुष्कोणम् अग्निकुडम विचिन्तयेत ।
तत्राग्नि कुडली रूप ध्यायेन्मूल समुच्चरत ॥
धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौमनसासुचा ।
सुषुम्णावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम ॥
पुराय जुहोमि स्वाहेति श्लोकान्तेप्रोच्चरेत्पुन ।
पुनर्मूल पुन श्लोकं पुन पापं जुहोमिच ॥
कृत्याकृत्येच सकल्पो विकल्पो धर्मएवच ।
हुत्वा प्रथक्च स्वाहान्त पुन· श्लोकमिमपठेत् ॥
प्रकाशामर्षहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीस्रुवम ।
धर्माधर्मकलास्नेह पूर्णवह्नौ जुहोम्यहम् ॥
स्वाहान्तेनाहुतिदत्वा प्राणायामनिरोधतः ।
निरस्तनिखिलोपाधिमात्मान चिन्मय स्मरेत् ॥ —मेरुतन्त्र

रूप मे अग्नि को मानता है, और इस प्रकार ध्यान करते हुए अधर्म तथा धर्म की हवि से दीप्त, सुषुम्णा के पथ से वह उसे ऊपर उठाता है, और अन्त मे वह प्राणायाम करता है।

इस साधना मे वह सब-कुछ स्वाहा के रूप मे उस अग्नि को अर्पित कर देता है।[1] शिवात्मकशक्ति वह ग्रन्थि रूपी कुण्डलिनी ही है।[2]

इसके साथ ही घट स्थापन आदि के विश्वास भी चलते है। यह नही समझना चाहिए कि यह दार्शनिकता केवल अन्तस्थ है। इसकी साधना के बाह्य रूप मे सब प्रकार की पूजा प्रचलित है।[3] जिसमे सभी सम्प्रदायो के लोगो का सहयोग है। शिवशक्ति का पूजन करके उत्तम सोने या चाँदी के घट की स्थापना करनी चाहिए। किन्तु साथ ही भाव तो मानस धर्म है वह शब्दो से कैसे व्यक्त किया जा सकता है।[4] गूँगे का गुण तो गूँगा ही जान सकता है।

रूप तो देवी का है। वह नाना नामधरा त्रिपुरसुन्दरी ही उस भाव की स्वामिनी बनी रहे यही उसकी कामना है।[5]

नाभिचैतन्यरूपादौ हविषा मनसा स्रुचा।
ज्ञान प्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम्॥ —श्यामा रहस्य

1 अन्तर्निरतर निधिन्धन मेधमाने।
मोहान्धकार परिपन्थिनि सविदग्नौ॥
कस्मिश्चिदद्भुत मरीचिविकाश भूमौ।
विश्व जुहोमि वसुधादि शिवावसानम्॥

2 मातृकार्णव—
मालापचाशिका प्रोक्ता सूत्र शक्ति शिवात्मकम्।
ग्रन्थि कुण्डलिनी प्रोक्ता कलान्ते मेरू सस्थिति॥

3 निरुत्तरतन्त्र—
वैष्णवो गाणपत्यश्च सौरश्चैव कुलेश्वरि।
अभिषेक प्रकुर्वीत शाक्तश्च कुल भूषण॥
शिवशक्तिंच सपूज्य स्थापयेद्घटमुत्तमम्।
नातिह्रस्व नातिदीर्घं स्वर्णरूप्यादि निर्मित॥

4. भावचूडामणि—
भावस्तु मानसो धर्म शाब्द सद्दि कथभवेत्।
तस्माद्भावो न वक्तव्यो दिङ्मात्रंसमुदाहृत॥
यथैत्तुगुडमाधुर्यमशनैर्ज्ञायते प्रभो।
तथा भावविभावस्तु मनसा परिभाव्यते॥

5 निरुत्तरतन्त्र—
ओम राजराजेश्वरीशक्ति भैरवी कालभैरवी।
श्मशान भैरवीदेवी त्रिपुरानन्द भैरवी।

वह शक्ति मायावती है। मोहिनी है। वह स्थूल सूक्ष्म और परा है। वह निर्गुण ब्रह्म रूपिणी है।[1] उसका तो कोई सृजन नहीं करता, न संहार ही करता है। उसकी ही आज्ञा से मृत्यु भी काम करती है। सब देवता उसीकी

त्रिपुरेशा महादेवी तथा त्रिपुरमालिका।
त्रिपुरा त्रिपुरादेवी तथा त्रिपुरसुन्दरी।।
नित्याच नित्यरूपाच वज्रप्रस्तारिणी तथा।
सर्वचक्रेश्वरी देवी तथा नील सरस्वती।।
उग्रतारा महादेवी तथा दक्षिण कालिका।
उग्रदंष्ट्रा महादंष्ट्रा शुभ्रदंष्ट्रा कपालिनी।।
भीमनेत्रा विशालाक्षी मंगला विजया जया।
शक्तिर्मायावती ब्राह्मी जयन्ती चापराजिता।।
अजिता मानवी श्वेता दितिरूवदितिरेव च।
मायाचैव महामाया मोहिनी क्षोभिनी तथा।।
कमला विमला गौरी लावण्याम्बुधि सुन्दरी।
दुर्गा क्रियाऽरुन्धती च घटाकर्णा कपालिनी।।
चर्चिका चापरा ज्ञेया तथैव सुपूजिता।
वैवस्वतीच कौमरा तथा माहेश्वरी परा।।
वैष्णवीच महालक्ष्मी कार्तिकी कौशिकी तथा।
शिवदूती च चामुण्डा मुण्डमाला विभूषणा।।
द्राविणीपुत्रिकाश्चैव डाकिनी पुत्रिकास्तथा।
शाकिनी पुत्रिकाश्चान्या काकिनी पुत्रिका परा।।
लाकिनी पुत्रिका भूयो हाकिनी पुत्रिकास्तथा।
तनश्च राकिणा पुत्रा देवपुत्री ततः परम्।।
मानुणाच तथा पुत्री चोवमुख्या सुतास्तथा।
अधोमुख्या सुताश्चैव ज्वालामुख्या सुता परा।।
पुरुष प्रकृतिश्चैव विकाराश्चैव षोडश।।
आत्मा परमात्मा ज्ञानात्मा ध्यानात्मा परमात्मन।
आत्मानश्चात्मनश्चैव स्थूल सूक्ष्मौच ये परा।।

1 महाकाल संहिता—

सैवज्ञेया वरारोहे निर्गुण ब्रह्मरूपिणी।
जगत् सर्वं वशे तस्या कस्यापि सानच।।
विश्व सव सृजति सा कोऽपि सृजति नानहि।
सा पालयति संसार ता पालयति कोऽपि न।।
ता न संहरते कोऽपि सा सर्वं संहरत्यदः।
तदाज्ञयाऽनिलो वाति सूर्यस्तपति तद्भयात्।।
तद्भीत्याग्नि पचत्यन्न मृत्युश्चरति तद्भयात्।

उपासना करते है।[1] वह जगत् के आनन्द की जननी है। ससार का रजन करने वाली, ससार को अपनी ओर आकर्षित करने वाली, जगत् का कारणरूप है।[2]

स्त्री के प्राय सभी रूप प्रगट है।

उसका अनुभव करने के लिए 'मैं वह हूँ' की भावना की अनूभूति की आवश्यकता है। 'मै वह हूँ' यही तो देवता और गुरू भी है।[3] इसके अनन्तर फिर चक्र वर्णन आता है। अनेक चक्रो का स्पष्ट रूप है।

---

1. महाथर्वण सहिता—

 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च इन्द्राश्चैव दिवौकस ।
 ऋषयश्च मरीचाद्यस्तामेव समुपासते ।।

2. महाकाल सहिता—

 जगदानन्दजननी जगद्रन्जन कारिणीम्,
 जगदाकर्षणकरी जगत्कारणरूपिणीम् ।।

3 बालापद्धति—

 हसो गणेशो विधिरेव हमो
 हसो हरिर्हंसमयश्चशभु ।
 हसो हि जीवो गुरुरेव हसो
 हसोऽहमात्मा परमार्थरूप ।

4 योगसार—

 गुदाच्च द्वयङ्गुलादूर्ध्वं मेढ्राच्च द्वयङ्गुलादध
 मूलाधारामिद प्रोक्त पीतवर्णं चतुर्दल ।
 तोयवर्णादिभिर्वर्णैश्चतुर्भि समलकृत
 गुदमेढ्रान्तरालस्थ मूलाधार त्रिकोणकम् ।
 × × ×
 स्वाधिष्ठानाद्वय चक्र लिंगमूले षडारकम् ।
 × × ×
 नाभिदेशेस्थित चक्र दशारमणिपूरक ।
 × × ×
 द्वादशार महाचक्र हृदयेनाहताद्वय ।
 × × ×
 कठदेशे विशुद्धाख्य यच्चक्र षोडशारकम् ।
 × × ×
 आज्ञा नाम भ्रुवोर्मध्ये द्विदलं चक्र केशरम् ।
 × × ×
 सहस्रार महापद्म विमर्गाध प्रतिष्ठितम् ।
 × × ×

यहाँ चक्रों के साथ पीठ वर्णन भी है जो आगे रेखा कोष्टक चित्र में दे दिये गए हैं।

सारा ससार ब्रह्ममय है।[1] कलि मे निस्सन्देह काली के अतिरिक्त और कोई सहायक नही है।[2] यह शवरूप महादेव के यक्ष पर है। और ऊपर बैठकर रति मे लगी हुई है। वह प्रसन्न है।[3] शिव की वह महान् शक्ति ही सृष्टि का कारण है।

साधक धीरे-धीरे अद्वैत के उच्चासन की ओर ध्यानमग्न है। अद्‌भुत है यह आसक्ति, जो कपाल-कपाल कहकर सामाजिक रूप मे गतिहीन एक ही चक्र मे घूमते हुए जीवन को विरक्त-भावना से श्मशान-सा व्यर्थ समझती हुई ससार से परे, असामाजिक रूप मे स्त्री से लिपटी पडी है, जिसे सिद्धि चाहिए, किन्तु साधक अयाचक होना चाहता है।[4] समाज तो दरिद्र है, फिर क्या स्त्री के अतिरिक्त, इस देह के अतिरिक्त कही सुख है। यह घोर भौतिक, घोर शून्याद्वैत से मिल रहा है। कैसी भयानक विरोधी भावना है। शून्य को मास चाहिए। दु ख से हटने को आनन्द चाहिए। पाश से छूटने पर मुक्ति, और इस श्मशान-ससार मे जीवन के अन्त-शव पर बैठकर सिद्धि चाहिए।[5]

---

1 कुमारी तन्त्र—

सर्व ब्रह्ममय ह्येतत् ससार स्थूल सूक्ष्मक
प्रकृतिं तु विना नैव ससारमुपपद्यते ।।
तस्माच्च प्रकृतेर्मूल कारणनैव दृष्यते ।
रूपाणि बहुसख्यानि प्रकृतेरपि भामिनि ।।

2 कलौ काली कलौकाली कलौ काली तु केवला

3 शवरूपमहादेव हृदयोपरि संस्थिताम्
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् ।
महाकालसमायुक्ता शवोपरिरतान्विताम्
सुखप्रसन्नवरदा स्मेराननसरोरुहाम्
एव सञ्चिन्तयेत् कालीं श्मशानालयवासिनीम् ।। —मेरुतन्त्र

4. बौद्धायन—

सिद्धेस्तु त्रीणि चिन्हानि दाता भोक्ता अयाचक ।

भैरवीतन्त्र—

ज्योति. पश्यति सर्वत्र शरीर वा प्रकाशयुक्
निज शरीरपथ वा देवताभयमेव हि ।।

बक्रतुण्डकल्प—

चित्त प्रसादो मनसश्च तुष्टिरल्पाशिता स्वप्न परामुखत्वम्
स्वप्नेषु यानाद्युपलम्भनतु सिद्धस्य चिन्हानि भवन्ति सद्य:

5 कौलावलीनिर्णय—

ओम् प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुद्धयन्ताम् ।
ज्योतिरह विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ·

अब वह अपने समस्त स्थूल, भूत, तत्त्वो को शुद्ध कर रहा है ।[1] वह चाहता है सारा राष्ट्र, देश, सुखी हो, शान्त हो, किन्तु उसकी साधना व्यक्ति की ओर कुण्डली की ओर आकर केन्द्रित है, वह पुकार उठता है—

रे मातर्देहि मे भिक्षा कुण्डलीम् तर्पयाम्यह ।
भैरवोऽय न चान्योस्मि . . . ..

मै स्वय भैरव हूँ और कुछ भी नही ।

गोरक्ष का दर्शन हठयोग तथा उनके सिद्धान्त

ऊपर कुण्डलिनी और षट्चक्रो के नाम आ चुके है, जो इस प्रकार है : मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञाचक्र, इनके अतिरिक्त सबसे ऊपर सहस्रार चक्र है । उपनिषदो मे भी योग का उल्लेख है । हजारीप्रसाद ने लिखा है—यदि यह मान लिया जाए कि षडग योग गोरखनाथ का प्रवर्तित है, आसनो की सख्या अधिक मानना हठ-योगियो का प्रभाव है और नादानुसधान इन लोगो की विशिष्ट साधना है, तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि योग उपनिषदो मे से अनेक गोरक्षनाथ के परवर्त्ती हैं । कुछ मे प्राचीनता के चिन्ह अवश्य हैं, परन्तु अधिकाश पर उनका प्रभाव पडा है । यह मत अभी स्वीकार नही किया जा सकता । यह तो कहना ही व्यर्थ है कि गोरक्षनाथ के पहले योग की बड़ी जबरदस्त परम्परा थी जो ब्राह्मण और बौद्धो मे समानरूप से मान्य थी । नाना उपदेशो मे नाना भाव से योग की चर्चा हुई है और बौद्ध साधकों के पास तो कायायोग का साहित्य अन्यान्य अगो से कही अधिक था। इन सबसे गोरक्षनाथ ने सारसग्रह किया होगा । परन्तु दुर्भाग्यवश उनके पूर्ववर्त्ती अनेक ग्रथ लुप्त हो गए और यह जानने का हमारे पास कोई उपाय नही रह गया है कि कहाँ से कितना अमृत उन्होने सग्रह किया था ।

पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, प्रकृति, अहकार, बुद्धि, मन, श्रोत्र, त्वक् , चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वचन, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध, रस, आकाश, वायु, तेज, सलिल, भूमि, आत्मा सबके लिए यही प्रार्थना है ।

सहस्रारपद्मविसर्गादधास्तदधोवक्त्रमारक्त किंजल्क पुञ्जम्
कुरू गेण हीनस्त्रिश्रृंगस्तदन्त स्फुरद्रश्मिजाल सुधाशु समास्ते
तदन्तर्गत ब्रह्मरध्र सुसूक्ष्म यदाधारभूत सुषुम्णाख्य नाड्या
तदेतत् पद दिव्य मन्तव्य गुह्य सुरैरप्यगम्य सुगोप्यसुयत्नात् ।।

1 सपूजकाना परिपालकाना जितेन्द्रियाणञ्च तपोधनाना
दैशस्य राष्ट्रस्य कुलस्य राज्ञ करोतु शान्ति भगवान गणेश
शिवमस्तु सर्वजगत परहितनिरता भवन्तु भूतगणा
दोषाः प्रयान्तु शान्ति सर्वजना सुखीभवन्तु ।

विद्वानो ने गोरक्षनाथ के अनेक ग्रथो का वर्णन किया है । हजारीप्रसाद जी ने अपनी पुस्तक मे प्राय उन सभी स्रोतो को देख डाला है । फिर भी वे इस निश्चय पर नही पहुँचे कि उनमे से कितनी रचनाएँ स्वय गोरक्षनाथ की है । गोरक्षनाथ के हठयोग के विषय मे विचार करते समय हम निम्नलिखित तथ्यो पर पहुँचते है कि उनको पद्म, चक्र, नाडीज्ञान, मातृकाओ तथा कुण्डलिनी ज्ञान और षडाग तथा अष्टाग योग की एक बहुत बडी धरोहर मिली थी । उस धरोहर की रूपरेखा को समझने के लिए ही, आर्यसामाजिक व्यवस्था मे स्वीकृत तथा उसके बाहर की व्यवस्था मे स्वीकृत, बौद्ध तथा अन्य प्राप्त स्रोतो को इतने विस्तार से देखा गया है । अमरौघ शासन, हठयोग प्रदीपिका, शिवसहिता, घेरँड सहिता, गोरक्ष पद्धति, सिद्धसिद्धान्त सग्रह तथा गोरक्षसिद्धान्त सग्रह से उनके हठयोग मे अन्य साधारणतया प्रचलित भेद विशेष नही दिखाई देते । अमरौघ शासन से प्रगट हो जाता है कि हठयोग उनका माध्यम था, अन्त नही ।

हठ शब्द के ऊपर नाथ सम्प्रदाय मे हजारीप्रसाद ने पुराने-पुराने आचार्यों का मत सकलन किया है । अत उसे यहाँ दोहराने की आवश्यकता नही । हठ ह और ठ का सयोग है । ह और ठ सूर्य और चन्द्र का सयोग है अथवा इडा-पिंगला का अथवा दोनो श्वासो का, शरीर का आधा भाग सूर्य है, आधा चन्द्र, इन दोनो को मिलाकर सुषुम्णा मे केन्द्रित करना योगी का लक्ष्य है ।

चक्रो की गणना के विषय मे मतभेद है । गोपीनाथ कविराज ने गोरक्ष शतक और गोरक्ष पद्धति से गोरखनाथ के चक्रज्ञान का वर्णन किया है । उनके अनुसार संक्षेप मे यह क्रम है । यह रचना हस्तलिखित ही है ।

संख्या	दल	चक्र	रंग	स्थान	देवता	शक्ति	ऋषि	विशेषता
1	—	आधार	लाल	पायु	गणेशनाथ	सिद्धि, बुद्धि	—	—
2	—	महापद्म	—	—	नीलनाथ	—	—	—
3.	—	स्वाधिष्ठान	पीत	लिंग	ब्रह्मा	सावित्री	—	—
4.	6	सुषुम्ना	—	सुषुम्ना	—	—	—	—
5	7	गर्भ	—	गर्भस्थान	—	—	—	—
6.	8	कुडलिनी	—	कटिप्रदेश	अग्नि	—	—	—
7.	—	मणिपूर	—	नाभि	विष्णु	—	—	—
8.	—	लिंगचक्र	—	—	—	—	—	—
9	12	मनस	श्वेत-ज्योति	अनाहत हृदय	महादेव रुद्रनाथ	उमा	हिरण्यगर्भ	पश्यन्तीवाक्, सामवेद
10	16	विशुद्ध	धूम्र	कठ	जीव	आद्याशक्ति	विराट	परावाक्, अथर्ववेद, जालन्धर बध,
11.	32	प्राण	उद्योत-वर्ण, प्रभा	गलस्थान	प्राणनाथ	परमाशक्ति	—	शरीर का दशमुख द्वार, (योगसूत्र के अनुसार कठ कूप)
12	32	अवल	अरुणो-द्योत प्रभा	त्रिग्रथि स्थान, ब्रह्मा, विष्णु, महेश के मिलने का स्थान	—	—	—	कालचक्र और योगिनी चक्र से सम्बन्धित

संख्या	दल	चक्र	रंग	स्थान	देवता	शक्ति	ऋषि	विशेषतां
23.	64	तालू	—	ऊर्ध्व रध्र तालिमा	गोरक्षनाथ	सिद्धान्त शक्ति	—	समाधि योग का स्थान, प्राण मनस का काम बद
24.	1000-0000	अलक्ष्य (ब्रह्म)	अद्भुत दीप्ति	भ्रमरगुहा	अलक्ष्य नाथ	माया महामाया अकला	महाविष्णु	—
25	वही	अकठपीठ पुण्यागार	वही	—	अकल नाथ	अकलेश्वरी	अकल	—
26	—	कोलहाट, परम शून्य मार्ग	—	शिखा मडल	अनत	अनत	—	वैष्णव बैकुठ, शिव कैलास
27.	—	वज्रदड	तेज पुजप्रभा	—	—	—	—	महाविशाल, दीर्घ
28.	असख्य	निरालब स्थान	असख्य	असख्य	असख्य	असख्य	—	मातृका असख्य, गुरु का सर्वोच्च स्थान, ससार असख्य

इनके अनन्तर 20 शून्य, फिर परम शून्य स्थान=21, ब्रह्माडो के पार।
'स च योगी तिष्ठति युगे युगे ज्योति समेत्य'।

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने और भी विस्तार से इसका तुलनात्मक अध्ययन किया है। इसमे यदि एक ओर बाहुल्य-विविधता के कारण प्राचीनता का पुट है तो दूसरी ओर इसमे बहुत-सी बाते परवर्त्ती-सी प्रतीत होती है। मेरा अनुमान है कि गोरक्ष की पूर्ववर्त्ती अवस्था मे जब षट्चक्र और नाडीज्ञान बिखरा पडा था, उसको लेकर परवर्त्ती काल मे उनके चक्रज्ञान तथा शैव और वैष्णव मत को मिलाने के उद्देश्य से यह लिखा गया है। सम्भवत यह नाथ सम्प्रदाय मे ब्राह्मण मत के प्रभाव का प्रतीक है जो परवर्त्ती काल मे नि सदेह हुआ था। दूसरी तरह इसे यो कह सकते है कि नाथ सम्प्रदाय के प्रभाव से जैसे कापिलायनी वैष्णव योगशाखा[1] भी उसी के क्षेत्र मे आ गई थी यह भी उससे कुछ मिलता-जुलता-सा प्रयत्न था।

चक्रो का बाहुल्य होने पर भी वस्तुत तथ्य वही है।

आर्थर एवेलान ने अपनी 'दि सर्पेण्ट पावर' नामक पुस्तक मे षट्चक्रो तथा कुण्डलिनी पर विस्तार से प्रकाश डाला है। हजारीप्रसाद ने अपनी 'नाथ सम्प्रदाय' मे उस कोष्टक चित्र का कुछ अश दिया है। यहाँ दोनो का तुलनात्मक अध्ययन करके कुण्डलिनी के जागृत होने के पहले तथा जागृत होने के बाद की अवस्था को ऊपर दिये हुए चक्रज्ञान से तुलना के लिए दिया जाता है। मेरा विचार है कि इस दूसरी अवस्था को ही गोरक्ष का कार्य और उनकी दी हुई व्यवस्था समझना अधिक ठीक होगा। हजारीप्रसाद ने लिखा है कि गोरक्ष पट्चक्र, 16 आधार, 2 लक्ष्य तथा व्योम पचक को आवश्यक मानते है। किन्तु सिद्धसिद्धान्त पद्धति मे 9 चक्र, 16 आधार, 3 लक्ष्य और व्योम पचक माने गए है। इनमे आगे वर्णित षट्चक्रो के अतिरिक्त घण्टिका, मनोलय और ब्रह्मचक्र अतिरिक्त है। ब्रह्मचक्र सहस्र दल है। इस वर्णन मे प्रथम चक्र का नाम भी ब्रह्म चक्र है और अन्तिम का भी। प्रथम त्रिधावर्त भग-मण्डलकाकृति है। उसके नीचे कद मे शक्ति निवास करती है। यह कामरूप पीठ है। दूसरा चक्र चतुर्दल पद्म है। उड्डियान पीठ है। अगला चक्र कुण्डलिनी का स्थान है। अनाहत चक्र 12 दलो के स्थान पर 8 दल का है। उसमे दीप्त हसकला नामक लिंग है। इडा पिगला के बीच मे सुषुम्णा अनाहत कला है। आज्ञाचक्र के स्थान पर तालुचक्र है जिससे अमृत बहता है। इन छोटे भेदो को छोडकर परिष्कृत, समन्वय तथा आत्म-सात् करके स्पष्ट रूप यह दिखाई देता है—

---

1. नाथसम्प्रदाय, हजारीप्रसाद द्विवेदी।

कुंडलिनी तथा षट्चक्र

कुंडलिनी का पथ	चक्र (वाक)	खडनाम	स्थान	दल संख्या	तत्व का वर्ण	तत्व और गुण तथा किरण	वर्ण
	मूलाधार (परा)	अग्नि	रीढ के अधोभाग मे, पायु और मुष्क-मूल केबीच	4	पीत	56, पृथ्वी आकर्षण गध	व श ष स
	स्वाधिष्ठान (पश्यती)		मेरुदड मे मेढ़ के ऊपर	6	श्वेत	62, जल सकोचन रस	व भ म य र ल
	मणिपूर	सूर्य	मेरुदड मे नाभि के पास	10	लाल	52, तेज प्रसरण रूप	ड ढ ण त थ द ध न प फ
	अनाहत (बुद्धि से मिलकर वैखरी)		हृदय के पास	12	धूम्र	54, वायु गति स्पर्श	क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ठ ढ
	विशुद्ध	चद्र	कठ के पास	16	श्वेत	72, आकाश अवकाश शब्द	अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः
	आज्ञा		भ्रुवो के मध्य	2	—	64, मनस	ह क्ष

कुण्डलिनी के जागृत होने पर

मंडल का आकार तथा ग्रन्थि	बीज और वाहन	देवता और वाहन	धातु शक्ति	लिंग और योनि	अन्यान्य तत्त्व और इन्द्रिय	पीठ	गुण	लोक	देवता
वर्गाकार	ल ऐरावत	ब्रह्मा हस	डाकिनी	स्वयम्भू त्रिपुर त्रिकोण	गध तत्त्व चरण घ्राणेन्द्रिय	कामाख्या	तमस	भूर्लोक	अग्नि
रुद्रग्रन्थि									
अर्धचन्द्र	व मकर	विष्णु गरुड	शाकिनी	—	रस तत्त्व हस्त, रसना	—		स्वर्लोक	
त्रिभुज	र मेष	रुद्र वृषभ	लाकिनी	—	रूप तत्त्व चक्षु पायु	—	रजस	महर्लोक	सूर्य
विशुद्ध ग्रंथि									
षट्कोण	य कृष्णमृग	ईश	काकिनी	बाण त्रिकोण	स्पर्श तत्त्व त्वचा उपस्थ	पूर्णगिरि		जनलोक	
वृत्त	ह श्वेतगज	सदाशिव	शाकिनी	—	शब्द तत्त्व कान वाक्	जालधर	सत्त्व	तपोलोक	चन्द्र
ब्रह्मग्रंथि									
—	ओम्	शभु	हाकिनी	इतर त्रिकोण	महत् तत्त्व सूक्ष्म प्रकृति हिरण्य गर्भ	उड्डियान (योगसार के अनुसार उद्यान)		सत्यलोक	

दुरूह और प्राय छोटे-छोटे भेदो मे रमानेवाले इस विषय के पारिभाषिक विस्तार मे न जाकर अब कुण्डलिनी को देखना ही अधिक आवश्यक है। कुण्डलिनी शक्ति है। शक्ति और शिव का मिलन योग है। चित केवल दृश्य-रूप मे ही सीमित-सा प्रतीत होता है। माया शक्ति ही के कारण पूर्ण भी अपूर्ण-सा भासित होने लगता है। असीमित, सीमित, अरूप रूपमय। शक्ति सच्चिदानन्द रूपिणी चिद्रूपिणी है। शिव पूर्ण है। शक्ति के द्वारा वे सृष्टि करने के योग्य हो पाते है। यह शाक्त तथा शैव प्रत्यभिज्ञा का मत है। द्वैत-भाव से ससार मे शिव और दृश्य का सृजन करने वाली शक्ति ही है। माया मे वह विक्षेप भी करती है, आवरण भी। वह चेतना अपने-आपको भी स्वय से आवरण मे छिपा लेती है। तब सस्कारो के कारण ही पुन विक्षेप करती है। परासवित अवस्था सबसे परे है। वह शक्ति एकात नही कहला सकती। उसके लिए शिव शक्ति तत्त्व सर्वोपयुक्त शब्द है। परासवित मे अह और इद सब मिले हुए है।

ऊपर काश्मीर शैवमत का अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन किया जा चुका है। अब हम उसे यहाँ आलोचनात्मक दृष्टि मे देखेगे।

जीव ससार मे रहता है क्योकि वह ऐसा ही चाहता है। यह दृश्य जगत् के प्रति उसके भीतर बना हुआ मोह है। जब सृष्टि की इच्छा (सिसृक्षा) होती है तब शक्ति नाद से कॉप उठती है और बिन्दु का रूप धारण करती है। वही ईश्वर तत्त्व है। उसीसे सृष्टि उत्पन्न होती है। शिव की सृष्टि करने की इच्छा ही सिसृक्षा है। करनेवाली तो शक्ति है। तब यह द्वन्द्व क्यो भासित होता है। नही, यह द्वन्द्व नही है। आवरण के कारण ही ऐसा प्रतीत होता है। शिव सबसे परे तो है किन्तु शक्ति भी शिवमय है। 36 तत्त्वो को लेकर वह प्रलयकाल मे शिव मे ही अवस्थित रहती है। उसका फिर से सृष्टि रचने मे उद्यत होना शिव का ही इच्छारूप समझना चाहिए।

शैव और शाक्त दोनो ही 36 तत्त्व, कला, शक्ति, उन्मनि और नाद, बिन्दु, कामकला इत्यादि के विषय मे एक मत है।

तन्त्रो मे 36 तत्त्वो को तीन भागो मे विभाजित किया गया है। आत्मा, विद्या, शिवतत्त्व। आत्मा मे पृथ्वी से लेकर प्रकृति तक अशुद्ध तत्त्व है। विद्या मे माया, कचुक, पुरुष, शुद्धाशुद्धतत्व। शिव तत्त्व मे 5 उच्च तत्त्व, शुद्ध तत्त्व, शिव शुद्ध विद्या। आत्मा मे पुरुष अपने से अतिरिक्त एक अलग ससार का अनुभव करता है। वह प्रकृति है। दूसरी अवस्था मे प्रकृति विकृति मे अपना विभाजन कर लेती है।

प्रकृति के रूप मे वह पहले बुद्धि, मनस्, अहकार और इन्द्रिय उत्पन्न करती । तदनन्तर भूत जो पाँच प्रकार का है—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी,

इनका उदय तन्मात्राओ से होता है। शक्ति के लिए पृथ्वी तत्त्व जो स्थूलतम है उसमे प्रवेश करने के बाद और कुछ शेष नही रह जाता है। तब वह विश्राम करने लगती है। उसे ही कुण्डलिनी कहते है। वह मूलाधार चक्र के समीप निवास करती है। बिन्दु मे शून्य शिव है। गुण शक्ति है। वे अलग नही किये जा सकते। ब्रह्मपद और माया पर कुण्डली परस्पर मिले हुए है। पर बिन्दु शक्ति की घनावस्था है। बिन्दु मे शक्ति अभेदरूपा—सर्वशक्तिमय है। प्रकृति मे त्रिगुणमयी मूल प्रकृति। वह अव्यक्त देवता है। देवी रूप मे शान्ता है।

त्रिबिन्दु का समष्टिरूप ही त्रिपुरसुन्दरी है। यह ही सब मन्त्रो का मूल है। शक्ति के स्फुरण होकर प्रगट होने के पहले की अवस्था महाबिन्दु है। मैथुन मे शिव-शक्ति एक हो जाते है। वह स्फुरण ही नाद है, जहाँ से महाबिन्दु का उदय होता है। सदाशिव, ईश, विष्णु, ब्रह्मा, पचतत्त्व देवता पृथ्वी सहित मूलाधार मे स्थित है। कोई ब्रह्माण्ड मे वस्तु नही जो शरीर मे स्थित नही है, आकाश मत देखो। ईश्वर तो मनुष्य देह के भीतर है। वह अन्तरात्मा मे है, अन्तर्यामी है।

वह अपनी माया से अप्रभावित है, जीव अविद्याग्रस्त है, वह मलिन सत्त्वगुण प्रधान है। आकाश एक स्थूल शक्ति है जिसमे प्रकृति शक्ति अपने को विभाजित करती है। सूक्ष्म और स्थूल देह लिग शरीर की क्रिया-शक्ति से शक्ति ग्रहण करते है, सबद्ध रहते है।

प्राण का पुरुष तत्त्व बाहर आता है, नारी तत्त्व खीचता है, शब्द ब्रह्म के रूप मे शक्ति की यही प्रकृति है, प्राण वायु का ही कार्य है। वेदाती इसे अलग वस्तु मानते है, किन्तु यहाँ वैसा नही है। श्वास-प्रश्वास भी इसी कारण मत्र के समान है, सोऽह-सोऽह का नाद निरन्तर प्रत्येक जीव मे व्याप्त है, यह मत्र ज्योतिर्मयी कुण्डलिनी को जागृत करता है। कुण्डलिनी की कुण्डलियो मे बिन्दु, प्रकृति-पुरुष, इच्छा, क्रिया ज्ञान निहित है। जब सृजनात्मक शक्ति उन्मुखी अवस्था मे होती है तब आज्ञा चक्र के ऊपर की शक्ति योग मे फिर से लय होने की इच्छा करती है। सहस्रार का ईश्वर सृष्टि करनेवाला ईश्वर नही है। नीचे से शक्ति जाकर उसमे मिलती है, वही मुक्ति है।

कुण्डलिनी जगाकर ही ज्ञान होता है। कुण्डली का सहस्रार मे शिव से मिलन होता है। स्वरस ज्ञान वही तो है। यह ब्रह्म का नैरन्तर साक्षात्कार है। वृत्ति तब शेष नही रहती।

यस्मिन विज्ञाते सर्वं इद विज्ञात भवति।

तारकालकार के अनुसार लययोग ही समाधियोग है। 6 आम्नायो मे 6 अलग-अलग योगो का उल्लेख है। पूर्णाम्नाय मे साख्य, दक्षिणाम्नाय मे एकात्म, पश्चिमाम्नाय मे उन्मनी इत्यादि। छठे अथवा गुप्त आम्नाय मे

कुण्डलिनी शब्द ब्रह्म है। जिससे ध्वनि, उससे नाद, इसी प्रकार नैरोधिका अर्धेन्दु, बिन्दु, परा, पश्यती और अन्त मे वैखरी का उदय होता है। निरोधिका अग्नि है। अर्धेन्दु चन्द्र और सूर्य का मिलन है।

शिव का अर्थ वश धातु से वश मे करना, शासन करना है। वेदाती के अनुसार जीव और आत्मा का मिलन योग है। शैव मत मे जीव और शिव का मिलन योग है। उसकी शक्ति जो शरीर मे स्थित है वह कुण्डलिनी है, स्वय पिंड है। वह अ उ म का कुण्डलीकृत प्रणव स्वरूप है। शिव और कुण्डलिनी का मिलन ही सायुज्य मुक्ति है। कुण्डलिनी मूलाधार से उठकर सुषुम्णा द्वारा षट्चक्र भेदकर सहस्रार मे आकर पर शिव से मिल जाती है। शिव की यह शक्ति साख्य की प्रकृति की भॉति नही। यह तो चैतन्य है। यहाँ द्वैत की भावना नही है। न पातजल योग की भॉति यहॉ प्रकृति कारण तथा दु खो से युक्त जीव ईश्वर है। शिव निर्गुण और सगुण रूप मे दोनो प्रकार से शक्ति से मिला हुआ है। पर बिन्दु अथवा शब्द ब्रह्म शरीर मे कुण्डलिनी स्वरूप है, वह माता है।

साख्य और न्याय दु खो से निवृत्ति प्राप्त करना ही मनुष्य का अन्तिम ध्येय मानते हैं किन्तु वेदाती सर्वशक्तिमान से एकता चाहते हैं। जहॉ तक अद्वैतवाद मे चित् का प्रश्न है साख्य, वेदान्त और तन्त्र एक ही मत रखते हैं किन्तु शैव प्रत्यभिज्ञा मे माया अथवा शक्ति को निकृष्ट और जड नही समझा जाता। शकर का दृष्टिकोण परमार्थिक की ओर से है। शाक्त और शैव का जीव की ओर से। इसमे शैव और शाक्त जीवन से अधिक निकट हैं। विश्वोत्तीर्ण अवस्था मे वह मनुष्य के किस पक्ष मे प्रयोजनीय है। वह यदि एक ओर विश्वात्मिका है तो दूसरी ओर चिद्रूपिणी है। यदि ब्रह्म पूर्णाद्वैत है तो वह शक्ति को अपने से अलग करके स्वगत भेद स्वीकार नही कर सकता। शाक्त के अनुसार शक्ति के रूप मे शिव बदलता है। शिव रूप मे वह नहीं बदलता। शक्ति ही पर वस्तु है। वही चित् शक्ति है। जो दृश्यमान ससार है वह तो मात्र माया शक्ति है किन्तु उनका अविनाभाव सम्बन्ध है। प्राण इसी शक्ति का एक स्वरूप है।

वुडरौफ ने यह भेदो का सघर्ष हटाकर साख्य, वेदान्त शैव और शाक्तो के विषय मे कहा है कि निम्नलिखित तथ्यो को सब ही स्वीकार करते हैं—

शिव शक्ति मिलने से सृष्टि होती है। शिव अनन्त असीम तथा पूर्ण चैतन्य है। शक्ति, माया, प्रकृति, सीमित, रूप नामधारिणी है। शक्ति आवरण है। वह कभी मूल प्रकृति—अव्यक्त, कभी विकृति के रूप मे रहती है। साख्य मे द्वैतवाद है, वेदान्त और शैव-शाक्तो मे अद्वैतवाद। शंकर ने साख्य के प्रकृति पुरुष को एक कर दिया किन्तु शाक्त और शैव ने उस एक ब्रह्म

की माया को शक्ति के रूप मे उससे ऐसा मिला दिया कि अब प्रलय मे ब्रह्म मे घुल-मिल जाने की जगह, शक्ति स्वय शिव ही हो गई। पिड मे वही कुण्डलिनी हो गई। उसका जागरण ही लय योग है। तभी घेरड सहिता मे कहा गया है कि योनि मुद्रा से शक्ति ग्रहण करना चाहिए। उस समय आनन्द-मय होना चाहिए। गोरक्ष सहिता मे भी यही भाव है कि शक्ति के साथ जीव को उठाकर सहस्रार मे ले जाने से शक्तिमय होता है और शिव से मिलकर आनन्द की ही अनुभूति होती है। वह वास्तव मे बुद्धिमान है जो महानतम तेजस् को जानता है जो योनि मे स्वयभू लिग के नाम से है। अन्य सब पशु है, केवल भार ढो रहे है।

आधार चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र के बीच मे एक योनि स्थान है जिसका नाम कामरूप है।[1] आधार चक्र चतुर्दल है। वह गुदा स्थान है। उसके बीच मे ही योनि स्थान है, वह कामाक्षा और सिद्धो से वदित है, उस योनि के मध्य मे पश्चिमाभिमुख स्थित महालिग है मस्तके मणिवत बिम्ब यो जानाति स योगवित्। तप्त पिघले स्वर्ण की भाँति बिजली की लेखा के समान विस्फुरण मे चचल योनि स्थान—अग्नि का वह त्रिकोण—मेढ़ू के अधोभाग मे है। मेढ़ू के ऊपर और नाभि के नीचे खगाडवत कन्द योनि है, वही 72 हजार नाडियो के उत्पन्न होने का स्थान है। इनमे इडा, पिगला, सुषुम्णा, गाधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा और यशस्विनी महत्त्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त अलबुषा, कुहु और शखिनी मिलाकर दस हो जाती है। नाडी और चक्रो को तो योगी को अवश्य जानना चाहिए। इडा बाई ओर है, पिंगला दाई ओर, सुषुम्णा बीच मे है, यह नाडियाँ प्राण का प्रवाह धारण करती है, प्राणो को वश मे करने का नाम प्राणायाम है।

जब तक शरीर मे बिन्दु है तब तक मृत्यु का भी भय नही है। खेचरी मुद्रा से बिन्दु शरीर मे ही रहता है, चाहे कामिनी से आलिगन ही क्यो न हो। यदि बिन्दु हुताशन अर्थात् योनि स्थान तक भी पहुँच जाए तब भी योनि मुद्रा की शक्ति से वह रोका जा सकता है, पीछे खीच लिया जा सकता है, बिन्दु शिव है, शक्ति रज है, बिन्दु चन्द्र है, रज सूर्य है, इनके मिलन से परमपद मिलता है, नाडी शुद्धि तथा प्राण-निरोध से आरोग्य होता है और योगी को नाद की अभिव्यक्ति होती है।

ऊर्ध्वशक्ति के निपात[2] तथा अध शक्ति के कुचन और मध्य शक्ति के प्रबोध से परम सुख उत्पन्न होता है। नाद उत्पन्न होने पर दशम ध्वनि दुन्दुभि

---

1. गोरक्षशतक प्रकाशित।
2. अमरौघ शासन।

स्वन होती है। उसके बाद अनाहत निनाद होता है, किन्तु उसके बाद यह सब ध्वनियाँ सुनाई देना बन्द हो जाती है।

प्रकृति के 5 भेद हैं, पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश, इनके भी पाँच-पाँच गुण मुख्य है। अधिक क्या कहा जाए, काम विषहर-निरजना नाम ब्रह्मदण्ड मूलाकुरे निवास एभिर्यदमुखो एभिर्यदा मुक्ति स मोक्ष भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कार्यं नास्ति।

मनुष्यरूप गर्भ पिडावस्था मे है, यह परा, साकार, महा साकार, प्राकृत अवलोकन पिंडो का अन्तिम रूप है, इसी मे चक्र, पद्म, नाडी, ज्ञान इत्यादि हैं। सूक्ष्म और स्थूल का विचार करते हुए यह तत्त्व निकलता है कि जो पिंड मे है वही ब्रह्माड मे भी है, इसी मे पर्वत, यक्ष इत्यादि सब-कुछ हैं।

अखण्डपरिपूर्णात्मा विश्वरूपो महेश्वरा·
घटे-घटे चित्प्रकाशस्तिष्ठतीति प्रबुध्यताम्। (सिद्ध सिान्त सग्रह)

इस पिंड का आधार शक्ति है, यह शक्ति जब शान्त है तब वह शिव है, वह कुल और अकुल दोनो ही है। कुल के पाँच प्रकार है—परा, भासा, सत्ता, अहता और कला, अकुल ही कुल होकर व्यवहार मे उतरता है। वह शक्ति कुण्डलिनी है, प्रत्येक चक्र मे अलग-अलग शक्ति है पर मुख्य शक्ति एक है। इसी के जागरण से देह सिद्धि होती है। शिव शक्ति का भेद अज्ञान के कारण होता है। गुरु द्वारा पिंड सिद्धि होती है, जो निरुत्थान कराके सामरस्य प्राप्त कराता है। इससे निजावेश होता है, और परमपद प्राप्त होता है। चित्त लय होने पर उसमे आश्रित ज्ञान शक्ति के अलकृत होने पर समस्त चित्त दर्पण के प्रतिबिम्ब समान विविध-भाव-कला-कलित ससार चेष्टावलोकन कुशला सुप्तावस्था या रूपी जलचन्द्रवत दृश्यते य—वही परमात्मा सर्वव्यापी महेश्वर है, वही परमात्मा है। योगी की उस उच्चावस्था के लिए सबसे उपयुक्त वस्तु सहज है जिसमे कुछ भी अकृत्रिम नही हो। यह भावना तो बौद्ध सिद्धो की अपनी ही बात थी।

(सहजो) ऽकृत्रिमो यस्मात् (तस्मात्) सगो न साहज
सुख न सहजादन्यत् सुखंचासग लक्षण॥
ज्ञात्वा नि सगता नाम्नी निर्बोधागत सत्सुख।
विश्व स्वसमय कृत्वा मग्न सहज सागरे॥[1]

(अद्वय वज्रसग्रह, पृष्ठ 63)

---

1. सहज अकृत्रिम है, सहज में सग नहीं है। सहज से बढकर सुख नहीं है। सुख असग का लक्षण है। नि सग का ज्ञान करके बोधगत सुख है, विश्व को स्वसमय करके, सहज सागर में मग्न हो जाए।

सहज के सागर मे मग्न होना चरमावस्था है, फिर कोई बन्धन नही रहते। नि सग होना उसकी कामना थी, सहज से बढकर और क्या सुख हो सकता है।

अनास्पदा कल्पनया विमुक्ता,
स्वभावत शुद्धतमा. समस्ता।
अनात्म सज्ञा विपया प्रकृत्या,
स्वप्नेन्द्र जाल प्रतिभास तुल्या।[1]

(प्रज्ञोपाय विनिश्यच सिद्धि, 46)

इस अनात्म से योगी को क्या आपत्ति हो सकती है, जब आत्मा का ही मिलन हो गया तब तो वह नही के समान ही जो हो गई।

यो भावो यस्य वै प्रोक्तस्तदभावे सस्थितापुरा।
स्वेच्छया वलय कृत्वा यथा कुण्डलिनी स्थिता।[2]

(शक्ति सगम काली खण्ड 83/1)

जैसे कुण्डलिनी अनासक्त शान्त शिवभाव मे स्थित है वह शिव भी है शक्ति भी। योगी को उसको जगाकर स्वय उसकी निद्रित अवस्था ही श्रेयस्कर है, अद्भुत है।

स्वय महार्थानि जगन्निमित्त।
जानातिचासौ पर चित्तवृत्ती।[3] (वाक्य साधन, पृष्ठ 135)

बौद्ध सिद्ध तो यह सब ससार के भले के लिए करते थे। वह अवस्था अपनी ही नही, ससार की वृत्ति जान लेने के कारण एक परावस्था है।

नित्य सर्वगत. सूक्ष्मः सदानन्दौ निरामय।
विकाररहित. साक्षी शिवज्ञेयो सनातन।[4] (प्रयोगसार)

योगी सनातन शिव के समान विकाररहित होता है, उसे फिर कोई आमय नही रहते।

सदा समरस ध्येय ध्यान तत्कुलयोगिनाम्।
× × ×
निरालम्बे पदे शून्ये यत्तेज उपजायते।[5] (कौलावली निर्णय)

---

1. अनास्पद, कल्पना विमुक्त, स्वभाव से ही समग्र ही शुद्धतम, अनात्म सज्ञा विषय की प्रकृति से सब कुछ स्वप्न के इन्द्रजाल के समान भासित होता है।

2 जो जिसका भाव है—कहा गया है, उसी भाव में पहले की ही भाति स्वेच्छा से ऐसा ही ठहरे जैसे वलय करके कुण्डलिनी स्थित होती है।

3 स्वय महार्थ जग के निमित्त, परचित्तवृत्ति का ज्ञाता।

4. नित्य सर्वगत सूक्ष्म, सदानन्द, निरामय, विकाररहित, साक्षी, सनातन ही शिव है।

5. सदा समरस ध्येय, कुल योगियों का ध्यान है।
निरालम्ब शून्य पद में—जहाँ से तेज उत्पन्न होता है।

इस सामरस्य की ही इच्छा कौल भी करते थे, वे अपने को योगी से कम नही समझते थे।

सर्वात्मभूत· सर्वाध्वसमुत्तीर्ण स्वतन्त्रक·।
स्वशक्त्या भासितानन्तविश्व स परमेश्वर ॥[1]
(तन्त्रवटधानिका 10/1)

बौद्ध सिद्ध इस अनन्त विश्व को अपनी शक्ति से भासमान होते देखकर उसे ही परमात्मा कहता है। योगी क्या कुछ भिन्न समझता है। वह अपनी सामर्थ्य मे न जाने कितनी सृष्टियाँ अपने भीतर लय कर लेता है।

न निरोधो नचोत्पत्तिर्न बद्धो नच साधक
न मुमुक्षनैव मुक्त इत्येषा परमार्थता[2] ॥10॥
(अमृत बिन्दूपनिषत्र)

योगी को न तो निरोध है न बधन न उत्पत्ति। प्रश्न बार-बार सामने आता है कि यह अभावात्मक स्वीकृति किस दिशा की ओर खीच ले जाना चाहती है।

अशून्य शून्य भावन्तु शून्यातीत हृदिस्थित
नध्यानच नच ध्याता न ध्येयो ध्येय एवचा[3] ॥10॥ (प्र० अध्याय)
अखण्डैकरस दृश्य अखण्डैक रस जगत
अखण्डैक रस भावमखण्डेक रस स्वय[4] ॥1॥ (द्वितीय अध्याय)
केवलज्ञानरूपोऽह केवल परमोस्म्यह[5] ॥1॥ (तृतीय अध्याय)
वेदंशास्त्र पुराणच कार्यं कारणमीश्वर
लोकोभूत जनस्त्वैक्य सर्वं मिथ्या न सशय ॥43॥
मनएव जगतसर्वं मन एव महा रिप
मन एव हि ससारी मन एव जगत्रय[6] ॥98॥ (पचम अध्याय)
(तेजो बिन्दूपनिषद्)

---

1. सर्वात्म भून, सर्वाध्वमसुत्तीर्ण, स्वतन्त्र कारक अपनी शक्ति से अनन्त विश्वों को भासित करने वाला—वह परमेश्वर है।

2. न रुकावट, न उत्पत्ति, न बद्ध, न साधक, न मुमुक्षु। वह मुक्त है—यही परमार्थता है।

3. अशून्य शून्यभाव, शून्यातीन को हृदय में धर, न ध्यान, न ध्याता, ध्येय-अध्येय से परे।

4. अखण्ड एकरस, दृश्य, जगत्, भाव और स्वयं।

5. केवल ज्ञानरूप हूँ, केवल परमात्मा हूँ।

6. वेदशास्त्र, पुराण, कार्य, कारण, ईश्वर, लोक, भूत, जन—सब सचमुच मिथ्या है। मन ही सब जगत् है, मन ही शत्रु है। मन ससार है, मन तीनों जगत् है।

इस अखण्ड रस मे योगी केवल ज्ञान रूप हो उठता है ।

घट सवृत्तमाकाश नीयमाने घटे यथा
घटोलीयतेनाकाश तद्वज्जीवो नभोपम.[1] ॥13॥

(क्षुरिकोपनिषद्)

प्रश्न का उत्तर है कि वह आकाश के समान होना चाहता है । वेदान्त का अद्वैत कहकर क्या उस ब्रह्म का एक परिचय-सा नही दिया जाता । द्वैताद्वैत के परे जो है वह नाथो की ब्रह्म की कल्पना है । उसके लिए कोई लिंग सकेत चिह्न नही हो सकते ।

साख्या वैष्णव वैदिका विधिपरा सन्यासिनस्तापसा
सौरा वीर परा प्रपच निरता बौद्धाजिना श्रावका ।
एते कष्ट रता वृथा पथगता स्ते तत्वतो वचिता ।[2]

(सिद्ध सिद्धान्त सग्रह)

सब कष्ट झेल रहे है । केवल सिद्धमत है जो इसीलिए कहा गया है कि वे मुक्ति को पहचान सके ।

वेदशास्त्रपुराणानि सामान्य गणिका इव
सा पुन शाकरी मुद्रा प्राप्ता कुलवधूरिव ।[3]

(गोरक्ष सिद्धान्त सग्रह)

वेद, शास्त्र, पुराण इत्यादि मे वह गम्भीर सत्य को खोजकर निकाल लानेवाली शक्ति नि सन्देह नही है ।

योगमार्गात् परोमार्गो नास्ति नास्ति ।
× × ×
वेदभारभराक्रान्तास्ते विप्रा· पुरुषाधम ।
× × ×
गृहे-गृहे पुस्तक भार-भारा पुरे-पुरे पण्डित यूथ-यूथा
वने-वने तापस वृन्दा-वृन्दा न ब्रह्मवेत्ता नच कर्मकर्ता ।[4]

(कावेषय गीता)

---

1. घट में सवृत्त शून्य को जैसे घट वहन करता है, घट में ही आकाश लीन हो जाता है, उसी आकाश के समान जीवित रहना चाहिए ।

2 साख्य, वैष्णव, वैदिक, सन्यासी, तापस, सौर, वीर, प्रपचनिरत बौद्ध, जिनश्रावक ये कष्टों में लगे है, वृथा है, पथ से दूर है, तत्व से वचित है ।

3. वेद, शास्त्र, पुराण सामान्य वेश्या के समान है । वही गणिका यदि शाकरी मुद्रा प्राप्त करले तो वह कुलवधू के समान है ।

4. योगमार्ग से परे मार्ग नहीं है । वेदों के भार से दबे विप्र महानीच हैं । घर-घर में पुस्तकों का भार है, पुर-पुर में पण्डितों के झुण्ड है, जङ्गल-जङ्गल में तपस्वियों की भीड है, न कर्म कर्ता है, न ब्रह्म ज्ञाता है ।

पुस्तको, ग्रन्थो से क्या मनुष्य ब्रह्म को पहचान सकता है। योग पुस्तको से नही आता।

अपनी साधना के प्रति योगियो मे कितना विश्वास था यह उक्त कथन से प्रकट होता है।

न पृथिव्या तिष्ठति नातरिक्षे,
नै तत समुद्रे सलिल विभर्ति।
न तारकासु नच विदुताम् श्रित,
नचाभ्रेषु दृश्यते रूपमस्य।[1] (सनत्सुजातीय)

जन्म से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। महानन्द ही पर शास्त्र है। जिन्हे यह शास्त्र ज्ञात है उन्हे मोक्ष साधन की क्या आवश्यकता।

यथाकाशस्तथा देह आकाशादपि निर्मल
सूक्ष्माति सूक्ष्मतरो देह स्थूलात्स्थूल जडाज्जड।[2] (योगबीज)

आकाश, आकाश तो कह लिया। किन्तु यह वेदान्त की तर्क कर्कशता नही। देह भी वैसे ही निर्मल होना चाहिए। यह खूब समन्वय हुआ।

गतेन शोकेन भयेन वीप्सा,
प्राप्तेन हर्षं न करोति योगी।
आनन्दपूर्णो निज बोध लीनो,
न बाधते कालपथो न नित्य।[3]

योगी को न दुख है न सुख।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि योगी केवल अपनी भावातीत अवस्था मे ही मग्न है।

नव्रतो न च तीर्थंच न वचारादि कर्मच
नैव मौन नवा सत्य क्षेत्रपीठस्य सेवन।
न पूजनच होमश्च न स्नान दानमेवच
धर्माधर्म न कर्तव्य न बधौ लौकिकाक्रिया।
न काम नैव कोपच नापि शून्य समाचरेत्
न माया नैव मोहच न शोक कलह तथा।[4]

---

1. पृथ्वी-अन्तरिक्ष में नही ठहरता। समुद्र की लहरों में नही दिखना। तारों और बिजलियों में नही है। न मेघों में है। उसका स्वरूप नहीं दीखना।

2 जैसा आकाश वैसी देह। आकाश से भी निर्मल, सूक्ष्म से सूक्ष्म, स्थूल से स्थूल, जड़ से जड।

3. शोक, भय, वीप्सा, प्राप्ति, हर्ष से परे योगी है। आनन्दपूर्ण, अपने बोध में लीन, अबाध—कालपथ से मुक्त, नित्य भी नही।

4. व्रत, तीर्थ, वचन, कर्म, पूजन, मौन, सत्य, क्षेत्रपीठ सेवन, होम, स्नानदान, धर्माधर्म, कर्तव्य, लौकिक क्रिया से परे—काम, माया आदि से दूर।

पाखण्ड का सशक्त शब्दो मे खण्डन किया गया है। यही वह स्वर है जिसे चार्वाक ने दैहिक बनाकर पूछा था। परवर्त्ती काल मे केवल आकाश से यह प्रश्न पूछा गया, किन्तु इस सधिकाल मे दोनो का सम्मेलन हो गया था।

रसेच रसायन च धातुवाद्तथैवच।
तृणवत् सत्यजेत् सर्वं यद्यत्प्राप्तमुपागतम्।[1]

यह नाथ सम्प्रदाय का स्वर गोरख मे एक प्रबल क्रान्ति बनकर उतर आया है, रस-रसायन धातु से आत्मा को क्या मिलता है।

क्रियाकर्म परित्यजेत सर्वज्ञान विवर्जित।
पुण्यापुण्यमय भृश किंचिदपि न चिन्तयेत।[2]

जब सामाजिक रूप ही नही रहा तब क्रिया-कर्महीन होने मे क्या हानि है।

सम शत्रौच मित्रेच समो लोष्टेच काचने।[3]

मित्र और शत्रु सब एक है, सम्पत्ति और असम्पत्ति जो दु ख के कारण है उन्हे हम बिलकुल नही चाहते।

निष्कल तिष्ठते ब्रह्म घृतकुम्भे जल यथा
समनिन्दा प्रशसाच सर्वत्रोपेक्ष सन्तत।[4]

घी के घडे मे पानी के समान रहना चाहिए, निन्दा और प्रशसा दोनो को समान समझना ही योगी का कर्त्तव्य है।

समदृष्टि प्रकुर्वीत यथात्मनि तथा परे,
अभावे भावसम्पन्न अभावगति चेतसा।[5]

समानता की यह दृष्टि ब्राह्मणवाद के विरुद्ध पुराना विद्रोह था। व्यक्तिवाद का पक्ष है—

उन्मनाय मन कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत्,
विवाद लोकगोष्ठीच कलह द्वन्द्व सग्रह।
शास्त्र गोष्ठी न कर्तव्या स्वभावेन कुभाषित,
मारणोच्चाटने नैव निर्वेदच मनस्तथा।

---

1. रस, रसायन, धातुवाद को तृण के समान त्याग दे। —गोरक्ष सहिता
2. क्रिया-कर्म छोड़ सर्व ज्ञान से विवर्जित, पुण्यापुण्य कुछ न सोचे।
3 शत्रु मित्र समान, कचन मिट्टी के ढेले के समान।
4. ब्रह्म निष्कल ऐसे है जैसे घी के घडे में पानी, समनिन्दा प्रशसा—सबकी निरन्तर उपेक्षा करे।
5. सम दृष्टि रखे, जैसे स्वय वैसे अन्य, अभावगति चित्त से अभाव में भाव-सम्पन्नता माने।

इन्द्रजालमिद सर्व बुद्धया कर्म तथा पर,
मन्त्रवाद त्यजेद्दूर भूतवेतालसाधन ।
गारूड विषम कर्म कामसाधनमेवच,
नकुर्यात् कूट कार्यादि काष्ठ पाषाण पूजन ।
नमुद्रा सेवन कुर्यात् क्षेत्र पीठेनदेवता,
षट्चक्रनाशावन्यत्र (?) महानन्द समाश्रयेत् ।
भेरी मृदग नादच श्रयमाणेन मुह्यति,
क्रीडारतिन्नसर्वत्र पर्वते न महीतले ।
सम्यकपर्यटनकुर्यात् क्षेत्रवास परित्यजेत,
नोछेद्येवृक्षशाखेच पत्राणि न च नाशयेत ।[1]

कृमि कीट पतग इत्यादि की भी जीव-हत्या नही करो । न जड उखाडो न पत्तो का उच्छेद ही ।

क्षुधा चिन्ता न कर्तव्या न तृष्णा नच वेदना,
देह चिन्ता न कर्तव्या स्वभाव नैव चिंतयेत् ।[2]

इस देह चिन्ता का अर्थ सामाजिक व्यवस्था मे समभी हुई अन्न-पानी जुगाड़नेवाली चिन्ता से है, जिसे योगी छोड चुका है । साधु और योगी जैसे समाज की भयानकता से व्याकुल हो उठे थे, वे उससे बिलकुल अलग हो जाना चाहते थे ।

अचिंता गुण सम्पूर्णमेकाकार परावरम्,
न विन्दन्ति न वा मूढा मोहजाल समावृता ।
स्वय कर्ता स्वय हर्ता अन्ये नियम वादिन,
बाह्य चिन्ता न कर्तव्या अन्तरापि न वाचरेत् ।
सर्वचिन्ता परित्यज्य अचिन्त्यम् चिन्तयेत् सदा,
बहुना किमि होक्तेन हृदि चितानिवेशयेत् ।
अनवस्थ मन कृत्वा सर्वावस्था विवर्जित,

---

1. मन को उन्मन करे, कुछ भी चिन्ता करना छोड दे, विवाद, लोक गोष्ठी, कलह, द्वन्द्व सग्रह, शास्त्रगोष्ठी, स्वभाव से ही कुभाषण, मारण, उच्चाटन, निर्वेद इत्यादि त्याग दे । इस सब को इन्द्रजाल समझे, मन्त्रवाद, भूत वेताल साधन न करे । गारुड, विषम कर्म, काम साधना, कूट कार्य, काठ-पत्थर पूजा, मुद्रा सेवन, क्षेत्रपीठ देवता उपासना, सब छोड़ दे, षट्चक्र भेदन के अतिरिक्त महानन्द कहाँ है । भेरी, मृदग, नाद सुनकर अन्त में व्यक्ति मुक्त हो जाता है, क्रीडा रति कहीं न करे, सम्यक पर्यटन करे, क्षेत्रवास छोड़ दे, वृक्षशाख इत्यादि नष्ट न करे ।

2. भूख-प्यास की चिन्ता, तृष्णा, वेदना, देहचिन्ता, स्वभाव से अचिन्त, छोड, न करे ।

दृष्टि चिन्ता न कर्तव्या स्नान दान तथैवच ।

× × ×

उन्मनाय मन कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ।

× × ×

सर्वावस्था विनिर्मुक्त सर्वस्वाद विवर्जित
स्वभावत तिष्ठते योगी विमुक्तो नात्र सशय ।

× × ×

अहमेव पर ब्रह्म भावाभाव विवर्जित,
सच्चिदानन्दरूपोऽहमात्मान चिन्तयेत् सदा ।[1]

ससार दुखी है, वह पाप से ढका है, यहाँ लोग ऊँच-नीच मानते हैं। किन्तु प्रबल व्यक्ति इस सबको सहन नही कर सकता । वह सच्चिदानन्द रूप भाव और भाव से विवर्जित है।

फिर वह परमात्मा हो चुकनेवाला योगी तो—

निरजनः अतीत उत्पत्तिस्थिति कारणम ।[2]

यही तो उसकी इच्छा है । वह अवस्था प्राप्ति क्या सरल है ।

दुर्लभा सहजावस्था सदगुरो करुणाविना ।[3]

गुरू मिलना चाहिए । उसके बिना यह पथ कैसे कटेगा ।

हृदय दर्पण यस्य मनस्तत्र विलोकयेत् ।[4]

हृदय को दर्पण होना चाहिए । वही सब कुछ दिखाई दे सकता है ।

भिन्न-भिन्न न पश्यामि तस्याह पचमाश्रम ।[5]

---

1 अचिन्ता गुण से पूर्ण, पर और अवर को एकाकार मानकर, स्वय को कर्ता और हर्ता समझना चाहिए । न अपनी चिन्ता करे न अन्यों की । केवल अचिन्त्य की चिन्ता करे । बहुत क्या कहे, हृदय में चिन्ता करे । मन को अनवस्थ करके सर्वावस्था छोड़कर दृष्टि चिन्ता न करे, न स्नान-दान इत्यादि ।

× × ×

मन उन्मन करके कुछ चिन्ता न करे ।

× × ×

सब अवस्था से मुक्त, सब स्वादों से दूर, स्वभाव से ही योगी मुक्त रहता है, सशय नहीं है ।

× × ×

मैं ही ब्रह्म हूँ, भाव-अभाव से विवर्जित, सच्चिदानन्द रूप हूँ, आत्मन् की सदा चिंता करे ।

2. निरंजन, अतीत, उत्पति और स्थिति का कारण ।

3 सदगुरु करुणा बिना सहजावस्था दुर्लभ है ।

4. हृदय जिसका दर्पण है मन को उसी में देखे ।

5. भिन्न-भिन्न करके नही देखता तभी पाँचवाँ आश्रम हूँ ।

योगी किसी को असम दृष्टि से नही देखता। इसलिए वह अलग है, सबसे अलग, पाँचवाँ आश्रम।

भावाभाव विनिर्मुक्तमन्तराल तदुच्यते
साकारश्च निराकार नेती नेतीति सर्वथा
भेदाभेद विनिर्मुक्त वर्तते केवल शिव।[1]

न वह साकार है न वह निराकार। वह भेद और अभेद नही जानता। वह विनिर्मुक्त है। केवल शिव है। ससार की जटिल व्यवस्था मे अपने लिए समानता ढूँढता है।

अद्वैतरूपमखिल हि कथ वदामि
नित्य अनित्यमखिल हि कथ वदामि
सत्यमसत्यमखिल च कथ वदामि
ज्ञानामृत समरस गगनोपमोऽहम्।
ब्रह्मादय सुरगण कथमत्रसन्ति
स्वर्गादयो वसतय कथमत्रसन्ति
यथेकरूपमखिल परमार्थतत्त्व
ज्ञानामृत समरस गगनोपमोऽहम्।
माया प्रपच रचना न च मे विकार
कौटिल्य दभ रचना न च मे विकार
सत्यानृतेति रचना न च मे विकारः
ज्ञानामृत समरस गगनोपमोऽहम्।[2]

मै किसे क्या कहूँ, यही तो प्रश्न है। कहाँ रहते है देवता! कहाँ है वह स्वर्ग जिसे ससार मे लोग खोजते फिरते है। शकर ने कहा था—

सर्व पश्यात्मन्यात्मान सर्वत्रोत्सृज भेद ज्ञान।[3]

और अब योगी कहता है—मैं ज्ञानामृत हूँ। मैं समरस हूँ। मैं गगन के समान हूँ, मैं आकाश के समान हूँ, पृथ्वी तत्त्व के विजेता ने विभोर होकर

---

1. जो भावाभाव से मुक्त है वह अन्तराल—नभोरम है। न साकार है, न निराकार, भेद और अभेद से मुक्त केवल शिव है।

2. कपिल गीता—अद्वैत रूप कैसे कहूँ, और नित्य अनित्य वह अखिल को उपाधि कैसे दूँ। सत्य, असत्य भी नही कह सकता। मै तो आकाश के समान ज्ञान का अमृत समरस हूँ।

ब्रह्मा आदि देवता कहा है। स्वर्ग आदि कहा बसते है। जो एक रूप अखिल है वही परमार्थ तत्त्व है। मै तो आकाश

माया प्रपञ्च की रचना, कौटिल्य दभ रचना, सत्य और अनृत रचना मेरे विकार नही है। मैं तो आकाश ..

3 सबको समान अपने जैसा देखे। भेद ज्ञान सब जगह छोड दे।

शताब्दियो की सस्कृति की धारा से मोती चुनकर निकाला है कि वह—

न शून्य रूप न विशून्य रूपं
न शुद्ध रूप न विशुद्ध रूप
रूप विरूप न भवामि किंचित्
स्वरूप रूप परमार्थ तत्त्व ।[1]

कुछ नही केवल स्वरूप रूप है, परमार्थ तत्त्व है। वह और कुछ नही है।

वेदा न लोका न सुरा न यज्ञा
वर्णाश्रमौ नो न कुल न जाति
न धूप मार्गो न च दीप्ति मार्गो
ब्रह्मैव रूप परमार्थ तत्त्व ।
नावाहन नैव विसर्जनच
पत्राणि पुष्पाणि कथ भवन्ति
ध्यानानि मन्त्राश्च कथ भवन्ति
सम सम सर्व शिवार्चन च।
मूर्खोऽपि नाह न च पडितोऽह
मौन च वार्ता न च मे कदाचित्
वितर्क तर्कच कथ वदामि
स्वरूप निर्वाणमनामयोऽहम ।
अस्त गतो नैव सदोदितोऽह
तमश्च तेजो न च मे विभाति
सध्यादिक कर्म कथ करोमि
स्वरूप निर्वाणमनामयोऽह ।[2]

---

1. गोरक्ष सिद्धान्त सग्रह ।

न शून्यरूप, न विशून्यरूप, शुद्ध रूप इत्यादि कुछ नही। केवल परमार्थ तत्त्व, स्वरूप में ही रूप ।

2. वेद, लोक, देवता, यज्ञ, वर्णाश्रम, कुल जाति मेरे नही है । न मैं धूममार्गी हूँ, न दीप्तिमार्गी। मैं तो परमार्थ तत्त्व ब्रह्म का ही रूप हूँ।

न आवाहन, न विसर्जन, फलफूल से क्या होता है। ध्यान मन्त्र से भी क्या। सब समान शिवार्चन में एक है।

न मूर्ख हूँ, न पण्डित, न बोलता हूँ, न मौन हूँ। तर्क-वितर्कसे मुझे क्या मैं तो निर्वाण-स्वरूप अनामय हूँ।

अस्त नही होता हूँ, सदा उदित हूँ। मुझे आलोक और अन्धकार नही लगते। मैं सन्ध्यादिक कर्म क्या करूँ, मैं तो निर्वाण…

कुल, जाति और पूजा इत्यादि सब व्यर्थ हैं, जो स्वय निर्वाण है, जिसके लिए उदय और अस्त का भेद समाप्त हो चुका है वह धर्म के नाम पर मूर्ख और पण्डित बनने का दिखावा करेगा ?

शिव न जानामि कथ वदामि,
शिव च जानामि कथ वदामि,
अह शिवश्चेत परमार्थ रूप,
स्वच्छ स्वभाव गगनोपम च ।[1]

योगी कहता है विवादी के अनुसार वह शिव पर तर्क नही करना चाहता। जो जानता है वह स्वयमनुभूति है। उसे ग्रथो मे नही बाँधा जा सकता, वह साक्षात् शिव है, उसका स्वभाव बिलकुल घुल चुका है, वह एकदम गगन के समान है।

न तर्क शब्द विज्ञानात् न वराद्वेद पाठनात्,
स्वस्थो योगी स्वय कर्ता लीलया चाजरामर ।[2]

सर्व दर्शनाना स्वरूप दर्शनेन समन्वय करोति, सोऽवधूत योगी स्यात ।
(गो० सि० स०)

तभी सब दर्शनो का स्वरूप दर्शन करके जो समन्वय करता है, वही अवधूत है, वही योगी है।

ऊपर हमने देखा प्रहार बहुत प्रबल है। गोरक्ष के नाम से जो ग्रथ कहे जाते हैं, मेरा विचार है, वे उनके सिद्धान्तो के बाद मे किये हुए सग्रह हैं। प्राप्त ग्रथो मे अधिकाश भाग परवर्त्ती है, यद्यपि वह उनके मत और विचारों का अत्यन्त सान्निध्य और समीप से देखा हुआ रूप है। यह प्रश्न इसलिए उठता है क्योकि गोरक्षनाथ के जीवन का एक और महत्त्वपूर्ण रूप था।

गोरखपंथ

समस्त धर्मो का समन्वय करने का यह गोरक्षनाथ का एक अद्भुत तरीका था। जैसे शक्ति मे 36 तत्त्व निहित होते हैं, वैसे ही वे सबको कवलीकृत करके बैठ गए। आखिर उसका परिणाम क्या हो सकता था, देह मे इतने चक्र, देवता, ब्रह्माड धर लिये गए, अभी तक जो कुछ बाहर अज्ञात का भय, दूर से देखने पर बर्बरता-सा दिखाई दे रहा था, वह सब अब शरीर के भीतर आ गया, शरीर इतना सब अपने भीतर समेट बैठा कि वह स्वय दुरूह,

1. शिव नहीं जानता, जानता हूँ, दोनों ही पर क्या कहूँ। मै परमार्थ रूप शिव हूँ, गगनोपम स्वच्छ स्वभाव हूँ।

2. न तर्क शब्द के विज्ञान से, न श्रेष्ठ वेदपाठ से। स्वस्थ योगी स्वय कर्ता है, लीला से ही अजर और अमर है।

रहस्यमय और भारी हो गया। गोरक्षनाथ मे ऊपर हमने देखा कि वे कहाँ से चले और कहाँ उन्होने अपनी बात को समाप्त किया, किन्तु अभी उन्होने योगी और दार्शनिक रूप ही दिखाया है, यदि इतनी ही बात होती तो उनका इतना जबर्दस्त प्रभाव पडना असम्भव था। यह एक आश्चर्यजनक बात प्रतीत होती है कि गोरक्ष के ऐसे सिद्धान्त थे, किन्तु उनका कार्य काफी सासारिक भी था।

ब्रिग्स ने परम्पराओ को एकत्र करते समय इस ओर कुछ विशेष इगित नही किया किन्तु 'नाथ सम्प्रदाय' मे हजारीप्रसाद ने कुछ महत्त्वपूर्ण बातो को प्रकाश मे लाकर दिखाया है। योगी सम्प्रदायाविष्कृति से इस विषय को अधिक दृढता ही मिलती है। पडितजी ने केवल वाममार्गियो मे गोरक्षनाथ के जाकर मिलने की बात लिखी है, तनिक और गहराई से देखा जाए तो नाथ-परम्परागत वार्ता मे ऐसे और भी उद्धरण मिलेंगे। गोरक्षनाथ का दिगम्बरो मे जाना और ऐसे अनेक स्थल जहाँ उनके पूर्ववर्त्तियो से उनका युद्ध होता है, वे सब ही किसी-न-किसी बात की ओर अधिकाश मे कुछ-न-कुछ इगित करते है। काली से गोरक्षनाथ के युद्ध से ही काली की नाथपथियो मे उपासना का आरम्भ हुआ, ऐसा स्पष्ट है। यह पडितजी ने विद्वत्तापूर्वक दिखाया है।

ब्रिग्स के आधार पर यहाँ हम उनके विषय मे प्रचलित पथो पर प्रकाश डालते है।

टिली गोरक्षनाथियो का एक पवित्र स्थान है। वहाँ यह प्रवाद प्रचलित है कि पहले शिव के 18 और गोरखनाथ के 12 पथ थे, दोनो मे युद्ध हुआ जिसके परिणामस्वरूप, शिव के 12 और गोरखनाथ के 6 सम्प्रदाय विनष्ट हो गए और जो अब 12 शेष रहे, वे कनफटा या गोरखनाथी कहलाये। जो शिव द्वारा प्रवर्तित मत थे वे यह हैं—

(1) कच्छ मे भुज के कठरनाथ, (2) पेशावर और रोहतक के पागल-नाथ, (3) अफगानिस्तान के रावल, (4) पख, (5) मारवाड के बन तथा (6) गोपाल अथवा रामके।

गोरखनाथ के जो सम्प्रदाय अवशिष्ट रहे वे निम्नलिखित है—

(1) हेठनाथ, (2) देवी विमला (बम्बई) के आई पथ के कोलोनाथ, (3) चाँदनाथ कपलानी, (4) वैराग, रतधोध मारवाड, रतननाथ, (5) पादनाथ, जयपुर के, जिनके हुए जालधरपा, कानीपाव और गोपीचन्द, (6) धजनाथ (महावीर) इस सम्प्रदाय के अनुयायी सब विदेशी है।

यहाँ यह देखना आवश्यक है कि इन 18 और 12 पथो का क्या मतलब है। गोरक्षनाथ के अनुयायी योगियो के लिए ससारी भार ढोने की कोई

श्रावश्यकता नही थी।[1] श्रत योगमार्ग उनके समीप खिचे होगे। एक किंवदन्ती के श्रनुसार स्वय गोरक्षनाथ ने 12 पथो का प्रवर्तन किया। जिनमे 6 उनके श्रौर 6 शिव के थे, ब्रिग्स श्रौर हजारीप्रसाद ने विस्तार से इस विषय पर विचार किया है।

हजारीप्रसाद का मत है कि गोरखनाथ ने योगमार्ग से प्रभावित विभिन्न सम्प्रदायो को श्रपनी श्रोर खीच लिया। जो बिलकुल ही उनके साथ नही श्राये उन्हे उन्होने त्याग दिया। इस श्रनुमान मे एक बहुत बडा सत्य होते हुए भी यह पहले से सोच लिया गया है कि इस्लाम से बचने की ही प्रवृत्ति ने यह सब प्रेरित किया।

मेरा श्रनुमान उक्त पहली किंवदन्ती की श्रोर श्रधिक श्राश्रय पाता है कि गोरक्षनाथ ने यद्यपि प्रारम्भ मे मत-प्रवर्तन श्रवश्य किया श्रौर उन्होने श्रात्म-सात् करने की प्रवृत्ति भी दिखाई, किन्तु यह जो एक प्रबल सगठन हुश्रा यह मुसलमानो के श्राने के बाद की वस्तु है, श्रर्थात् उस समय की जब योगियो को भी ब्राह्मण धर्म से सामजस्य स्थापित करने की श्रावश्यकता का श्रनुभव होने लगा था। स्वय गोरक्षनाथ के समय मे तो इस्लाम को खतरे के रूप में शायद ही लिया जाता था, उलटे उस समय उनके प्रभाव को इस्लाम श्रासानी से हटा भी नही पाया। योगी तो शरीर के भीतर बैठा था। ब्राह्मण धर्म क्रिया-कर्म त्याग से जा सकता था, योगी प्रभाव कैसे चला जाता ?

तब यो कहा जा सकता है कि गोरक्षनाथ ने श्रपने से पहले के शैव सम्प्रदायो को परिमार्जित श्रौर शुद्ध किया। यह तो उनके गुरु-उद्धार से ही प्रकट है। रही बौद्ध, जैन तथा श्रन्य सम्प्रदायो की बात, तो वह इसके लिए मात्र एक ऐसी भूमि बना गए थे जो सबके लिए एक श्राम जगह बन सकती थी। सब श्रपने-श्रपने भेद छोडकर छोटे-मोटे भेदो को लिये उस पर श्राकर खडे होने लगे। इस्लाम ने इसे श्रधिक गति दे दी श्रौर वे सब सम्प्रदाय गोरखनाथ के नाम को श्रपना प्रवर्तक मानने लगे।

दीनोधर धर्मशाला पर नाथपथियो मे हनुमान श्रौर रामचन्द्र के चित्र स्वीकृत है। टिला मे भी वैष्णवमत माना गया है। पुरी मे गरुड़ है। हनुमान टीका लगाने मे तथा रुद्राक्ष के दस मनको मे विष्णु के दस श्रवतार स्वीकृत हैं। पश्चिमी भारत के श्रनेक वैष्णव भक्त गोरक्षनाथ से श्रपना प्रवर्तन मानते

---

1 वैराग्यामृत पल्लवेन सलिल कन्द फल मूलक
भुक्त्वा यो वनवास एव रमते चाऽनेक देशान्तरे
स्थित्वा सादित निश्चयेन मनसा रात्रौ दिने वीक्ष्यते
स त्यक्त्वाखिलभावमेकममल प्राप्नोत्यहो स्वं पद। —सिद्धसिद्धान्त सग्रह

है। गोरखपुर की समाधियो पर वैष्णव मूर्ति और चिह्नो के इगित है, बौद्ध प्रभाव तो स्पष्ट ही है, स्वय गोरक्षनाथ सहजयानी सिद्धो मे परिगणित है। बगाल की धर्म पूजा करनेवाले धर्म सम्प्रदाय का इन योगियो से सम्बन्ध है। यह धर्म पूजा बौद्धो के त्रिरत्न मे से धर्म-मात्र की पूजा का अवशिष्ट है।

इसके अतिरिक्त सुकुमार सेन ने बगाल की बहुला (विपुला), लखिन्दर (लक्ष्मीधर) तथा देवी नेता (नित्या या नेत्रा) का भी गोरखबानी (पृ० 151) के—

चाँद गोटा षूटा करले सूरिज करलै पाटी
अहनिसि धोबी धोबे त्रिवेणी की घाटी।

से सम्बध जोडा है।

इस प्रकार हम देखते है कि नाथ सम्प्रदाय का विस्तार कितना अधिक है। आगे इसके स्थान, परवर्त्ती प्रभाव तथा ऐसे विषयो पर विचार करते समय, हम इन्हे देखेगे। यहाँ यह कहना काफी है कि नाथ सम्प्रदाय गोरक्षनाथ के बाद जिस वेग से फैला वह अपने योगी के जीवन काल तथा उनसे पहले की सब परम्पराओ को आत्मसात् कर गया।

सिद्धि

अभी तक हमने जो कुछ देखा उससे यही ज्ञात होता है कि गोरक्ष के बाद नाथ सम्प्रदाय बिलकुल शुद्ध और पवित्र हो गया। यह धारणा बना लेना ठीक नही है।

योगियो मे सिद्धि का मोह कालान्तर मे भी बना रहा। राजपूताना के एक प्राचीन ग्राम मे अभी तक जो किवदन्तियाँ प्राप्त है उनसे यही इगित होता है कि मध्ययुग के उत्तर काल मे अर्थात् मुसलमानी शासन काल मे भी रसेश्वर सम्प्रदाय का सम्बन्ध मुख्यत इन योगियो के साथ ही जोडा जाता है।

इस सिद्धि के प्रयोग को कबीर ने हेय समझा है। उनका कहना था कि सिद्धि प्राप्त कर लेना ही सबसे बडी बात नही है। क्योकि वह तो काल की अवधि को बाँध देना है। पुण्य क्षय होने पर सिद्धि का भी क्षय हो सकता है।

दूसरे, स्त्री का साधना मे प्रयोग। नाथ सम्प्रदाय मे ब्रिग्स ने उन स्थानो का उल्लेख किया है जहाँ यह साधना चलती आई है और उसे छिपाया जाता रहा है।

तीसरे वज्रोली आदि की क्रियाओ का भी साकेतिक रूप मे वर्णन मिलता है। इस प्रकार के वर्णन से यह ही नही समझ लेना चाहिए जैसाकि एक श्लोक से हजारीप्रसाद जी ने किया है, कि वज्रोली साधना अवश्य रही होगी। वुडराफ ने ऐसा ही एक उदाहरण देकर[1] समझाया है कि उसका

1 मातृयोनौ क्षिपेत् लिंग भगिन्यां स्तन मर्दनौ इत्यादि।

वास्तविक अर्थ कुछ और ही है। सम्भवत साधना मे रत लोग उस श्लोक का भी कुछ और अर्थ लगाएँ, यद्यपि प्रकट रूप से देखने पर हजारीप्रसाद जी का अनुमान दृढतर ही होता है।

गोरक्षनाथ रसायन विद्या के भी आविष्कारक माने जाते थे। हजारीप्रसाद के अनुसार सिद्धो का यह रसायन रसेश्वर इत्यादि तत्त्व भी नाथ सम्प्रदाय मे ही अन्तर्भुक्त हो गया। मुझे लगता है यह सब गोरक्षनाथ के बाद की बात है। हम अभी ऊपर देख चुके है कि रस, रसायन आदि का भी गोरक्षसिद्धान्तो मे विरोध किया गया है। यहाँ हमे एक बात याद रखनी चाहिए।

गोरक्ष के व्यक्तित्व की महानता को पहचानना चाहिए। इस विषय मे कुछ भी नही कहा जा सकता कि वे स्वय किसे कुलीन विचार समझते थे और किसे अधविश्वास। जिसे वह चरम उत्कर्ष समझते थे वह तो सहज समाधि थी, ऊँची और भव्य अवस्था थी। किन्तु उसके बीच मे बहुत कुछ गडबडी थी। शरीर का चक्र, नाडी और रहस्य तो सरल नही कहा जा सकता।

तब इस अद्भुत गोरक्षनाथ के महत्त्व को समझ लेना उतना ही कठिन है जितना भारतीय सस्कृति को। ऊँचे-से-ऊँचा विचार और नीचे-से-नीचे ढग का अर्थ बर्बर-सा विश्वास सभी इस व्यक्ति के पीछे लगे घूमते है। तभी तो इसे न समझकर लोग 'गोरखधन्धा' कहते हैं।

मेरा अपना अनुमान है कि ब्राह्मण तथा ज्ञानी गोरखनाथ मे राजयोग-वाली महानता थी। ब्राह्मण सुनकर ब्राह्मणवाद की कल्पना करके चौंकने की आवश्यक्ता नही है। मेरा मतलब विचारो की भव्य कौलीनता से है। वह गोरक्षनाथ मे थी। तभी वह सब-कुछ भेदकर, सारे चक्रो और व्यूहों, और बाधाओ को भेदकर ऊपर निकलकर स्थित हो गए। वहाँ, जहाँ शिव अपने शिव रूप मे मुख्य रहते है। इनके इस कार्य का इतना विराट् प्रभाव पडा कि सब इनकी ओर आकर्षित हुए। इस्लाम ने इसमे सबकी सहायता की। जो नही आये वे भारतीय सस्कृति को त्याग बैठे।

स्पष्ट है कि गोरख पन्थ ब्राह्मण धर्म तथा व्यवस्था के बाहर स्थित सम्प्रदायो का वैसा ही विराट् सम्मेलन है जैसाकि विभिन्न मतान्तरो का सम्मेलन हिन्दू धर्म है। गोरख पन्थ भारतीय इतिहास की वह प्रबल धारा है जिसने अनादि काल से बिखरे विश्वासो को लाकर एक मे जोड़ दिया, और यह महान् धारा आप्लावित होकर भारतवर्ष मे अखण्ड रूप से दो शताब्दियो तक बहती रही और बाद मे इधर-उधर अन्तर्भुक्त होती हुई अपनी क्षीण अवस्था में अमिट-सी शेष रह गई।

हैं। गोरखपुर की समाधियो पर वैष्णव मूर्ति और चिह्नो के इगित है, बौद्ध प्रभाव तो स्पष्ट ही है, स्वय गोरक्षनाथ सहजयानी सिद्धो मे परिगणित है। बगाल की धर्म पूजा करनेवाले धर्म सम्प्रदाय का इन योगियो से सम्बन्ध है। यह धर्म पूजा बौद्धो के त्रिरत्न मे से धर्म-मात्र की पूजा का अवशिष्ट है।

इसके अतिरिक्त सुकुमार सेन ने बगाल की बहुला (विपुला), लखिन्दर (लक्ष्मीधर) तथा देवी नेता (नित्या या नेत्रा) का भी गोरखबानी (पृ० 151) के—

चाँद गोटा षूटा करले सूरिज करलै पाटी
अहनिसि धोबी धोबे त्रिवेणी की घाटी।

से सम्बध जोडा है।

इस प्रकार हम देखते है कि नाथ सम्प्रदाय का विस्तार कितना अधिक है। आगे इसके स्थान, परवर्त्ती प्रभाव तथा ऐसे विषयो पर विचार करते समय, हम इन्हे देखेगे। यहाँ यह कहना काफी है कि नाथ सम्प्रदाय गोरक्षनाथ के बाद जिस वेग से फैला वह अपने योगी के जीवन काल तथा उनसे पहले की सब परम्पराओ को आत्मसात् कर गया।

सिद्धि

अभी तक हमने जो कुछ देखा उससे यही ज्ञात होता है कि गोरक्ष के बाद नाथ सम्प्रदाय बिलकुल शुद्ध और पवित्र हो गया। यह धारणा बना लेना ठीक नही है।

योगियो मे सिद्धि का मोह कालान्तर मे भी बना रहा। राजपूताना के एक प्राचीन ग्राम में अभी तक जो किंवदन्तियाँ प्राप्त है उनसे यही इगित होता है कि मध्ययुग के उत्तर काल मे अर्थात् मुसलमानी शासन काल मे भी रसेश्वर सम्प्रदाय का सम्बन्ध मुख्यत इन योगियो के साथ ही जोडा जाता है।

इस सिद्धि के प्रयोग को कबीर ने हेय समझा है। उनका कहना था कि सिद्धि प्राप्त कर लेना ही सबसे बडी बात नही है। क्योकि वह तो काल की अवधि को बाँध देना है। पुण्य क्षय होने पर सिद्धि का भी क्षय हो सकता है।

दूसरे, स्त्री का साधना मे प्रयोग। नाथ सम्प्रदाय में ब्रिग्स ने उन स्थानो का उल्लेख किया है जहाँ यह साधना चलती आई है और उसे छिपाया जाता रहा है।

तीसरे वज्रोली आदि की क्रियाओ का भी साकेतिक रूप मे वर्णन मिलता है। इस प्रकार के वर्णन से यह ही नही समझ लेना चाहिए जैसाकि एक श्लोक से हजारीप्रसाद जी ने किया है, कि वज्रोली साधना अवश्य रही होगी। वुडराफ ने ऐसा ही एक उदाहरण देकर[1] समझाया है कि उसका

1. मातृयोनौ क्षिपेत् लिंग भगिन्या स्तन मर्दनौ इत्यादि।

वास्तविक अर्थ कुछ और ही है। सम्भवत साधना मे रत लोग उस श्लोक का भी कुछ और अर्थ लगाएँ, यद्यपि प्रकट रूप से देखने पर हजारीप्रसाद जी का अनुमान दृढतर ही होता है।

गोरक्षनाथ रसायन विद्या के भी आविष्कारक माने जाते थे। हजारीप्रसाद के अनुसार सिद्धो का यह रसायन रसेश्वर इत्यादि तत्त्व भी नाथ सम्प्रदाय मे ही अन्तर्भुक्त हो गया। मुझे लगता है यह सब गोरक्षनाथ के बाद की बात है। हम अभी ऊपर देख चुके हैं कि रस, रसायन आदि का भी गोरक्षसिद्धान्तों मे विरोध किया गया है। यहाँ हमे एक बात याद रखनी चाहिए।

गोरक्ष के व्यक्तित्व की महानता को पहचानना चाहिए। इस विषय मे कुछ भी नही कहा जा सकता कि वे स्वय किसे कुलीन विचार समझते थे और किसे अधविश्वास। जिसे वह चरम उत्कर्ष समझते थे वह तो सहज समाधि थी, ऊँची और भव्य अवस्था थी। किन्तु उसके बीच मे बहुत कुछ गडबडी थी। शरीर का चक्र, नाडी और रहस्य तो सरल नही कहा जा सकता।

तब इस अद्भुत गोरक्षनाथ के महत्त्व को समझ लेना उतना ही कठिन है जितना भारतीय सस्कृति को। ऊँचे-से-ऊँचा विचार और नीचे-से-नीचे ढग का अर्थ बर्बर-सा विश्वास सभी इस व्यक्ति के पीछे लगे घूमने है। तभी तो इसे न समझकर लोग 'गोरखधन्धा' कहते हैं।

मेरा अपना अनुमान है कि ब्राह्मण तथा ज्ञानी गोरखनाथ मे राजयोग-वाली महानता थी। ब्राह्मण सुनकर ब्राह्मणवाद की कल्पना करके चौकने की आवश्यक्ता नही है। मेरा मतलब विचारो की भव्य कौलीनता से है। वह गोरक्षनाथ मे थी। तभी वह सब-कुछ भेदकर, सारे चक्रो और व्यूहो, और बाधाओ को भेदकर ऊपर निकलकर स्थित हो गए। वहाँ, जहाँ शिव अपने शिव रूप मे मुख्य रहते है। इनके इस कार्य का इतना विराट् प्रभाव पडा कि सब इनकी ओर आकर्षित हुए। इस्लाम ने इसमे सबकी सहायता की। जो नही आये वे भारतीय सस्कृति को त्याग बैठे।

स्पष्ट है कि गोरख पन्थ ब्राह्मण धर्म तथा व्यवस्था के बाहर स्थित सम्प्रदायो का वैसा ही विराट् सम्मेलन है जैसाकि विभिन्न मतान्तरो का सम्मेलन हिन्दू धर्म है। गोरख पन्थ भारतीय इतिहास की वह प्रबल धारा है जिसने अनादि काल से बिखरे विश्वासो को लाकर एक मे जोड दिया, और यह महान् धारा आप्लावित होकर भारतवर्ष मे अखण्ड रूप से दो शताब्दियो तक बहती रही और बाद मे इधर-उधर अन्तर्भुक्त होती हुई अपनी क्षीण अवस्था में अमिट-सी शेष रह गई।

रामानुज विशिष्टाद्वैतवाद*

रामानुज का जन्म 1016 ई० मे मद्रास प्रान्त मे तिरूपथी या परूबुर मे हुआ था। तिरूपथी तातवशीय ब्राह्मणो के आराध्य श्रीनिवास का प्राचीन निवास-स्थान था। पहले सभी उच्च ब्राह्मण वडमाल कहलाते थे। अयङ्गार वर्ग रामानुज का ही उत्पाद्य था। अयङ्गारो मे सास का बहू के हाथ से खाना नही खाना इसी बात का द्योतक बताया जाता है कि 'वडयवर' अर्थात् रामानुज ने अनेक बौद्धो इत्यादि को श्रीवैष्णव धर्म मे स्वीकृत किया था जिसके फलस्वरूप वश की शुद्धि मे थोडा-सा नया तत्त्व आ मिला था।

हारीत वश मे उत्पन्न द्रविड ब्राह्मण केशव उनके पिता का नाम था तथा माता का कान्तिमती। पहले वे यादवप्रकाश, कान्जीवरम मे शकर के अनुयायी, के शिष्य थे। किन्तु वे गुरु से असहमत हुए, जिससे उन्हे पाठ छोडना पडा। श्रीरगम के यामुनामुनि ने उन्हे अपने यहाँ बुला लिया। रामानुज वही पढकर बडे हुए। उन्होने वेदान्त सग्रह, बादरायण के वेदान्त सूत्र तथा भगवद्गीता के भाष्य की रचना की। सन्यास लेकर वे परिव्राजक हो गए, और उन्होने अनेक स्थानो पर शास्त्रार्थ किया। चोल राजा कुलोत्तुग प्रथम (1005) ने उन्हे वैष्णव से शैव बनाना चाहा, तब वे होयसल राजाओ की शरण मे आकर बचे। बल्लालदेव के भाई त्रिट्ठलदेव को उन्होने दीक्षित किया। 1137 ई० मे श्रीरगम् मे उनका देहान्त हो गया। किंवदन्तियो से यह प्रकट होता है कि उनकी भक्ति के ही कारण चमारो को कुछ मुक्ति मिली थी। मैसूर से 22 मील दूर मैलुकोटे (तामिल मे तिरुनारायणपुरम्) नामक स्थान के तिरुनारायण के मन्दिर से उत्सव मूर्ति शल्वपिल्लैई को एक 'दिल्ली बादशाह' उठा ले गया। रामानुज बादशाह की लडकी से उसे माँगने गए। लडकी ने कहा—स्वय बुला ले। ब्राह्मण की भक्ति से मूर्ति आ गई, वे उसे गोद मे लेकर भागे। मुसलमानो के पीछा करने पर चमारो की बस्ती मे घुस गए। उस समय यह असम्भव बात थी। मुसलमानो ने उन्हे वहाँ नही ढूँढा। रामानुज मेलुकोटै आ गए। अब भी ब्राह्मोत्सव मे वैरमुडी के दिन चमार ध्वजस्तम्भ तक जाकर प्रसाद पाते है। प्रसाद का चावल व तेल चमार पहले स्वय दे जाते हैं। कल्याणी पुष्करिणी मे वे स्नान भी कर सकते है।

किंवदन्ती इस्लाम के विरुद्ध हिंदुओ के नये मोर्चे की ओर इगित करती है।

भक्तिवाद भारत में रामानुज से ही प्रवर्तित नही हुआ था। उसके बीज अत्यन्त प्राचीन थे। दक्षिण मे शैव भक्तो का काल आलवारो के पहले का

*विशिष्ट अध्ययन के लिए देखिए 1 द टीचिग्न आफ वेदान्त अकार्डिंग टू रामानुज, सुखतानकर। 2. फिलासफी आफ लव—(नारद के भक्ति सूत्र), पोदार। 3 इण्ट्रोडक्शन टू विशिष्टाद्वैत वेदान्त फिलासफी, वि० दि० मा ,र।

मिलता है। अत देवर्षि नारद जैसे पौराणिक पात्रो के साथ जिस मार्ग को जोडा जाता है वह अवश्य ही एक महत्त्वपूर्ण रूप से स्वीकृत प्राचीन धारा थी। यह भक्तिधारा शैव और वैष्णव रूप लेकर दक्षिण से क्यो चली, या चैतन्य की एक भक्तिधारा पूर्व से क्यो बही—यह दोनो प्रश्न विचारणीय हैं। चैतन्य धारा की ओर ऊपर इगित किया जा चुका है कि वह महायान का ही सहजयान मे आकर परिवर्तित स्वरूप था जिसने दक्षिण के भक्तिमार्ग को उत्तर मे फैलने के लिए जगह बना ली थी। इसी के एक स्वरूप मे कबीर थे।

यहाँ एक बात और अजीब-सी लगती है। उत्तर मे इस्लाम पहले फकीर और बाद मे सामती बनकर आया। फकीर प्रेम से व्याकुल हुए। योग ने भी उन पर प्रभाव डाला। किन्तु दक्षिण मे सर्व प्रथम आने पर व्यापारी इस्लाम ने हिन्दुओं का मत परिवर्तन कराने का काम तो किया किन्तु उसने ऐसा कोई विशेष कार्य नही दिखाया जो सूफी मत की भाँति भारतीय विचारधारा मे आप्लावित हो उठता। इसका कारण यह ही है कि व्यापारी दक्षिण मे अपनी कट्टरता लेकर आया था। उनमे अधिकाश अरब थे। उत्तर मे इरानी अर्थात् फारसवासी आये थे। जिनका भारत से बहुत प्राचीन सम्बन्ध था।

नारद के अनुसार परमात्मा को सब कुछ अर्पित कर देना ही भक्ति है। यही शाण्डिल्य का भी मत है। उन्हे गर्ग के मत से यही सार प्राप्त हुआ है।

दक्षिण से भागवत धर्म के पुनरुत्थान की इस पृष्ठभूमि को सामने रखकर रामानुज को देखना चाहिए। वेदान्त की नीरसता को उन्होने स्वीकार नहीं किया। भारतीय सस्कृति अपने हृदय के नीरस अन्तर्दाह से व्याकुल अपनी योगनिद्रा तोडकर एकबारगी मनुष्य को ही मनुष्य के रूप मे नही ईश्वर को भी मनुष्य के रूप मे देखना चाहती थी।

रामानुज ने शूद्रो के लिए गोपुर के शिखर पर चढकर गुरुमत्र सुनाया जिसको सुनकर ब्राह्मणवाद मे खलबली मच गई। आगे आप के सम्प्रदाय के प्रपत्तिविषयक दो भेद हो गए—तैगलई और बढगलइ। दोनो मे विवाह आदि होते हैं। यहाँ उनके दर्शन को देखने के पहले एक और सार्थक दतकथा पर विचार कर लेना उचित है।

रामानुज ने पुरी के मन्दिर मे उच्छिष्ठान्न तथा वहाँ के वेद बाह्य कृत्यो को देखकर सोचा कि भगवान् के विग्रह को वे वहाँ से उठा ले जाएँगे। किन्तु एक जगल मे आँख खुली। वहाँ (उदयभानकौल) के नाम से अब भी एक तालाब प्रसिद्ध है। इससे इगित होता है कि इस काम का विचार करके भी असमर्थ रहे। पुरी का मन्दिर पहले वज्रयानी साधको का था।

रामानुज ने शकर के मायावाद को स्वीकृत नही किया। भक्ति को बीच मे रखा। इससे अवैदिक पचरात्र भी वैदिक साहित्य मे प्रवेश पा गया।

ब्रह्म एक है। वह अनेक गुणो से पूर्ण और महानतम है। वह ईश्वर, पुरुषोत्तम है। अभाव से दूर वह अद्वितीय है। वह लीला से सृष्टि करता है। वह शून्य से सृष्टि नही करता। सृष्टि स्वरूप भेद है। कारण स्वरूप से वह कार्य रूप मे आती है। पहले ईश्वर एक था। उसमे से अधिक अग, प्रकृति और जीव निकले। वे दोनो मिथ्या नही है। वे ईश्वर के अनुरक्त और उसके शासन मे है। कल्पान्त मे जब स्थूल तत्त्व सूक्ष्म मे लय होते है तब मात्र तमस रह जाता है। वह ब्रह्म स्वरूप है। इस रूप मे तमस् पहुँचाया नही जा सकता। वह ब्रह्म रूप दीखता है। अत ब्रह्म एक है। वह अपनी इच्छा से अनेक हो जाता है।

आराधना के लिए ईश्वर की पॉच अवस्था है—

1. परा—वैकुण्ठ मे नारायण रूप।
2 व्यूह—वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध।
3 विभव—नारायणावतार।
4 अन्तर्यामिन—हृदयनिवासी, योग द्वारा प्राप्त।
5 अर्च—मूर्ति।

जीव पॉच प्रकार के है—

1 नित्य—जन्म-मृत्यु से परे।
2. मुक्त—बधनहीन, ईश्वरसान्निध्यवान।
3. केवल—जन्म-मृत्यु बन्धन से मुक्त, पवित्र।
4 मुमुक्षु।
5 बद्ध।

कर्म, ज्ञान के बाद भक्ति से ईश्वर मिलता है। तीन उच्च जातियाँ ही भक्ति को अपना सकती है। चौथी के लिए आत्मसमर्पण प्रपत्ति है। उन्हे आचार्य अपियान मे पूर्ण विश्वास होना आवश्यक है।

शकर का मायावाद वेदान्त मे बौद्ध प्रभाव है। रामानुज ने परिवर्तनशील माया को झूठा नही कहा।

विशिष्टाद्वैती तीन प्रमाण मानते है प्रत्यक्ष, अनुमान तथा श्रुति।

ईश्वर ही एक अनन्त सर्वशक्तिमान और सब कुछ है। जीव चित है। अचित जड पदार्थ है, उन तीनो का भेद माया या अविद्या के कारण नही है वरन् है ही ऐसा। यह बदलता ससार ही तो परमात्मा की शक्ति का द्योतक है। विशिष्टाद्वैत में 'माया' शब्द का प्रयोग ब्रह्म की शक्ति दिखाने वाली शक्ति के लिए प्रयुक्त है। ब्रह्म मे अविद्या कहाँ से आई। वह ब्रह्म को कैसे छिपा सकती है। वह सृष्टि कैसे कर सकती है, अविद्या व ब्रह्म साथ-साथ नही रह सकते। जो दिखता है वह तो स्वगत, स्वजातीय और विजातीय भेद

है। ब्रह्म की ही इच्छा से चलनेवाली सृष्टि को माया कैसे झिलमिल कर सकती है। माया तो स्वय ब्रह्म की आज्ञा से चलनेवाली वस्तु है। प्रलय मे ब्रह्म एक है, तब प्रकृति 'उसमे' अव्यक्त भाव से सुप्त है। चित-अचित उस समय इतने सूक्ष्मतम स्वरूप को ग्रहण कर लेते है कि वे अलग से पहचाने नही जा सकते। यह उसकी कारण अवस्था है। कल्पान्त मे सृष्टि के समय कार्य अवस्था होती है, उस समय नामरूप हो सकते है।

विशिष्टाद्वैती ब्रह्म और ईश्वर को दो स्वरूपो मे विभाजित नही करते। ब्रह्म को वह मात्र चेतना नही मानते। वह उसे शकर के 'सत्यरूप' से अधिक ठोस मानते है। उसमे ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, वात्सल्य, माधुर्य इत्यादि सब कुछ है। ब्रह्म ही निमित्त कारण है, ब्रह्म ही उपादान कारण है। जीव ब्रह्म का दास या बालक बनकर नही रहता वह स्वय ब्रह्म होता है।

इत्यलम्, रामानुज का विशिष्टाद्वैत सक्षेप मे यही है। स्मरण रखना आवश्यक है कि यह धारा शकर और गोरक्ष के बाद की है। गोरक्ष से सीधे रामानुज का कोई सम्पर्क नही। गोरक्ष ब्राह्मणवाद से दूर थे। रामानुज के समय इस्लाम विजयी रूप मे आने लगा था। दक्षिण मे ईसाई और इस्लामी प्रभाव को देखा जा चुका है। यहाँ भक्तिवाद का उनसे भेद स्पष्ट हो जाता है।

एक परीक्षा

अब हम आलोच्यकाल की सब प्रमुख धाराओ का विवेचन और रा[illegible] कर चुके हैं। शकर ने कितना बडा काम किया था या रामानुज का क्या बलिष्ठ प्रहार था, इसपर विद्वानो द्वारा अधिक लिखा जा चुका है। रामानुज का कार्य तो वास्तव मे हमारे आलोच्यकाल के बाद रग लाया था। यहाँ हम उनके ऊपर विस्तार से कुछ नही लिखेगे। इनसे गोरक्षनाथ की तुलना अब आवश्यक है।

शकर ने जिस प्रकार सबका समन्वय करने का प्रयत्न किया और इस समन्वय मे बौद्ध मत की दार्शनिकता को आत्मसात् करके खोखला कर दिया, उसी प्रकार गोरखनाथ ने अपने युग के पूर्ववर्त्तियो के सब मतो को पहले अच्छी तरह छान लिया और रस निकालकर बाकी को फोक की भाँति छूँछा करके फेंक दिया। विद्वानो ने नाथ सम्प्रदाय की महत्त्वपूर्ण शक्ति का उल्लेख अवश्य किया है, किन्तु उन्होने यह नही स्पष्ट किया कि भारत मे गोरखनाथ का उतना ही बडा काम था जितना कि शकर का। आधुनिक विचार-धारा के लोग शकर का ब्राह्मणवाद का पुन प्रतिष्ठा देखकर उसे

प्रतिक्रियावादी कहेंगे । मेरा अपना विचार है कि यदि वह प्रतिक्रियावादी था तो भी उसका तत्कालीन इतिहास मे विजयी होना ही अवश्यम्भावी था, क्योकि उस समय भारत मे कोई नये प्रकार की प्रगतिशील विचारधारा नही थी । शकर ने ब्राह्मणवाद को पुन स्थापित किया, अर्थात् असाम्य और जाति-भेदवाले सामन्तवाद की पुन प्रतिष्ठापना की । रामानुज ने उसे हटाने का प्रयत्न किया किन्तु उसकी सफलता-असफलता का विवेचन हमारे विषय से बहुत आगे जाकर पडता है । तब शकर ने एक और प्रबल प्रहार किया । एक पूर्ण दार्शनिकता स्थापित की। ब्रह्म को इतना उठाया, इतना उठाया कि सबके परे कर दिया । ईश्वर, माया और जीव के विषय मे जो भाव उन्होने व्यक्त किए उनमे सामाजिक व्यवहार मे निर्बलता थी । गौतम ने भी उपनिषद् पर ही अपना दार्शनिक महल खडा किया था, वह भी ढह गया । शकर का भी विद्रोह अपने-आपका पालन करने मे असमर्थ हो गया । बुद्ध की क्रान्ति क्षत्रियो की थी। शकर एक सन्यासी था, वह इसीलिए अधिक प्रभावित कर सका । बुद्ध को एक अशोक की आवश्यकता थी, शकर को केवल अपने बोल देने भर की । वह प्रकाण्ड मेधावी जो था ।

अब दूसरी ओर गोरक्षनाथ को देखे, गोरक्षनाथ ने कापालिक, शाक्त, कौल, चीनाचार, लोकायत, सौर, गाणपत्य सबको एक चपेट मे दबा लिया । इसके अतिरिक्त उनके पथो का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है । इससे प्रकट होता है कि वे भी जानते थे कि वे क्या कर रहे थे । भले ही वे 'हिन्दू' नही, वरन योगियो का समुदाय परिष्कृत कर रहे थे, पर कर तो परिष्कृत ही रहे थे । इतिहास मे तो यह घटना क्या सरल है ? गोरक्षनाथ ने स्त्री का योनि रूप हटा दिया । यह नही कि सब शाक्त इधर ही आ गए । नही, उनकी दार्शनिकता और सिद्धि का चमत्कार समाप्त हो गया, अब वे कमजोर हो गए । जो गोरक्ष के हाथ नही आए वे ऐसे हो गए कि हिन्दू समाज मे नही रह पाए । हिन्दू समाज को एक होने की आवश्यकता ऐसी हठात् क्यो आ पडी थी, इसकी ओर ऊपर इगित किया जा चुका है । बाकी परवर्त्ती प्रभाव मे आ जाएगा । इसके अतिरिक्त आर्य सामाजिक व्यवस्था के बाहर जो योग था, गोरक्षनाथ ने उसे न केवल एक परिष्कृत और सुष्ठु रूप दिया वरन वे उसे खीचकर राजयोग के निकट ले आए और हठयोग को राजयोग का अग बना दिया । यह भी कोई सरल कार्य नही था । इसके अतिरिक्त गोरक्ष के हठयोग की तालिका जो ऊपर दी गई है उससे स्पष्ट हो जाता है कि वह कितनी भिन्न वस्तुओ का सग्रह है । उसने शरीर मे ही देवियो को बसा लिया । देवियाँ जिनका सम्बन्ध चक्र पद्मो से पहले से जोडा जा रहा था अब आकर उनपर स्थिर हो गईं । एकबारगी जैसे समस्त प्रधान आर्य सामाजिक

व्यवस्था के बाहर के मत-मतान्तर छाँटे गए और चुनकर उनसे सारतत्त्व गोरक्षनाथ ने निकाल लिया और फिर उसे ठीक स्थान देने का प्रयत्न किया। इसमे वे नि सन्देह सफल हुए और कहना ठीक ही होगा कि उन्होने एक तूफान को हाथ उठाकर रोक दिया।

ऊपर देखा जा चुका है कि गोरक्ष के हठयोग मे शरीर मे एक योनि स्थान है जिसमे लिंग माना गया है। यह देखने को एक साधारण-सी बात लगती है। किन्तु इसका प्रभाव क्या हुआ यह तनिक विचारणीय है। इस व्यक्ति ने हठयोग के माध्यम से बौद्ध, अबौद्ध, शैव तथा ब्राह्मण ग्राह्य सबके लिए एक ऐसी भूमि बना दी जहाँ सबके बन्धन टूटने लगे, तभी तो वह हठयोग का एक महान् सिद्ध माना गया है।

एक दिन शिव ने काम से युद्ध होने पर उसे भस्म तो कर दिया था किन्तु काम अनग होकर फिर भी रह गया था। युगातर मे रति ने शक्ति बनकर शिव को शव बना दिया था। अब फिर एक भयानक क्राति हुई थी। महा-योगी शिव अपने भीतर ही स्त्री को आत्मसात् करके पद्मासन लगाकर बैठ गया था। योनि के रूप मे स्त्री शरीर के भीतर चली गई और ससार के लिये वह माता और बहिन के रूप मे छूट गई, सामाजिक नियमो के अनुकूल हो गई। यह गोरक्षनाथ की महान् देन थी। हीनत्व अनुभव करनेवाले पुरुष मे अनन्त शक्ति का सन्निवेश हो गया था। यह व्यक्ति का पूर्ण, व्यक्तिगत, एकागी स्वरूप था, किन्तु बाहर ब्रह्मचर्य था। शाक्त उपासना का यक्षवाद एक उच्च आदर्श के सामने पराजित हो गया था, जैसे शकर के मायावाद ने बौद्धो के शून्यवाद को तर्क से पराजित किया था, गोरख ने शाक्तो को उन्ही के अस्त्र से—व्यवहार से—अपने कर्म, साधना और साधना की सफलता मे पराजित कर दिया था, और जगल उसी कुल्हाडे से काटा गया, उसी लकड़ी से काट दिया गया, जो कल तक उसी वृक्ष का एक अग-सा दीख रही थी।

यह व्यक्ति का हठ था कि वह सर्वात्म को अपने सामने झुका लेना चाहता था। यदि शकर ने दार्शनिक ठोकरो से उस जीव को जगाकर पूर्णत्व प्राप्त कराने का प्रयत्न किया था तो गोरखनाथ ने योग से, जबकि रामानुज ने प्रेम का पथ पकडा था।

दर्शन और प्रेम का स्वरूप अधिक सामाजिक था, योग का अधिक व्यक्ति-गत। किन्तु इस व्यक्तिगत का भी एक सामाजिक पक्ष था, जो इतिहास ने गोरक्षनाथ को पीढी-दर-पीढी से पालकर अब अन्त मे सौंप दिया था।

इसके अतिरिक्त गोरक्षनाथ ने शैव प्रत्याभिज्ञा के दर्शन के अनुसार जो कायायोग को सुव्यवस्थित किया उससे वह कुछ छोटे भेदो को छोडकर दार्श-निकता मे शकर के सिद्धान्तो के निकट आ गए। ऊपर वेदान्त और शाक्त

मतो की दार्शनिकता का भेद देखा जा चुका है। भेद वास्तव मे कुछ नही है, माया अथवा शक्ति के विषय मे है। शाक्त और वेदान्त का यह भेद तभी तक प्रखर था जब तक स्त्री साधना का माध्यम थी। गोरखनाथ ने इसे तो काट ही दिया, उन्होने एक और काम किया। शकर ने ब्रह्म को बढाया था, वह बौद्धो से टक्कर थी। गोरख ने शरीर को बढाया, यह शाक्तो से टक्कर थी। शकर को ब्रह्म का स्वरूप स्थिर करना था, बिखरे विचारो को एकत्र कर, गोरक्ष को शरीर का रूप पूर्ण करना था, बिखरे साधना पथो को एकत्र कर। शकर को अनात्म से लडना था। उन्होने इसीसे माया को स्वीकार कर लिया, गोरक्ष को वज्रयानी साधना से लडना था, इसीसे उन्होने उनके पारिभाषिक शब्दो को स्वीकार किया। शकर की माया फिर भी जड ही कही गई। गोरक्षनाथ ने उन पारिभाषिक शब्दो को सकेत और सावृतिक रूप मे लिया। शकर ने श्रुति का आधार लिया गोरख ने शैव प्रत्यभिज्ञा दर्शन का। शकर ने ब्राह्मण को फिर से जमाया, गोरखनाथ ने शिव के उसी प्राचीन नीरस रूप को और इसमे वे ब्राह्मण-विरोधी तो रहे ही, उन्होने योगी को सबसे ऊपर माना। इसके ही परिणाम से पिण्ड मे ब्रह्माड आ गया, अब यह एक अद्भुत तुलना की अवस्था है।

शकर ने पिण्ड ब्रह्माड को झुठलाकर ब्रह्म की स्वीकृति दी। सब को झूठ कहकर उस सच्चिदानन्द परमात्मा पर ध्यान लगाने को कहा, जिस पर ध्यान तो कम लोगो का लग सका किन्तु जिसकी अनिर्वचनीया शक्ति अर्थात् माया का घर-घर मे प्रवेश हुआ और भारतीय जीवन पर उसका गहरा प्रभाव पडा। यह एक प्रकार की समाज से गहरी पराजय थी, जो बौद्धमत का प्रारम्भिक विद्रोह, ब्राह्मण विचार-धारा पर लोहे से अकित कर गया। गोरक्षनाथ का ब्रह्माड पिण्ड मे आकर सिमट गया। सारा ससार उन्होने त्याग दिया, समाधि लगाई और बैठ गए। ससार को व्यर्थ कहने का यह दूसरा तरीका था, इससे भी समाज को कोई विशेष लाभ नही हो सकता था।

व्यक्तिवाद

शकर ने ब्राह्मण दृष्टिकोण से ससार को व्यर्थ कहा, गोरक्ष ने योगी के दृष्टिकोण से पिण्ड के अतिरिक्त सर्व को व्यर्थ कहा, इसी पिण्ड मे वह 'शिव' है।

शकर ने कहा था—सब शिव है, गोरखनाथ ने कहा—वह शिव भी पिण्ड मे है। शताब्दियो से एकरस चले आते भारतीय समाज ने अपना रूप दो भागों मे विभाजित कर लिया था, दोनो निकट आना चाहते तो आ सकते थे किन्तु बीच मे ब्राह्मणवाद की फॉस थी। ज्ञानमार्गी शकर तो उसे तरह दे गए, पर

गोरक्ष तो ब्राह्मण धर्म के प्रतिपालक नही थे, वे कैसे मान जाते। वह तो योगी को वेद से ऊपर बिठाते थे, अत दोनो समीप नहीं आ सके, परस्पर सामीप्य स्थापित नही कर सके, और वैसे दोनो के जीवन बिताने के रूप भी अलग-अलग थे। दोनो आगे जाकर मिलकर निकट आये, तब वे वेदान्ती और योगी नही रहे, दोनो 'हिन्दू' कहलाने लगे थे।

हमने देखा कि मतप्रवर्तन, योग, दर्शन और सामाजिक रूप मे गोरक्ष का अपनी परिधि मे उतना ही विराट् कार्य था जितना कि अपनी परिधि मे शंकराचार्य का। किन्तु गोरक्षनाथ की साधना, हठयोग को सरल साधना की सज्ञा देने पर भी, जनसाधारण तक तो आसानी से पहुँच सकने मे असमर्थ थी। गोरक्षनाथ के कार्य मे क्या निर्बलता रह गई यह उनके परिवर्त्ती प्रकरण मे प्रकट हो जायगा, यहाँ इतना कह देना काफी होगा कि गोरक्षनाथ का प्रयत्न सर्वथा व्यक्तिवादी था और उसकी गोरख जैसे महान् व्यक्तित्व के बिना यही चरम सीमा थी कि आसन लगाकर बैठ रहे। उसमे सहस्रो वर्ष एक समाधि में बैठे रहनेवाले शिव का भव्य स्वरूप हो सकता है, किन्तु उसमे जगत् के कार्य-व्यापार को चलाने की शक्ति नि सन्देह नही थी। गोरक्ष के बाद उनके हठयोग को ब्राह्मणो ने आसानी से इसीलिए स्वीकार भी कर लिया क्योकि इसका सामाजिक प्रभाव पड सकना असम्भव-सा था। इसका यह तात्पर्य कदापि नही है कि योगि सम्प्रदाय गोरख के बाद अलग नही रहा था। युगान्तर की रहस्य की भय दिखानेवाली भावना को अब व्यक्ति ने गोरख मे आकर जीत लिया था।

भारतीय इतिहास-शृंखला

शकर और गोरक्ष मे मुख्य भेद यह है कि शब्दार्थ रूप से ही वास्तव मे एक आचार्य-मात्र था और दूसरा नाथ था। इन दोनो ने समाज की धारा की उथल-पुथल मे से दो बीज निकाले थे, किन्तु भारतीय इतिहास-शृखला तो रुकनेवाली नही थी, रामानुज ने उन्हे आगे बढाया।

इस प्रकार भारतीय सस्कृति की कडी जो टूटी हुई दिखाई देती है गोरखनाथ उसे जोड देते है। गोरखनाथ मे तत्कालीन आर्य सामाजिक व्यवस्था के बाहर के समस्त प्रधान सम्प्रदायों का सारभूत होकर आर्य सामाजिक व्यवस्था के भीतर रहनेवालो के सान्निध्य का, समीप आने का प्रयत्न स्पष्ट दिखाई देता है। युगान्तर ब्राह्मणवाद को चुनौती देनेवाला स्वरूप अब ब्राह्मणवाद के निकट आ गया था। वह जिसने जाति-बन्धन के विरुद्ध आवाज उठाई थी अब वह इतना व्यक्तिवादी हो चुका था कि उसका सामाजिक प्रभाव पडना बहुत कम हो चुका था। इस प्रकार भारतीय इतिहास के आदि काल से आते ब्राह्मणवाद के

विरोध ने एक प्रकार से उसके सामने अपनी पराजय स्वीकार की, दोष उसका नही था, उत्पादन के साधनो मे परिवर्तन नही आना ही इसके लिए उत्तरदायी था। बौद्धमत के प्रारम्भिक रूप की ही भाँति गोरख का स्वर उठा, किन्तु जैसे बौद्धमत सामन्तकालीन व्यवस्था से हार गया, योगि सम्प्रदाय भी सामन्ती व्यवस्था को नही हटा सका, इसीलिए ब्राह्मणवाद को नही हटा सका। आगे चलकर यह विद्रोह दूसरा स्वरूप लेकर निम्न जातियो मे बढा पर तब तक ब्राह्मणवाद भी भक्ति के आवरण मे अपने को सशक्त करने लगा था। उपसहार के अन्त मे दिये हुए रेखाचित्र को देखने पर यह स्पष्ट हो जाएगा। पहले शिव काम भस्म करके महासमाधि मे लग गए थे, जब आँख खुली तो शक्ति के हाथ मे गिरे, अब के शिव की समाधि लगी तो इतिहास ने उसे खुलने ही नही दिया, यक्षवाद जब लौटा तो अब के योग के पखो पर नही, भक्ति के कधों पर।

पूर्व तथा परवर्त्ती

पूर्ववर्त्तियो और परवर्त्तियो के बीच मे गोरखनाथ एक ऐसे विश्राम-स्थल बनकर मिलते है कि हठात् उन्हे देखकर आगे नही बढा जा सकता। कारण स्पष्ट है, उसे यहाँ दोहराने की आवश्यकता नही। कितनी बडी विरासत की कितनी बडी विरासत गोरखनाथ ने छोडी थी, अब यही हमारा आलोच्य विषय है। सबसे बडी ध्यान देने की बात है कि उत्तर मे गोरक्ष और दक्षिण मे शकर दोनो ही शिव के दो स्वरूप थे। एक परिमार्जित आर्य सामाजिक व्यवस्था के बाहर, एक सुगठित आर्य सामाजिक व्यवस्था के भीतर। दोनो ने समाज को स्थिरता का रूप दिया था, जिसमे गति नही प्रतीत होती।

गति इस्लाम का परिणाम थी। वह रामानुज के समय मे थी, वह आगे बढ़ा ले गई। शकर विवर्त मे पड गए, गोरक्ष चक्र मे। रामानुज समाज को लेकर उठे और धारा को बहा ले गए। उन्होने ईश्वर को मनुष्य के पास खीच लिया। गोरक्ष के समानान्तर शकर के बाद आनेवाले रामानुज का ही प्रभाव गोरक्ष के भी परवर्त्तियो पर समान भाव से पडा था। इसलिए उन्हे यहाँ उल्लिखित करना आवश्यक हो गया। शकर का व्यक्तिवाद रामानुज ने तोड दिया। गोरक्षनाथ के बाद योग प्रभाव मे ऐसा कोई व्यक्ति नही हुआ। कबीर का चरित्र एक अद्भुत समन्वय था अवश्य, किन्तु उसे केवल योगमार्गी नही कहा जा सकता।

साहित्य

तत्कालीन कविता, काव्य और जीवन, गोरखनाथ की कविता, उनकी रचनाओं का परिचय, सबदी, पद, सिष्या दरसन, प्राण सकली, नरवै बोध, आत्म बोध, अभैंमात्रा जोग, पन्द्रह तिथि, सप्तवार, मछीन्द्र गोरख बोध, रोमावली, ग्यान तिलक, पचमात्रा।

परिशिष्ट (क—1). (1) गोरख गणेश गुष्टि, (2) ज्ञानदीप बोध (गोरख दत्त गुष्टि), (3) महादेव गोरख गुष्टि, (4) सिस्ट पुराण, (5) दया बोध, (6) कुछ पद।

परिशिष्ट (ख—2). (1) सप्तवार नवग्रह, (2) व्रत, (3) पच अग्नि, (4) अष्टमुद्रा, (5) चौबीस सिद्धि, (6) बतीस लछन, (7) अष्टचक्र, (8) रहरासि।

परिशिष्ट 3.

भाषा, विश्लेषण और प्रामाणिकता, सम्पादन, टीका, गोरखनाथ की हिन्दी कविता का महत्त्व, पूर्ववर्त्ती समसामयिक तथा परवर्त्ती सिद्धो से समानता, गोरख बानी मे प्रयुक्त उलटबाँसियाँ, आध्यात्मिक रूपक, लोकोक्तियाँ, गोरखनाथ के विचार, शैली तथा कवित्व, नाथ सम्प्रदाय की कविता, नाथ सम्प्रदाय का परवर्त्ती सन्तो पर प्रभाव।

साहित्य

तत्कालीन कविता

जब हम हिन्दी भाषा की ओर आते है तब सबसे पहले हमे सिद्ध काव्य के दर्शन होते हैं। राहुलजी ने इसे सिद्ध-सामन्त युग कहा है। सामन्त तो भारतीय इतिहास मे प्राय प्रत्येक समय दिखाई देते है, किन्तु इस काल को विशेषतया सामन्तकाल कहा जा सकता है। क्योकि इस युग के पहले और बाद चक्रवर्ती सम्राटो का प्राधान्य है, जबकि इन 500 वर्षो मे अर्थात् ईसा की छठी शती से 1100 ई० तक यह छोटे-छोटे सामन्त ही भारत के विस्तृत भूखण्ड को शासित करते हुए मिलते हैं। अन्य विशेषताओ के होने हुए भी इस काल मे तीन प्रमुखताएँ दृष्टिगोचर होती हैं—

एक—सिद्धयुगीन कविता।

दूसरी—नाथयुगीन।

तीसरी—परवर्ती, नाथयुगीन कविता मे से जन्म लेती सन्तकालीन कविता।

यह कहना ठीक नही होगा कि इनके अतिरिक्त कविता के क्षेत्र ही नहीं थे। अलग-अलग धर्मावलम्बियो, दरबारी कवियो तथा जनकवियो की कविता अलग-अलग विषय पर कलम को आकर्षित करती थी, किन्तु यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि भाषा, भाव और वर्णन शैली मे एक अद्भुत साम्य था।

हिन्दी के इन प्रारम्भिक कवियो मे सरहपा, स्वयभू देव, भूसुकपा, कण्हपा आदि विशेष महत्त्वपूर्ण है। जिन अनेक विचारधाराओ और शैलियो को पार करके हिन्दी कविता आज पहुँची है, उसके प्रारम्भिक रूप मे 'मध्यकालीन' अर्थात् मुसलमान शासन युग की कविता के बीज बिखरे पडे हैं। किसी भी युग के समान तत्कालीन कविता यदि एक ओर प्रचार के दृष्टिकोण से गाया हुआ गीत थी, तो दूसरी ओर तत्कालीन समाज-व्यवस्था से व्यामोह रखने वाली प्रवृत्ति का परिचय देने वाली स्तुति थी।

एक विराट् देश के दीर्घ समय प्रसार की साहित्य रचना में से आज बहुत कम शेष है, अत. इसके ऊपर जो सब-कुछ जानने का उत्तरदायित्व छोडना

पडता है, उसका परिणाम हमारे दृष्टिकोण को अधिक विस्तृत नही होने देता। किन्तु इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग भी दिखाई नही देता।

विशेष धाराएँ—इस प्रकार सिद्धयुगीन कविता हिन्दी कविता का सर्व प्रथम रूप है। देश मे जैन और शैव धर्मावलम्बी अनेक तद्भव प्रधान भाषा के कवि थे। ब्राह्मण वर्ग अपने को अब भी अन्यो से ऊँचा समझने के कारण, सस्कृत को ही इन बातो का माध्यम समझता था। अधिकाश राजा तथा सामन्तो के दरबारो मे सस्कृत को ही अभी तक प्राधान्य मिला हुआ था, किन्तु बौद्ध, जैन और कुछ अन्य राजा भी, हिन्दी को अपने दरबारो मे स्थान देते थे। स्वयभूदेव ध्रुव धारावर्ष के अमात्य रयडा के साथ रहते थे; उसके आश्रित थे, स्वयभू की कविता मे तत्कालीन सामन्त व्यवस्था का चित्रण भरा पडा है, जैन कवियो मे स्वयभू का बहुत बडा स्थान है। राहुलजी का मत है कि उस युग मे हिन्दी कविता के क्षेत्र मे स्वयभू से बडा कोई कवि नही हुआ। विस्तार से अध्ययन करने पर तथा काव्य शैली और वर्णन की तुलना करने पर यह दावा ठीक ही प्रतीत होता है।

काव्य और जीवन

किन्तु सब-कुछ तो सामन्तीय नही था। वहाँ कविता तो बद्ध-सी थी, क्योकि उसमे जनता के दु ख-दर्द का वर्णन करने की स्वतन्त्रता थी ही नही। दूसरी ओर उस व्यवस्था से विद्रोह करनेवाले सिद्धो की कविता है। सिद्धो का विद्रोह वस्तुत ब्राह्मण धर्म की व्यवस्था से था, राजनीतिक रूप से सामतवाद से नहीं, क्योकि वह स्वय परलोकवाद का सहारा लेकर चल रहा था। यह कहना सर्वोचित होगा कि परलोकवाद का वह रास्ता व्यक्तिवादी था, अत उसमे इतनी सामर्थ्य नही थी कि सामाजिकता को अपने भीतर अन्तर्भूत कर लेता। सामाजिक पक्ष बाहर ही छूट गया। ऊपर देखा जा चुका है कि निर्वाण साधना मे लगे हुए सिद्ध सामाजिक रूप मे कितने उलझे हुए थे और उन्हे आगे चलने की कही भी राह तक दिखाई नही देती थी। इनके विद्रोह का रूप एक ओर खुलेआम स्त्री के साथ व्यभिचार-मात्र रह गया था, तो दूसरी ओर यह आकाश मे तन्मय हो रहे थे। बीच मे इनके लिए कोई राह ही नही थी। योनि से आसक्ति थी क्योकि योनि मार्ग से ससार मे आना एक बडा पाप समझा जाता था और सिद्ध ने निर्वाण का पथ ऐसा खोजा जिसमे वह भोग मे ही अपनी मुक्ति पाता था। अद्भुत विरोधाभास दिखाई देता है। देखने को बात विशेष नही जान पडती किन्तु इसके विचार के पीछे की उपचेतना सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न असाम्य का बहुत बडा परिचय देती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने जब पुरुष को ऊँचा स्थान दिया और सम्पत्ति-विषयक कुछ विशेष

धारणाएँ बनी तब समाज मे स्त्री का दर्जा तो गिरा ही। सम्पत्ति और व्यवस्था के परिणामस्वरूप पुरुष ही सब-कुछ का मापदण्ड हो गया, जिसने उसके अहकार को बढाया। यह अहकार प्राय सभी विचारधाराओ मे फैला हुआ दिखाई देता है। सिद्ध-युगीन कविता मे यह अहकार अपने-आपको मिटा देने के प्रयत्न में समाज से हाथ खीचता हुआ दिखाई देता है। तभी हमे कविता मे ब्राह्मणधर्म-कृत व्यवस्था का यदि एक ओर घोर विरोध दिखाई देता है तो दूसरी ओर सब से अलग देह मे ही या अपने अत्यन्त निकटतम रमे रहने का आदेश भी। किन्तु जहाँ व्यक्ति को उपदेश दिया जाता था वहाँ खण्डनात्मक भावना मे समाज पर सीधा प्रहार किया जाता था, तब यह एक विरोधाभास-सा लगता है। सरहपा ने पाखण्ड का विरोध करते हुए कहा है—

बम्हणहि म जाणन्त हि भेउ।
ऐवई पढिअउ ए चउबेउ ॥
मट्टि पाणि कुस लई पढन्त।
घरही बइसी अग्गि हुणन्त ॥
कज्जे विरहइ हुअवह होमे।
अक्खि डहाविअ कडुए धूए ॥
एक दण्डि त्रिदण्डी भअवा वेसे।
विणुआ होइअइ हस उएसे ॥
मिच्छे हा जग वाहिअ भुल्ले।
घम्माघम्म ण जाणिअ तुल्ले ॥
अइरिएहि उद्दलिअ छारे।
सीस सु बाहिअ ए जडभारे ॥
घर ही वइसी दीवा जाली।
कोणहिं वइसी घण्डा चाली ॥
अक्खि त्रिवेमी आसण बन्धी।
कण्णेहि खुसखुसाइ जण धन्धी ॥
रण्डी मुण्डी अण्ण वि वेसे।
दिक्खिज्जइ दक्खिण उद्देसे ॥
दीहणक्ख जइ मलिणे वेसे।
णग्गल होइ उपाडिअ कैसे ॥
खवणेहि जाण विडविउ वेसे।
अप्पण वाहिअ मोक्ख उवेसे ॥

इसके बाद वे मन्त्र और देवता को भी व्यर्थ कह देते है।

किन्तह दीवे किं तह णेवेज्जे ।
किन्तह किज्जइ मन्तह सेव्वे ।।

किन्तु अब कवि फिर अपने व्यक्ति की ओर लौट आता है और कहता है—

एत्थु से सुरसरि जमुणा, एत्थ से गगा साअरू
एत्थु अवाग बणारसि, एत्थु मे चन्द दिवाअरू ।
खेतु पीठ उप पीठ एत्थु मइ भमइ परिट्ठऔ ।
देहा सरिसअ तित्थ, मइ सुह अण्ण ण दिट्ठओ ।

केवल गुरु ही है जो सहायक है। सरहपा ने मुक्त कठ से गुरु वदना की है—

गुरूउवएसे अमि अरसु, धावण पीअउजेहि ।
बहु सत्थत्थ मरुत्थलहि, तिमिए भरिअउ तेहि ।

किन्तु वे सहज के चक्कर मे जब चलते है तब उन्हे ससार सकुचित होता हुआ दीखता है और वे भोग मे ही अपना निर्वाण प्राप्त करने हे

खाअन्त पिअन्ते सुहहि रमन्ते,

और सहज की लहरे उन्हे उस सदूर क्षितिज मे अपना मर्मर सुना देने को बाध्य कर उठती है जब वे रहस्यवाद मे कह उठते है

सक पास तोडहु गरु वअणे ।
ण सुनइ सो णउ दीसइ णअणे ।।
पवण वहन्ते पाउ सो हल्लइ ।
जलण जलन्ते णउ सो डज्झइ ।।
घण वरिसन्ते णउ सो तिम्मइ ।
ण उबज्जहि णउ खअहि पइस्सइ ।।

णउ त बाअहि गुरु कहइ णउते बुज्झइ सीस ।
सहजामिअ रसु सअल जगु कासु कहिज्जइ कीस ।।
सअ सवित्ती तत्तफलु सरहापाअ भणन्ति ।
जो मण गोअर पाविअइ, सो परमत्थ ण होन्ति ।।

यह 'सअ सवित्ती तत्तफलु' समझ लेना क्या आसान है। जिसको इसकी अपने आप सविति हो इसे तो वही जाने ।

सरह को प्रतिनिधि बनाकर देखा कि काव्य का क्षेत्र अधिक विस्तृत नही है। सामतीय प्रभावक्षेत्र मे जो कवि थे उनका प्रभाव क्षेत्र कही अधिक था। स्वयभू देव की रामायण अभी तक प्रकाशित नही हुई है। किन्तु राहुलजी ने जो उद्धरण हिन्दी काव्य धारा मे दिये है उन्ही मे पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है। यहाँ विशेष धाराओ का सूक्ष्मतम रूप मे पर्यवेक्षण करने के कारण हम अधिक कवियो को नही देख रहे है। स्वयभू देव के काव्य मे, ऋतु और काल

वर्णन, भौगोलिक वर्णन, नगर, समुद्र, नदी, वन, यात्रा आदि के सुन्दर वर्णन प्राप्त होते है। उन्होने मातृभूमि की इस प्रकार प्रशसा की है—

ध्वंत धवल धय वड पउरू।
पिय पेक्खु अउज्झाउरि णयरू॥
घत्ता किर जन्मभूमि जणणीय सम,
अण्णु विहूसिय जिणवरेहि।
पुरि वदिये सिर सयभुव करेहि।
जणय तणय हरि हलहरेहि॥

इनके काव्य मे हमे सामन्त वेश और युद्ध के भी वर्णन मिलते है। धर्म की जैसी आवश्यकता सामन्त समाज को हो सकती थी वह स्वयभू मे मिल जाती है। ससार को तुच्छ कहा गया है।

सक्षेप मे इस युग की विशेषताएँ निम्नलिखित है—

(1) धार्मिक कविता जिसका मूल व्यक्तिवाद, ससारोपेक्षा, काया मे अन्त तथा खडन प्राधान्य है।
(2) सामन्ती कविता, जिसमे उच्च समाज का वर्णन है।
(3) धर्मों का एक-दूसरे को नीचा प्रामाणित करने का प्रयत्न।
(4) सामन्तो और सिद्धो दोनो मे दो दृष्टिकोणो से स्त्री को खिलौना समझना।
(5) सामन्तो मे प्रबन्ध तथा चित्रकाव्य, जिसमे ह्रस्वात चौपाइयो का प्रयोग उतना ही है जितना दीर्घात का।
(6) सिद्धो मे गीत तत्त्व का प्राधान्य।
(7) सामन्तो मे वीरकाव्य की पृष्ठभूमि।
(8) सिद्धो मे योगि-सम्प्रदाय की कविता की पृष्ठभूमि।
(9) सामन्ती भाषा मे अलकारिक प्रयोग अधिक।
(10) सिद्धो मे रूपक और उलटबासियाँ। सरलता और सहजोन्मुख प्रकाशन का लोगो मे विस्मय फैलाने के लिए दुरूहता का बाना धारण करना।
(11) सामन्ती काव्य मे प्राचीन परम्पराओ को जाग्रत रखने की चेष्टा।
(12) सिद्ध काव्य मे पुरातन से अमोह किन्तु अभावात्मक, रचनात्मक रूप दुरूह।

गोरखनाथ की कविता

इस पृष्ठभूमि मे गोरखनाथ की कविता पर दृष्टिपात करने से अनेक विचित्रताएँ दिखाई देती हैं। इसमे कुछ ऐसा अलगपन है जिससे लगता है कि

इस काव्य का सामीप्य ऊपर देखे गए सस्कृत काव्य (साम्प्रदायिक) से अधिक है, यद्यपि तत्कालीन भाषा काव्य से कुछ अधिक दूर नही ।

गोरखनाथ की रचनाओ के विषय मे यह सरलता से नहीं कहा जा सकता कि जो आज उनके नाम से प्राप्त है वह सब उन्ही की है । अधिक कठिन यह इस कारण प्रतीत होता है कि जैसे गोरखनाथ की हिन्दी मे अनेक रचनाएँ कही जाती है, उसी प्रकार उनकी अनेक सस्कृत मे भी है । उनकी परस्पर तुलना करने पर अनेक भ्रम उत्पन्न होते है । डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने 'गोरखबानी' नाम से गोरखनाथ की अनेक रचनाओ को हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से, जोगेसुरी-बानी, भाग-1, स० 1999 मे प्रकाशित किया है । पुस्तक अत्यन्त विद्वत्तापूर्वक सम्पादित की गई है । किन्तु सग्रहीत रचनाओ के विषय मे वे जो कुछ प्रकट करनेवाले थे, वह कार्य उनके असामयिक निधन से पूर्ण नही हो सका । अभी तक गोरखनाथ की हिन्दी रचनाओ पर लेखको ने अधिक दृष्टिपात नही किया है ।

उनकी रचनाओ का परिचय

गोरखनाथ के नाम से जो अनेक ग्रन्थ हिन्दी मे कहे जाते है वे निम्नलिखित है—

1 हठयोग,	2 गोरक्ष सहिता,	3 गोरक्ष गीता,
4 सबदी,	5 पद,	6 सिष्यादरसन,
7 प्राण सकली,	8 नरवै बोध,	9 आत्म बोध,
10 अभैमात्रा जोग,	11 पन्द्रह तिथि,	12 सप्त वार
13 मछीन्द्र गोरखबोध,	14 रोमावली,	15 ग्यान तिलक,
16 ग्यान चौतीसा,	17 पचमात्रा,	18 गोरख गणेश गोष्टी,
19 गोरखदत्त गोष्टी, (ग्यान दीप बोध)		20 महादेव गोरख गुष्टि,
21 सिष्ट पुरान,	22 दया बोध,	23 जाती भौरावली (छन्द गोरख)
24 नवग्रह,	25 नवरात्र,	26 अष्ट पारछया
27 रहरास,	28 ग्यान माला,	29 आत्माबोध,
30 व्रत,	31 निरजन पुरान,	32 गोरख वचन,
33 इन्द्री देवता,	34 मूल गर्भावली,	35 खाणी वाणी,
36 गोरख सत,	37 अष्ट मुद्रा,	38 चौबीस सिधि,
39 षडक्षरी,	40 पच अग्नि,	41 अष्ट चक्र,
42 अवलिसिलूक, और	43 काफिर बोध ।	

तथा योगियो की बानियाँ डा० बडथ्वाल को अनेक स्रोतो मे मिली है जो इस प्रकार हैं —

सख्या	प्रति	स्थान	व्यक्ति या स्रोत	काल	विशेषता
1	क	पौडी-गढवाल	प० तारादत्त गैरोला को जयपुर से मिली थी	पुष्पिका नष्ट हो जाने से काल अनिश्चित, यदि रज्जब से माना जाय तो सम्वत् 1715	इसके 4 विभाग है दादू, कबीर, नामदेव, रैदास। अन्तिम भाग मे गोरखनाथ की बानियाँ हैं जो रज्जब द्वारा सग्रहीत है
2.	ख	जोधपुर दरबार पुस्तकालय	प० विश्वेश्वर-नाथ रेऊ	अज्ञात	केवल सबदियाँ
3.	ग	जोधपुर	श्री गजराज ओझा	,,	,,
4	घ	,,	शुभकरण चारण	स० 1825	वृहत् ग्रथ निरजनी साधु द्वारा सग्रहीत,
5	ङ	पटियाला राज्य	मन्दिर बाबा हरिदास	स० 1794	गगाराम निरजनी वैष्णव ने स्वामी रूपदास के पठनार्थ जयपुर मे लिखा था
6	च	जयपुर	पुरोहित हरि-नारायण बी ए	स० 1715 शाके 1580	
7.	छ	,,	,,	स० 1741	
8.	ज	,,	,,	स० 1855	
9	झ	—	—	—	नकल है, मूल अप्राप्त। सेवादास की कुछ रचनाएँ गोरखनाथ की मिली हैं प्रति इसी से महत्त्वपूर्ण है।
10.	अ	काशी	सरस्वती भवन	अज्ञात	योगियो की रच-नाओ के एक सस्कृत अनुवाद की हस्त-लिखित प्रति

4 प्राण साँकली, 5 नरव बोध, 6 आत्म बोध, 7 अभैमात्रा जोग, 8 पन्द्रह तिथि 9 सप्तवार, 10 मछीन्द्र गोरख बोध, 11 रोमावली, 12 ग्यान तिलक, 13 पच मात्रा ।

परिशिष्ट (1)—(क—1) गोरख गणेश गुष्टि । (क—2) ज्ञान-दीप बोध (गोरखदत्त गुष्टि) । (क—3) महादेव गोरख गुष्टि । (क—4) सिस्ट पुराण । (क—5) दया बोध । (क—6) कुछ पद ।

परिशिष्ट (2)—(ख—1) सप्तवार नवग्रह । (ख—2) व्रत । (ख—3) पचअग्नि । (ख—4) अष्टमुद्रा । (ख—5) चौबीस सिद्धि । (ख—6) बतीस लछन । (ख—7) अष्ट चक्र । (ख—8) रहरासि ।

परिशिष्ट (3)

'घ' प्रति के परिशेष मे गोरखनाथ के 27 पदो का सुन्दर तिलक किसी निरजनी साधु-कृत प्रतीत होता है । डा० बडथ्वाल ने पदो की प्रथम पक्ति देकर तिलक दिए है । साधु का नाम नही है, किन्तु क्योकि 'घ' प्रति मे निरजनी ग्रन्थ अधिक है वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे है कि यह किसी निरजनी साधु का ही परिश्रम है ।

गोरखनाथ की रचनाओ का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

सबदी—डा० बडथ्वाल ने गोरखबानी मे उनकी 273 सबदियाँ दी हैं । 190 के बाद (ख) (ग) और (घ) की अधिक सबदियाँ है । केवल (घ) प्रति की अधिक सबदियाँ और दो है जिन्हे मिलाकर कुल सख्या 275 होती है । प्रारम्भ की कुछ सबदियाँ निम्नलिखित हैं —

बसती न सुन्य सुन्य न बसती अगम अगोचर ऐसा ।
गगन सिपर मे बालक बोलै ताका नाव धरहुगे कैसा ।

अदेषि देषिका देषि विचारबा अदिसिहि राखिबा चीमा ।
पाताल की गगा ब्रह्मण्ड चढाइबा, तहाँ बिमल-बिमल जल पीया ।

इहाँ ही आछै इहाँ ही अलोप ।
इहाँ ही रचिले तीनि त्रिलोक ।
आछे सगे रहे जू वा ।
ता कारणि अनन्त सिधा जोगेस्वर हूआ ।
बेद कतेब न खाँणी बाणी ।
सब ढकी तलि आणी ॥

गगन[1] सिषर महि सबद प्रकास्या ।
तँह बूझे अलष बिनाणी ।।

सबदी का क्षेत्र योगी के लिए जितनी आवश्यक बाते है सब पर छाया हुआ है । किन्तु जन-समाज के लिए वह नही है, स्पष्ट ही कहा है —

कोई बादी कोई बिबादी जोगी को बाद न करना ।
अठसठि तीरथ समदि समावे यूं जोगी कौ गुरुमुषि जरना ।।

जोगी वही है जो

अरधै जाता उरधै धरे, काम दगध जे जोगी करे ।
तजै अल्यगन काटै माया, ताका विष्नु पषाले पाया ।
अजपा जपै मुनि मन धरै, पॉचो इन्द्री निग्रह करे ।
ब्रह्मा अगनि मे होमें काया, तास महादेव बन्दै पाया ।

और योगी पूछता है

स्वामी बन षडि जाउ तो षुध्या व्यापै
नग्र जाउ त माया ।
भरि भरि षाउ त बिंद बियापै
क्यो सीझति जल व्यद की काया ।

और फिर उत्तर मिलता है —

धाये न षाइबा भूषे न मरिबा
अहनिसि लेबा ब्रह्म अगनि का भेव ।
हठ न करिबा पडया न रहिबा
यूं बोल्या गोरष देव ।।

क्योकि,

उठत पवना रवी तपगा बैठत पवना चद ।
दहूँ निरतरि जोगी बिलैष विंद बसे तहाँ ज्यद ।।

---

1 गगन सिषर चढि (ग) पाठ ठीक जँचना है, अर्थात् गगन शिखर (ब्रह्मरध्र) में चढकर शब्द जो प्रकाशित करता है । आज्ञाचक्र के ऊपर तो शब्द सुनाई देना बन्द हो जाता है । योगो के विषय मे यही अच्छा लक्षण कहा गया है । डा० बडथ्वाल के सम्पादित पाठ का अर्थ उन्होने स्वय इस प्रकार दिया है ब्रह्मरन्ध्र (गगन शिखर) में समाधि द्वारा जो शब्द प्रकाश में आता है, मेरे विचार में गगन सिषर और गगन मण्डल को एक ही नहीं समझना चाहिए । योगी सम्प्रदाय के अनुसार शब्द का भी लय ही चरम अनुभूति है । ब्रह्मरन्ध्र में शब्द सुनाई नही देना वह अवस्था पूर्णावस्था है, सबके परे है । नमोपम उसी को कहा गया है ।

और योग का बुरा अर्थ लगानेवालो को देखकर योगी कह उठता है —

केता आवै केता जाई, केता माँगै केता खाई।
केता रूष विरष तल रहै, गोरख अनभै कासो कहै ॥
बदत गोरषनाथ कहि घू साषी,
घटि घटि दीपक (बलै) पणि पसू न (पषै) आषी।
पढि देख पडिता रहि देषि सार,
अपणी करणी उतरिबा पार ॥

योगी को भेद न करना चाहिए, अमृत वाणी बोलनी चाहिए। यदि कोई आग हो जाए तो योगी को पानी हो जाना चाहिए।

उन्मनि रहिबा भेद न कहिबा
पीयबा नीझर पाणी।
लंका छाडि पतका जाइबा
तब गुरुमुष लेवा बाणी ॥

अहकार को दण्ड दो। पाँचो इन्द्रियो का मान मर्दन करो और योगी विश्वास से कहता है —

पाया लो भल पाया लो सबद थान सहेतीथीति।
रुप सहेता दीसण लागा, तब सर्व भई परतीत ॥
अरधन्त कवल उरघन्त मध्ये प्राण पुरिस का वासा।
द्वादस हसा उलटि चलैगा तब ही जोति प्रकासा ॥
आसण वैसिवा पवन निरोधिवा, थान मान सब धन्धा।
बदन्त गोरखनाथ आतमा विचारन्त, ज्यूँ जल दीसे चन्दा ॥

ज्ञान आवश्यक तो है किन्तु क्या वह आत्मानुभूति का स्थान ले सकता है ? नही, यह तो योगी की अपनी प्राप्ति है, तभी —

षडित ग्यान मरौ क्या झूझि।
औरै लेहु परमपद बूझि।
आसण पवन उपद्रह करै।
निस दिन आरम्भ पचि-पचि मरै।

अब योगी कुण्डलिनी का आवाहन करता है —

आओ देवी वैसो। द्वादिस अगुल पैसो।
पेसत पेसत होइ सुष। तब जनम मरन का जाइ दुष ॥

योगी के लिए खाने-पीने के विशेष प्रतिरोध आवश्यक है क्योकि देह के भीतर जो कुछ पहुँचता है उसी पर उसका स्वभाव बहुत कुछ निर्भर रहता है। यह गोरखनाथ का अपने पूर्ववर्तियो से एक बहुत बडा भेद था। वे कहते हैं

अवधू मास भषत दया धरम का नास।
मद पीवत तहाँ प्राण निरास।
भाँगि भषत ग्यान ध्यान षोवन्त।
जम दरबारी ते प्राणि रोवन्त।

चालिबा पथा कै सीबा कथा, धारिबा ध्यान के कथिवा ग्यान।
एकाएकी सिध कै सग, बदन्त गोरखनाथ पूता न होयसि मन भग॥

क्योकि

एकलौ वीर दूसरौ धीर, तीसरौ षटपट चौथो उपाध।
दस पच तहाँ बाद बिबाद॥

यदि योगी जीवनमुक्त है मरजीवा है तो,

जीवता योगी अमीरस पीवता अहनिस अषडित धार
दिष्टि मधे अदिष्टि विचारिबा ऐसा अगम अपार।

और वह विश्वास फिर फूट पडता है

जिनि जाण्या तिनि षरा पहैचाण्या,
वा अटल स्यूँ लौ लाई।
गोरष कहै अमे काना सुणता,
सो आष्या देष्या रे भाई।

पद—पदो का क्षेत्र स्वभाव से ही अधिक विकसित हो सकता है क्योकि इसमे अधिक कहने की गुजायश होती है। परवर्त्ती काल मे जो पदो की भरमार दिखाई देती है उसे भक्ति काव्य की देन समझकर वास्तव मे नाथपथियो या इनसे भी पूर्व सिद्धयुगीन कवियो की देन समझना चाहिए। लोक भाषा मे जनता के अपने गीतो का प्रचलन् इनकी पृष्ठभूमि प्रतीत होता है। पदो के लिए राग और सगीत आवश्यक है। गोरखनाथ के कवित्व पर हम आगे प्रकाश डालेगे। यहाँ केवल उनके पदो का परिचय दिया जाता है।

जिस प्रकार वेदव्यास ने ऊर्ध्वबाहु पुकारकर ससार से कहा था उसी प्रकार गोरखनाथ भी ससार को सुनाते हैं —

चारि पहर आलगन निद्रा,
संसार जाइ विपिया वाही।
ऊभी बाँह गोरषनाथ पुकारै,
भूल म हारौ म्हारा भाई। (टेक)
अमावस पडिवा मन घट सूँना, सूँना ते मगलवारे।
मरणता गुँणता ब्राह्मण वेद बिचारै, दशमी दोप निबारे।
पडवा आनन्दा बीजसि चन्दा, पाचो लेबा पाली।
आठमि चौदमि व्रत एकादसी, अगि न लाऊँ बाली।

अनेक पदो मे गोरख और मछिद्र का सम्बन्ध प्रकट होता है।

गुरुदेव स्यम देव सरीर भीतरिए।
आत्मा उत्तिम देव ताही की न जाणौ सेव।
आन देव पूजि-पूजि इमहि मरिए॥
नवे द्वारे नवे नाथ,
तृबेणी जगनाथ[1]
दसवें द्वारि केदार।
जोग जुगति सार
तौ भौ तिरिये पार,
कथत गोरषनाथ विचार।

अजपा जाप की स्तुति करके आगे योगी कहता है —

रमि रमिता सौ गहि चौगान, काहे भूलत हौ अभिमान।
धरन गगन बिच नही अतरा, केवल मुक्ति भैदान। (टेक)
अर्तार एक सौ परचा हूवा, तब अनन्त एक मे समाया॥
अहरिण नाद नै ब्यद हथौडा, रवि ससि पाला पवन।
मूल चापि डिढ आसणि बैठा, तब मिटि गया आवागमन।
सहज पलाण, पवन करि घोडा, लय, लगाम, चित चवका।
चेतनि असवार ग्यान गुरु करि, और तजौ सब ढबका॥
तिल क नाके तृभवन साध्या, कीया भाव विघाता।
सो तौ फिरै आपण ही हूवा जाकौ ढूँढण जाता॥
आस्ति कहूँ ता कोई न पतीजै, बिन आस्ति (अनन्त सिध) क्यूँसीधा।
गोरष बोलै सुणौ मछिद्र हरै हीरा बीधा॥

इस प्रकार आत्मा का परमात्मा मे मिला देना ही चरम उद्देश्य है।

---

1. (क) का पाठ जगनाथ ठीक जान पडता है तृबेणी में जगनाथ नही लगता।

गुरु के बिना योग का कोई कार्य नही सधता, अतएव गुरु की नितान्त आवश्यकता है।

गुर कीजै गहिला, निगुरा न रहिला,
गुर बिन ग्यान न पायला रे भाईला ।। (टेक)
दूधै धोया कोइला उजला न होइला।
कागा कठै पहुप माल हँसला न मैला ।।
अमाजैसी रोटली कागा लै जाइला।
पूछो म्हारा गुरु ने कहाँ बैसि षाइला ।।
उत्तर दिसि आविला, पछिम दिसि जाइला।
पूछो म्हारा सत् गुरु ने, तिहा बैसि षाइला ।।

और तभी पण्डितो को वे फिर फटकार सुनाते है

पण्डित जरा जरा बाद न होई,
अरा बोल्या अवधू सोई। (टेक)

और प्रश्न उठता है कि फिर युद्ध किससे करूँ, विपक्षी तो दिखाई नही देता।

कासौं भूझौ अवधू राइ, विपष न दीसै कोई।
जासो अब भूझौ रे आत्मा राम सोई।
आपरा ही मद्द कछ आपरा ही जाल।
आपरा ही धीबर आपरा ही काल।
आपरा ही स्यध बाघ आपरा ही गाइ,
आपरा ही मारीला, आपरा ही षाइ।
आपरा ही टाटी फडिका आपरा ही बध,
आपरा ही मृतग आपरा ही कध ।।

इसलिए मूलाधार मे स्थित सूर्य को बाँधो जैसे,

बाँधौ बाँधौ बद्रा पीश्रो पीश्रो षीर,
कलि अजरावर होइ सरीर।

इस अजरावर शरीर के ज्ञान से योगी उपदेश देता है कि निर्गुण गुणहीन स्त्री को त्यागो—

निरगुरा नारी सूँ नेह करता।
झबकै रैरिए विहाणी जी ।। (टेक)
डाल न मूल पत्र नहि छाया।
बिरा जल पिगुला सीचै जी।
बिरा ही मढीया मदला बाजै।
यरा विधि लोका रीझै जी ।।

सब ससार तेरा ही गढा हुआ है, तुझे किसी ने नही गढा ।

दस औतार औतिरिया तिरीया वै परिणाम न होई ।
कमाई अपणी उनहूँ पाई, करता औरे कोई ।।
तूँ पूरण ब्रह्म पुरुष प्रिथमी का,
सूरति मूरति सारा ।
श्रवणा सुण्या न नैना देष्या,
तेरा घडणै हारा ।
तूँ तौ आप आप तै हूवा,
तूँ देष्या उजियारा ।
गोरष कहै गुरु कै सबदा,
तूँ ही घडणै हारा ।।

नाथ निरजन परब्रह्म की आरती के लिए सजते है और अद्भुत् दृश्य है —

नाथ निरजन आरती साजै ।
गुरु के सबद् झालरि बाजै ।।
अनहद नाद गगन मे गाजै, परम जोति तहाँ आप विराजै ।
दीपक जोति अषडत बाती, परम जोति जगै दिन राती ।
सकल भवन उजियारा होई, देव निरजन और न कोई ।
अनत कला जाकै पार न पावै, सष मृदग धुनि बैनि बजावै ।
स्वाति बूंद लै कलस बदाऊ, निरति सुरति लै पहुप चढाऊँ ।
निज तत नाव अमूरति मूरति, सब देवा सिरि उदबुदि सूरति ।
आदिनाथ नाती मछन्द्र ना पूता, आरती करै गोरष औधूता ।।

यही चरम लक्ष्य है, इस अगमकी आरती उतारना योगी की पूर्ण अनुभूति को प्रकाशित करता है । पदो की सख्या 62 है और उनका तथ्य वही एकागी और साम्प्रदायिक विवरण है जिसमे अधिक क्षेत्र नही ढक पाता ।

सिष्या दरसन—सिष्या दरसन अर्थात् शिक्षा-दर्शन मे सूत्र-जैसे वाक्यो से प्रारम्भ है ।

ऊँ अविगत उतपतते ऊ उतपतते आकास ।

बीच मे कहा गया है ।

अजर कथा नही वाद बिबाद । अनाहद सीगी वाइबा नाद ।[1]
सन्तोष तिलक तहाँ पद नृबाँण । ब्रह्म कवल टोपी पहिरावा त्राण ।
मन वैराग मुन्द्रा जोइ रूप । बदत गोरष ए तन अनूप ।।

---

1 (घ) का 'बजाय बा' ठीक लगता है ।

नव द्वारो पर अधिकार करके ब्रह्माण्ड मे प्रवेश पाकर असख्य दल की सेवा करनी चाहिए। वहाँ ही

बदत गोरष अविचल जाप, लियै नही तहा पुन न पाप।
सुनि ध्यान सोलह कला सपूरण माला, आपण स्वभूश्री गोरष बाला॥
(इती श्री गोरख सिष्या पढते गुणते)

प्राण सकली—प्राण सकली, अर्थात् प्राण की शृखला। प्राण सकली नानक की भी मिलती है जिसके विषय मे भी यह प्रामाणिक रूप से नही कहा जा सकता कि वह उन्ही की बनाई हुई है।

पहले गुरु को वदना है —

प्रथमे प्रणऊ गुर के पाया। जिन मोहि आत्म ब्रह्म लषाया॥
सतगुरु सबद कह्या तै बूझया। तृहू लोक दीपक मनि सूझया॥

शरीर मे ही निर्वाण पद की खोज करनी चाहिए, रूपको मे देह दुर्ग को समझाया गया है। नाडियो का सविस्तार विवरण है।

षटचक्र, कुण्डलिनी और गुरु तथा नाद, विन्दु, लय तथा सहस्रदल कमल का वर्णन करके कहते है —

नाद रह्या सरबत्र पूरि।
गगन मडल मे षोजो अवधू वस्त अगोचर मूर।

इस नगर मे (काया मे) अनेक गलियाँ है। राजद्वार पर मार्ग रोके एक सुन्दरी खडी है। वही कुण्डलिनी है। यहाँ,

पच महारिषि तहा कुटवाल, तिनकी तृया महा झूझारि।
इनहि मारै जै लागै पथा, सुदर जीतै लोक सौ कथा।
इला प्यगुला सुषमनां नाडी, छुटै भ्रम मिलै बनवारी।
पच तत्त विप अमृत बसई, गुरु बचने अमृत भया अचई।
(इति श्री गोरखनाथ विरचते प्राण सकली सरीर विचारण)

नरवै बोध—नरवै बोध अर्थात् राजा का बोध (ज्ञान)। योगी कहता है —

सुणौ हो नरवै सुधि बुधि का विचार।
पचय तत ले उतपना सकल ससार॥
पहलै आरभ घट परचा करौ निसपती।[1]
नरवै बोध कथत श्री गोरष जती॥

---

1. निष्पत्ति।

चित का सयम करो। स्तभन मोहन वशीकरण छोडो। और उपदेश का अन्त इस प्रकार होता है—

नारी सारी कीगुरी।
तीन्यू सत गुर पर हरी।
आरभ घट परचै निसपती।
नरवै बोध कथत श्री गोरष जती।
(इति श्री गोरषनाथ विरचते नरवै बोध ग्रन्थ)

आत्म बोध—आत्म बोध मे प्रारम्भ आसन से होता है —

ऊ आसण करि पदम आसण बधि।
पिछलै आसण पवना बधि।
मन मुद्रावै लावै ताली।
गगन सिषर मे होइ उजाली।।

फिर शक्ति को ऊपर उठाने का वर्णन है। अभ्यन्तर की अग्नि जलावे। पवन साध लेने से अनाहत नाद सुनाई देता है। जडी-बूटी अमर नही कर सकती हैं। और न

सौनै रूपै सीझै काया, तो कत राजा छाडै राज।
पसुवन होइ जपै नही जाप, सो पसुवा मोषि क्यु जात।

और यही नही वे लोग जो —

रिधि सकेलै रौलाणी धरै।
गुरु न कीजै मुरिष मरै।
रौलाणी आगे वैसै फूलि।
गुरु की वाचा गया जे भूलि।।

'अकल' का अनुभव जो 'अकुल' जैसा लगता है, वही सब कुछ है।

सरब निरतर भरि पूरि रहिया।
आत्मा बोध सपूरण कहिया।
पापे न पुने लिपै न काया।
आत्म बोध कथत श्री गोरषराया।।

अभै मात्रा जोग—अभै मात्रा जोग सूत्रवद्ध उपदेश है जिनमे नाथ योगी के वाह्य का आभ्यन्तर प्रतीक दिखाया गया है। जैसे, ऊ अकल पथ, अक्लि का मारग · · · पवन गुटिका ·सजम कोपीन,· · धीरज डड, · अतीत देवता · जग पलव, अमीफल।

(घ) के अन्त मे है —

सार माश्रा तत सार ।
अलष निरजन निराकार ।
(कथत श्री गोरषनाथ जोगी)

पन्द्रह तिथि—पन्द्रह तिथियो को योगी को प्रतिदिन क्या-क्या करने से प्रलय से मुक्ति हो सकती है । यही इसमे वर्णित है । प्रारम्भ है —

बदं[1] गोरष एककार ।
पन्द्रह तिथि का करहु विचार ।। (टेक)
अमावस दिढ आसरण होइ ।
आतम परचै मरै न कोइ ।।

बाहर-भीतर का एकाकार, तृबैनी स्नान, अर्थात् नाडी मिलन, चित चचलता स्थिर करना, पचतत्व की सिद्धि, षटचक्र विचार, गुणबन्ध इत्यादि के वर्णन के अनन्तर

आर्टमि अष्ट भैरौ नव नाथ ।
अनत सिधा सौ मिलै सघात ।

है । तदनन्तर सयम, गगनोपम, चन्द्र सूर्य को सम करके, सत्गुरु खोज और कध स्थिर कर लेना चाहिए ।

पन्द्रह तिथि कला की सधि,
मछीद्र प्रसादैं थिर भया बध ।
भया थिर तब आछै धीर,
अनत सिधा श्री गोरष पीर ।

सप्तवार—सप्तवार मे सातो दिन का कार्यक्रम है । पवन दृढ करना, शून्य को धारण करना, अम्बर भरना, माया बाधना, चन्द्र सूर्य सम करना, शिवशक्ति मिलन, इन्द्रिय निग्रह, शरीर शोधन, इत्यादि दिन के अनुसार बताये गए हैं ।

आदित सोधौ आवागवन । घट मे राखौ दिढ करि पवन ।।

अन्त मे,

सातो आन्था एकै रास । काला भौरा बेधै पास ।
प्यंडे प्राणी परचा भया । सप्त बार श्री गोरख कह्या ।।

---

1. (क) मे बदौ है ।

मछीन्द्र गोरख बोध

मछीन्द्र गोरख बोध मे गुरु शिष्य सवाद है। गोरख पूछते है .

गोरखोवाच स्वामी तुम्हे गुरु गुसाई अम्है जु सिख।

(सबदि एक पूछबा)

दया करि कहिबा मनहि न करिबा रोस

आरभि चेला कैसे रहे। सतगुर होइ सो बूझया कहै।

सन् 1937 मे डा० मोहनसिह ने गोरख बोध का अनुवाद अपनी पुस्तक मे छपवाया था। यह अनुवाद उन्होने पट्टी की हस्तलिखित प्रति के आधार पर किया था।

प्रश्नो और उत्तरो की झडी होने पर भी प्रस्तुत ग्रन्थ अत्यन्त महत्वोत्पादक और सुन्दर भी है। अवधूत कहाँ रहे, क्या करे, क्या खाए इत्यादि योग के गहन प्रश्न किये गए है। प्रत्येक का विवरण देने का अर्थ समस्त पुस्तक को फिर से लिख जाने के समान होगा। लय योग पर बहुत बल दिया गया है।

सहज, सयम, पवन, प्राण, वाणी तथा प्रत्येक योग सम्प्रदाय मे प्रयुक्त वस्तु का इसमे उल्लेख है। गोरख बोध एक सक्षिप्त शब्द कोष के समान है।

गोरख—स्वामी कथ उतपन्धो नाद, कथनाद सम्भवते।

कौण ले थापते नाद कथ नाद विलीयते॥

इसके पूर्व ही गोरख ने पूछा था

स्वामी कहाँ बसै चद कहाँ बसै सूर।

कहाँ बसै नाद ब्रिद का मूर।

कहाँ होइ हसा पीवै पाणी,

उलटी सक्ति आप धरि आणी।[1]

मछिन्द्र ने कहा—

अवधू उरधै बसै चद अरधै बसै सूर,

हिरदै बसै नाद बिंद का मूर।

गगन चढि हसा पीवै पाणी।

उलठी सक्ति आप घर आणी।[2]

---

1 तथा 2 (ब) में सक्ति के स्थान पर सुरति है। यहा ठीक लगता है, क्योंकि जब हमा ने गगन में चढकर पानी पी लिया, प्राण पवन चढकर अमृत पा गया, तब सुरति ने अपना वास्तविक घर पा लिया। सक्ति अर्थात् कुडलिनी कैसे लौट आई।

किन्तु वुडरौफ ने प्रश्न उठाया है कि चढती कुडलिनी का एक छोर सदैव मूल स्थान में ही रहता हे। प्रश्न का अभी उत्तर नही दिया जा सका है।

अब नया प्रश्न सुनकर मछिन्द्र ने कहा—

अबुध ऊकार उतपत ते नाद, नाद सुनि समिभवते ।
स्रवन ले थापते नाद, नाद निरजन विलीयते ।।

गोरष —

स्वामी नादेन नादिबा बिदेन विदबा गगनेन लाइबा आसा ।
नाद बिंद दोऊ न होइगा, तब प्रान का कहाँ होइगा बासा ।।

मछिन्द्र .—

अवधू नादे भी नादिबा, बिदे भी बिदबा,
गगने भी लाइबा आसा नाद बिद दोऊ न होइगा ।
तब प्राण का निरन्तर होइगा बासा ।।

समाधि, उपाधि, सुषुप्ति, जागृति, मनसा, आहार इत्यादि पर प्रश्न करते हुए गोरष पूछते है :—

स्वामी कौण सौ जोगी कैसै रहै । कौण सौ भोगी कैसै लहै ।।
सुष मैं कैसै उपजै पीर । तामै कौन बधावै धीर ।।

मछिन्द्र —

अवधू मन जोगी जै उनमनि रहै । उपजै महारस सब सुष लहै ।।
रस ही माहि अषडित पीर । सतगुर सबद बधावै धीर ।।

और गोरख प्रश्न करते है कि स्वामी चक्रज्ञान कहैं। कहाँ कध स्थिर होता है, कहाँ अगोचर बध, हस निरोध, मन प्रमोध, स्वाद प्राप्ति तथा कहाँ समाधि होती है ? उत्तर मे क्रम से यह चक्र है—मूल चक्र, गुदा चक्र, मणि चक्र, अनहद चक्र, विशुद्ध चक्र तथा चन्द्र चक्र। और इसको जान कर गोरख अन्त मे कहते है —

ए षट चक्र का जाणै भेव ।
सो आपै करता आपै देव ।
मन पवन साधै ते जोगी ।
जुरा पलटै काया होइ निरोगी ।।

यह अन्त मे गोरष साराश निकालकर सुनाते है । डा० मोहनसिह ने 'पट्टी' के पाठ को अधिक महत्त्व दिया है जिसके अनुसार मूल, गुदा, नाभि, हिरदै, कठ, निलाट (अर्थात् ललाट) चक्र हैं, इससे कोई भेद नही पडता । चक्रो का स्थान पहले दी हुई चक्र-तालिका से एक-सा ही पडता है ।

रोमावली

रोमावली मे प्रश्नो का उत्तर है। कही-कही 'कौरग कौरग' करके प्रश्न पूछा गया है। इसमे गद्य का प्रभाव है। बहुत न कहा जाय तो सम्भवत. यह अत्युक्ति न होगी कि हिन्दी मे यह मुक्त छद का पहला प्रयोग है

सत पिता रज माता तम करि गाडी पाई,
लोह मास तुचा नाडी ये चारि धात माता की बोलिये,
नीरज हाड गूद्र ये तीन धात पिता की बोलिये,
ए सप्त धात का शरीर बोलिये।

प्रश्न है—हिद पीर जिद पीर ए बोलिये घट भीतरि।
ते कौरग कौरग

उत्तर—हिद पीर बोलिये मन, जिद पीर बोलिये पवन।

फिर आगे प्रश्न है —

चारी पीर बोलिबै घट भीतरि। ते कौरग कौरग।

उत्तर है—मन मछिन्द्रनाथ, पवन, ईश्वरनाथ, चेतना चौरगीनाथ,
ज्ञान श्री गोरषनाथ।

इसके अनन्तर स्वेदज, अंडज इत्यादि की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला गया है। शरीर के भीतर क्या है, प्रश्न करने पर उत्तर मिलता है —

सेतरज बोलिये हाड, जेरज[1] बोलिये नीरज, अडरज बोलिये नेत्र। उदीरज बोलिये रोमावली।

और अन्त मे शिष्य पूछता है

सोलह कला चन्द्रमा की ताकै गुरग घट भीतरि राषै।
ते कौंरग कौरग।

गुरु बताते है —

साति, नृवर्त (निवृत्ति), क्षिमा, नृमल, निहचल, ग्यान, सरूप, पद, नृवारग, नृविष (निर्विष), निरजन, अहार, निद्रा, मैथुन, बाई, अमृत—येसोलह कला चन्द्रमा की बोलिये।

ए चारि कला सूरज की साधै तो सोलह कला चन्द्रमा की पावै।
एती एक रोमावली ग्रथ जोग कथित श्री गोरषनाथ।

ग्यांन तिलक

ग्यान तिलक का कुछ परिचय पहले दिया जा चुका है। इसमे शब्द की महिमा गाई गई है। अलख पुरुष मे समा जाने को अत्यन्त आवश्यक माना गया है।

---

1. जरायुज।

ऊ सबदहि ताला सबदहि कूची सबदहि सबद भया उजियाला।

तथा

अलख पुरुप मेरी दिष्टि समाना, सौसा क्या अपूठा।

जब लग पुरुष तन मन नही निपजै, कथै बदै सब झूठा।

शिव शक्ति मिलन से अमृतपान होता है। सतगुर, आपा सुरति, परचा (परिचय)[1] भग निदा, आशा तृष्णा नाश, गगन का वर्णन करके नाथ कहता है।

तूँबी मे तिरलोक समाणा, तिरबैनी रवि चदा,

बूझौ हौ कोई ब्रह्म गियानी अनहद नाद अभगा।

आध्यात्मिक आनन्द तो ऐसे मिलता है जैसे —

अजन मॉह निरजन मेट्या तिल भुष मेट्या तेल।

मूरति माहि. अमूरति परस्या, भया निरन्तर षेल।

जहाँ नही तहाँ सब कुछ देष्या,

कह्यॉ न को पति आई।

दुबिधा भाव तबै ही गइया,

बिरला पदा समाई।

शून्य मे यह प्राप्ति है, पद विरल मिले तब तो द्वैत मिटे। योगी कहता है

दिषणि हमारी डीबी पाकै,

अगनि बलै मुलतान।

ऐसे हम जोगेस्वर निपना,

प्रगट्या पद निरबान।

सहज की अगीठी मे खाना पक रहा है, कोई साधारण बात नहीं है, तभी

बाफ न निकसै बूंद न ढलकै,

सहज अँगीठी भरि भरि राधै,

सिध समाधि योग अभ्यासी

तब गुरु परचै साधै।।

धैर्य स्तम्भ है, डोरी ध्यान है, आस्मान मे समा गया है, अटल है वह दुलीचा, वहाँ लग रहा है गोरख का दरबार। सब से परे—

धीरजि थभ जडोरि धुनि,

समाना असमान।

अटल दुलीचा अषै पद,

जहाँ गोरष का दीवान।।

इति ग्यान तिलक।

---

1. परीक्षा।

पंचमात्रा

पच मात्रा जिभ्या इन्द्रिय बाँधकर योग मे समाने से प्रारम्भ होती है,

बोउ (ऊ) अनादि बोलन्त षरतर पथ (जिभ्या इन्द्री दीजै बन्ध) इसमे भीतरी सुधार की आवश्यकता पर बल दिया गया है, बाहरी दिखावे का विरोध है

मन मूँडा तो मस्तक मूडी। नही तर पडौ नरक की कूडी।
ये तो येक अवधू पच तत्त मात्रा का विचार।
बदत गोरष दसवे द्वारि।

आगे योगी कहता है

बीस्न बीस्न करै सब कोय, बिना निरजन मुकति न होय।
गोरष बिस्न लागा बाद, गोरष लेर बजाया नाद।
बीस्न कीया मृघ का रूप, मार्या मृघ ध्याया अवधूत।

शृगीनाद गगन मे गूँजता है, चन्द्र गगन मे समा जाता है। पाँचों इन्द्रियो का पूरा स्वाद होने पर अवधू सीगी नाद करता है। गगा-यमुना को मिला मेरु पर चढाने से ब्रह्म-ग्यान होता है, योग तो आदि धर्म है।

बारा बरस का मुवा समाणा श्री गोरषनाथ जगाया।
चौसठि जोगणि भ्यष्या पूरै, अनत सीधा आदि पत्र पाया।

मछिन्द्र प्रसाद से गोरष जती कहता है—

जो जोगी पच मात्रा को बूझ ले तो सब देवता उसे पूजे

जो इसे पढे सो—आवागवण बिव्रजते अमरलोकी सगछते।

इति श्री गोरपनाथजी की पचमात्रा ग्रथ जोग शास्त्र सपूरण समाप्त।

परिशिष्ट-1 (क)

(क—1) गोरष गणेश गुष्टि

गणेश और गोरखनाथ का सम्वाद होता है। प्रश्नकर्ता गणेश है, उत्तर देनेवाले गोरखनाथ। गणेश पूँछै गोरख कहै—

तुम्है स्वामी कहाँ थे आव्या, कहा तुम्हारा नाम।
अम्है निरतरि थै वर आव्या, जोगी अम्हारा नाम।

गणेश पूछते है कि आप कौन जोगी है, गोरखनाथ ने उत्तर दिया है:—

अम्हे निरजन जोगी अतीत गुर चेला।

गणेश पूछते है, स्वामी पचतत्त्व क्या है ? पच्चीस प्रकीर्ति क्या है ? पृथ्वी, अप, तेज इत्यादि का वर्ण क्या है ? स्वाद, स्वभाव, घर इत्यादि के विषय की जानकारी के अनन्तर गणेश पूछते है कि कथित पति की पत्नी कौन है ? गोरष कहते है

अवधू प्रिथी की भारिज्या आसा धनवती ।
अप की भारिज्या मनसा चोरटी ।
तेज की भारिज्या कलपना चडाली ।
बाय की भारिज्या सक्या शीलवती ।

गणेश ने पूछा कि किसके क्या गुण हैं ?

गोरख ने उत्तर दिया

अवधृ प्रिथी मूल गुणी । अप बृध गुणा । तेज रूप गुणा ।
बाय प्रमलगुणा । आकाश मैथन गुणा ।

गणेश—तौ स्वामी, पच तत्त की कथ उतपती, कथ षपती ?

गोरष—

अविगत उतपना ऊ, ऊ उतपदिते आकास, आकास उतपनी बाई,
बाई उत्पन्या तेज, तेज उत्पन्या तोया, तोया उत्पनी भट्टी,
भट्टी ग्रासत तोया, तोया ग्रासत तेज, तेज ग्रासत बाई,
बाई ग्रासत आकास, आकास ग्रासत ऊ, ऊ ग्रासतते अविगत,
अविगत गति रहेत, आवते न जावते, एव पच तत पचीस ।

प्रकीरति का भेद बोलिए ।

और ग्रन्थ का अन्त इस प्रकार होता है
निरजन देवता, पाणी का जामन, अगनि का पुट, पवन का थभा,
सुरति निरति सोध्या, सुनि मैं समाया, अवगत सरुपी एव उचितम्,
पाये न लिप्यते, पुन्थे न हारते[1] जोगारम्भे भवे सिधा ।
आवागवन निवर्त्तते । ऊ नमो सिवाई उो नमो सिवाई श्री स्यभुनाथ पादुका नमस्तुते ।

(क—2) ज्ञानदीप बोध (गोरष दत्त गुष्टि)

गोरख और दत्तात्रेय स्वामी का परस्पर सम्वाद है । यहाँ गोरष चेला है और स्वामी दत्तात्रेय ।

गोरष—

स्वामी कि तुम्हैं ब्रह्मा कि ब्रह्मचारी,
कि तुम्है बामण पुस्तक कि डडधारी ।
कि तुम्है जोगी कि जोग जुगता,
कौण प्रसादै रमौ छछद मुक्ता ।

---

1. (ड) प्रति में इस चरण के स्थान पर "पठते हरते पाप श्र त्वा मोक्ष दायक" है ।

दत्तात्रेय—

अवधू न अम्है ब्रह्मा न ब्रह्मचारी,
न अम्है ब्राह्मण पुस्तक न डंडधारी।
न अम्है जोगी न जोग जुगता,
आप प्रसादै रमौ छछंद मुक्ता।

गोरख ने पूछा—तुम्है कौण कहाँ थै आया।

दत्त ने कहा —

अवधू होता गुपत गुपत थै प्रगट, रहता पुरुष की छाया।
दत्त कहै सुणौ हो गोरष, हम गैबी पुरस गैब थै आया।।

गोरख—

स्वामी अजर व्यद असाध, बाई, अप्रबल विघ्न की माया।
गोरष कहै सुणो हो दत्तातृये, क्यूँ सीझति जल व्यब की काया।।

दत्तात्रेय—

अवधू कन्द्रप न बाई अप्रबलन माया,
आकार निराकार सूषिम निकाया।
जलो न जलबिंबो दरपनो न छाया,
दत्त न गोरष काया न माया।।

आवागमन, माता-पिता, गुरु उपदेश, आसन, विश्राम, घर, ठाव, मुक्ति दु ख, नश्वर, अमर, सूक्ष्म, स्थूल, डाल, मूल, गुर, चेला, ब्रह्मकमल, उन्मन, कला, त्रिकुटी ताला खोलना, नाद, बिन्दु, कटक, ब्रह्मकपाट, इत्यादि पर अनेक प्रश्न गोरखनाथ एक-एक करके करते हैं और दत्तात्रेय उत्तर देते है।

दत्तात्रेय कहते है —

अवधू दत्त जु लागा तत्त सौ तत्त दत्त ही माहि।
दत्त तत्त परचा भया तब दूजा कहणा नाहि।।

गोरख सुनकर कहते है :—

स्वामी त्वमेव दत्त, त्वमेव देव, आद मधे तुम्हे जान्या भेव।
तुम्ह नारायण तुम्ह कृपाल, तुम्ह हो, सकल विस्व कै पाल।।

अब दत्तात्रेय वदना करते है —

स्वामी तुमेव गोरष तुमेव रछिपाल,
अनत सिधामाही तुम्हैं भोपाल।
तुम हो स्यभू नाथ नृवाण,
प्रणबे दत्त गोरष प्रणाम।।

इस पर गोरखनाथ अन्त मे कहते है —

स्वामी दरसरण तुम्हारा देव,
आदि अत मधि पाया भेव।
गोरष भरणई दत्त प्ररणाम,
भोग जोग परम निधान ॥

येव ग्यान दीप बोध सवादे जोग सास्त्र सपूररण समाप्त, ऊ नमो सिवाये गुरु मछीन्द्र पादुका नमस्तेते।

(क—3) महादेव गोरख गुष्टि

गोरखनाथ और महादेव का सवाद है। इसमे प्राय वही है जो अन्य ग्रन्थो का तथ्य है। सूत्र अधिक है। किसकी उत्पत्ति किससे हुई है, यही बताया गया है। महादेव कहते है। गोरख प्रश्न नही करते, केवल उपदेश सुनते है।

ईश्वरोवाच ऊ अविगत उतपते इच्छा, इच्छा उतपते आकास, आकास उतपते वाय, वाय उतपते तेज, तेज उतपते तोय, तोय उतपते मही।

इसके अनन्तर आकास, वायु, तेज, आप इत्यादि की पाँच-पाॅच प्रकृतियाँ बतायी गई है। कौन-सी प्रकृति का अनुसरण करने वाला किस प्रकार पैदा होता है और क्या भोगता है—यह इसमे उल्लिखित हैं।

5 प्रकृति, 5 घर, 10 द्वार, 5 अहार, 5 व्यवहार, 5 वर्ण, 5 खानि[1] मे 84 लाख जीव योनि घूमते है। इस प्रकार महाग्यानकर्मपटल, प्रथम अध्याय समाप्त होता है। दूसरा अध्याय ग्यान पटल है। इसमे बुद्धि, सहज, अहकार, प्रारण इत्यादि पर प्रकाश डाला गया है। तब,

जोगेस्वर जीव सीव एक भवति, परम शून्य भावे स्थिति, पारब्रह्म भवे लीन, सत्य सत्य च वदाम्यहृ, तत्वग्यान श्री शभुनाथ अकथ कथित सुनो हो गोरष अवधूत परम जोग सप्रापित जोगी, ईश्वरो कथत महाग्यान ग्यान इति इन्द्रादि बोलिये।

अन्त मे यहाँ सस्कृत का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है जीव और शिव का एकाकार ही मुख्य वस्तु है। परब्रह्म मे लय सबसे बडी बात है।

(क—4) सिस्ट पुरारण

इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। तुलना देकर बताया गया है कि कौन किससे बढकर है। अभिव्यक्ति अभावात्मक है कि इससे बढकर वह नही है। रूपको का भी प्रयोग भी बीच-बीच मे आधिक्य से मिलता है।

---

1. योनि।

ऊ एक उपराति लेष नाही।
दोय पाषै सिस्टि नाही।
आपा पाषै परचा नाही।
× × ×
माता उपराति जन्म नाही।
गर्भ उपराति नरक नाही।
षलत उपराति हारिण नाही।
× × ×
काया उपराति रतन नाही।
सच उपराति शास्त्र नाही।
अजप उपराति जाप नाही।
अघोर उपराति मत्र नाही।
नारायण उपराति इष्ट नाही।
निरजन उपराति ध्यान नाही।

प्रस्तुत रूप (घ), (ङ) और (अ) के आधार पर दिया गया है। क्रम और सख्या मे प्रत्येक प्रति मे परस्पर भेद है।

(क—5) दया बोध

दया बोध का भी उल्लेख सेवादास की ही रचना के रूप मे हो चुका है। योगी कहता है —

आओ सिद्धौ षोज बताऊ।
आदिनाथ का पूत कहाऊ।

योगारम्भ के लिए पहले अपने भीतर दया उपजाओ। हिसा को छोड दो। अविनाशी पुरुष मे मन लगाओ।

रिधि छाड्या सिधि पाइऐ, सिधि सकट के हाथि।
छाडौ सकल अकल कू ध्यावो, यो कथत जती गोरपनाथ॥

वहाँ चलने का विचार करो, जहाँ अगम अगोचर—

दीपक एक अषडित बिन बाती।
तहाँ जोगेस्वर थापना थापी॥
अगम अगोचर सकल ब्रम्हड।
ता दीपग कै चरण न प्यड॥
सिषा न नैन सीस नहिं हाथ।
सो दीपग देख्या जती गोरषनाथ॥

ता दीपक कै डाल न मूल, ता दीपक कै कली न फूल।
ता दीपक कै रग न रूप, ता दीपक कै छाह न धूप।
ता दीपक कै सबद न स्वाद, ता दीपक कै विद्या न वाद।
ता दीपक कै मोह न माया, सो दीपक सूनै सून समाया।

शून्य मे शून्य लय हो गया। कुछ भी शेष नही रहा। चरम अनुभूति हुई। प्राप्तव्य प्राप्त हुआ।

(क—6) कुछ पद

(ड) के आधार पर तीन पद दिये गए है।

प्रथम पद—

आदि नाथादि पार ब्रह्म ऊ शिव सकती।
नाद बिद ले काया उतपती।
नाद बिद रूपी बोलिऐ ऊ कार।

तथा

आतमा झूझ जती गोरषनाथ किया।
ससार बिणास्या आप जिया॥

द्वितीय पद—

झूझति सूरा बूझति पूर अमर पद ध्यावत गुरु ग्यान बका।
दल कौ मारि जजाल कौ जीति ले, निर्भय होइ मेटि ले मन की सका॥

तथा

घटहिं मे पैसि कर कूप पानी भरै, तद पाइ परि पुरुषा आप उजालै।
ग्यान कै प्रगटे श्री स्यभूनाथ पाया, अकल अकथ जती गोरषनाथ ध्याया।

तीसरा पद—

भूल्या सो भूल्या बहुरि चैतना, ससा के लोहे आपा न रेतना।

तथा

अवधू सिद्धा पाया साधक पाया ते उतरिया पार।
कथत जती गोरषनाथ जेते न जानत बिचार, ते जलि भये अगार।

तीनो पदो मे सिद्ध-पथ की ओर इगित किया गया है। यह सहज नहीं है। गोरखनाथ ने कोई आसान काम नही किया है। ऐसा तो बिरले ही कर पाते हैं।

परिशिष्ट-2 (ख)

(ख—1) सप्तवार नवग्रह

सप्तवार नवग्रह मे सातो वार और नौ ग्रहो को जीतना योगी के लिए बताया गया है।

गोरष जोगी कथै विचार ।
ये तत जीतै सातो वार ।। टेक ।।

अत मे सब राह बताकर कहते है—

वेद पुरान पढै चित लाइ ।
विद्या ब्रह्म कथ थिरि थाइ ।
मछिद्र प्रसादै जती गोरष कहै ।
सप्तवार कोई बिरला लहै ।

वास्तव मे सत्य तो केवल इतना है—

आदित आष्या सोम श्रवण, मगल मुष परवाण ।
बुध हिरदै बृस्पति नामी सुक्र ते इन्द्री जाण ।
शनि गुदा वाय राह ते मन केत ते नासिका रहै ।
सप्तवार नवग्रह देवता काया भीतरि श्री गोरष कहै ।

अर्थात् साराश यह है कि जो ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्ड मे है ।

(ख—2) व्रत

गुरु-मुख से प्राप्त भेद, सतोष, सेवा, दया, ब्रह्म की लगन, ऐसे व्रत योगी को रखने चाहिएँ । एक—जो इन्द्रिय ग्रहण करे । दो—मुख राम कहै । तीन—झूठ न कहै । चार—दया मन मे रखै । असली तो यह 4 व्रत हैं, बाकी संसार का व्यवहार है ।

इन व्रत समि व्रत नहिं कोई । वेद अरु नाद कहैं मत दोई ।
सील व्रत सतोष व्रत, छिमा दया व्रत दान ।
ये पाचो व्रत जो गहे, सोई साधु सुजान ।
इन व्रता का जाणै भेव ।
आपै करता आपै देव ।
मन पवना लै उनमन रहै ।
एते व्रत गोरषनाथ जी कहै ।

यहाँ भी बाहरी व्रत की नही, भीतरी व्रत की अधिक आवश्यकता दिखाई गई है ।

(ख—3) पंच अग्नि

शरीर मे पॉच प्रकार की अग्नि हैं—

ऊ मूल अगनि का रेचक नॉव ।
सोषि लेह रक्त पीत अर ऑव ।

बाकी चार अग्नि निम्नलिखित है—

भुयगम अग्नि, ब्रह्म अग्नि, काल अग्नि, रुद्र अग्नि ।

इन अग्नियो का शरीर मे क्या-क्या काम है यह भी बताया गया है—

पच अग्नि भरि पूर रहै।
सिध सकेत श्री गोरष कहै।
पूरिको पीवत वायु, कुभ को काया सोधन।
रेचको तजत विकार, त्राटिको आवागवरण विवरजित।
सिध का मारग कोई साधू जाण।
पच अगनि श्री गोरषनाथ वषाणँ।
पाचो अगनि सपूरण भई।
अनत सिधा मधे जती गोरष कही।
। इति ।

(ख—4) अष्ट मुद्रा

शिष्य पूछता है—

स्वामीजी, अष्ट मुद्रा बोलिये घट भीतरि, ते कौरण कौरण ?

गुरु मुद्रा का स्थान, कर्म, गुरण बताते है।

अवधू मद्री मध्ये मूलनी मुद्रा, काम त्रिष्णा ले उतपनी काम्।

यह काम तृष्णा को सम करने से होती है। इस प्रकार मूलनी के अतिरिक्त मुद्राएँ ये है—

जलश्री, षीरनी, षेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचरी, उन्मनी।

समो कृतवा मस्कृत का बिगडा रूप इस प्रकार है—

ब्रह्माड असथानि उनमनी मुद्रा, परम जोति लै उतपनी।
परम जोति समो कृतवा, मुद्रा तो भई उनमनी।
यती अष्ट मुद्रा का जाणँ भेव, सो आपै करता आपै देव।
इति अष्ट मुद्रा कथन्त श्री गोरषनाथ जती सम्पूर्ण समापत सिवाय।

(ख—5) चौबीस सिद्धि

शिष्य पूछता है—

चौबीस सिद्धि बोलिये, प्रिथी कूँ विषै ते कौरण कौरण ?

गुरु 24 सिद्धि और उनके गुरण बता जाते है। अनूमा सिद्धि (अणिमा), महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति (प्राकाम्य), प्रकाशक, असत्वा, आवस्या तथा अनेक। किन्तु अन्त मे कहते है कि यह सब ब्रह्मज्ञानी के तो आडे आती है इन्हे तो आने पर भी गुरु प्रसाद से त्याग दे। जोगेस्वर तो वही है जो ब्रह्मज्ञानी है।

बल अपार जती गोरखनाथ समभावै।
यती चौबीस सिद्धि त्यागै। सोइ परम ज्योति कूँ पावै।

(ख—6) बत्तीस लछन

ऊपर हम बत्तीसो लक्षणो को गिना आये है। यहाँ उनके दुहराने की आवश्यकता नही। चार-चार गुण एक-एक परिचय अथवा परीक्षा के अन्तर्गत है। कुल मिलाकर बत्तीस है।

एती अष्टाग जोग पारछ्या, भगति का लछिन।
सिधा पाई साधिका पाई, जे जन उतरे पार ॥

(ख—7) अष्ट चक्र

शिष्य पूछता है—

ऊ गोरष देव अष्ट चक्र बोलिए घट भीतर, ते कौण कौण बोलिए ?

गोरखनाथ कहते हैं —

आधार, द्रिष्ट, मणिपुर. अनहृद, विसुध, अगनि, गिनान,
सुछिम, आठ चक्र है। दल, सख्या, स्थान भी बतलाते है।

ए अष्ट कमल का जाणौ भेव।
आपै करता आपै देव।

इति अष्ट चक्र कथत जती गोरषनाथ सम्पूर्ण।

(ख—8) रह रासि (अर्थात् रहस्य विचार)

ऊ आदेस आदेस अलष अतीत।
तदा न होती धरती न आकास।

तब शभु से हमारी उत्पत्ति हुई। माता ने दस मास का भार नही लिया। पिता ने आचार विचार नही। योनि से नही आये, न नाभि कटाई। गोरषराई सबके परे अनुपम शिला के नीचे बैठे है। फिर योगी कहता है कि तुम वहाँ नही पहुँच सकते हो। वह स्थान तुम्हारे लिए बहुत दुर्गम है।

तुम तो दमडी चमडी का सग्रह करो, गुर का सबद ले ले दोजिग भरौ।
गुप्ती चक्र चलावो हथियार, पडित बुद्धि बहोत अहकार ॥
ऊभा ते सिध बैठाते पापाण, श्री गोरषनाचा परमाण।
अनन्त सिधा मे रहिरास कही, गोदावरी के मैले ऐसी भई ॥

। इति ।

परिशिष्ट-3

परिशिष्ट 3 का उल्लेख ऊपर हो चुका है। अधिक महत्त्वपूर्ण नही समझ कर डा० बडथ्वाल ने पदो की केवल प्रथम पक्तियो को दिया है। अत उनके विषय मे कुछ कहा नही जा सकता। प्रथम पक्तियाँ ये है—

1. अवधू जाप जपो बनमाली चीन्हौ।
2. अवधू बोल्या तत्व विचारी।

3 आबिलियो थल मौरीयो ।
4 आवौ नै जोसी जोवौ विचारी ।
5 आवौ भाई घरि घरि जावौ ।
6. ऐसा रे उपदेस दापै श्री गुर राया ।
7 ऊ नमो सिवाय स्वामी ऊ नमो सिवाय ।
8 गुरु कीजै गहला निगुरा न रहिला ।
9. गोरख बालूडा बोलै सतगुर बाणी ।
10 गोरख कहै सुनो मछिन्द्र ।
11 गोरख गोपाल लौ ।
12 गोरप जोगी तोला तोलै ।
13. च्यारि पहरि आलिगन निन्द्रा ।
14. तत बणिजीलो तत बणिजीलो ।
15 तत बेली लो तत बेली लो ।
16. नाथ बोलै अमृत बाणी ।
17 पूछौ पडित ब्रह्म गियान ।
18 बदत गोरषनाथ दसवै द्वारै ।
19 बदत गोरषनाथ परसिन्न केदार ।
20. बाधौ बछरिया पीवो पीवो षीर ।
21 बोल्या गोरष घर जोई ।
22. मनसा देवी व्योपार बाँधौ ।
23 मेरा गुरु तीन छद गावै ।
24 म्हारा रे बैरागी जोगी ।
25 रमिरै रमिता यूँ चौगान ।
26 सरवारे सखा त्रिभुवन थे गरवा ।
27. सोनात्थी रस सोना त्यो ।

स्पष्ट है कि अनेक पद पहले आ चुके है । इनके नीचे तिलक है, जिनके विषय मे आगे कहा जायगा ।

सक्षेप मे गोरखनाथ के प्राप्त हिन्दी ग्रन्थो का यही परिचय है । पट्टी जैन मन्दिर (पजाब) की हस्तलिखित प्रति मे गोरख गोष्टि, महादेव गोरष सम्वाद, ग्यान पटल (द्वितीयोध्याय), पच मात्रा, पच अग्नि, अष्टाग जोग रोमावली इत्यादि ग्रन्थो का मिलान करने से प्रतीत हुआ कि उनका स्वरूप कुछ प्राप्त सकलित रचनाओ से दूर का नही है। केवल पाठातर है। गोरषनाथ का एक पद कुछ 'सलोकु' कुछ 'चौपाई' डा० मोहनसिंह ने भी अपनी पुस्तक मे दिये हैं ।

जिस प्रकार भक्त कवियो ने एक ही बात को बार-बार दुहराकर कहा है, उसी प्रकार इन ग्रन्थो मे भी आपस मे बहुत अधिक भेद नही है। तथ्य उपमा रूपक, वर्णन—प्राय सब ही एक-से दिखाई देते है। किन्तु फिर भी इस कविता का इतिहास मे एक विशेप स्थान है क्योकि इसका प्रभाव अनेक सम्प्रदायो पर अनेक रूप से पडा है।

भाषा

गोरखनाथ की भाषा के सम्बन्ध मे विद्वानो मे बहुत मतभेद है जिसके कारण उनके समय को निश्चित करना भी बहुत कठिन दिखाई देता है। निम्न-लिखित बाते भाषा के सम्बन्ध मे प्रगट हैं।

1. भाषा अन्य सिद्धो की कविता-जैसी नही है।
2 सस्कृत का प्रयोग अपने भ्रष्टरूप मे भी है।
3 अनेक बोलियो का उसमे पुट मिश्रित है।
4. कही-कही उर्दू फारसी के भी भ्रष्ट रूप मिलते हैं।
5. भाषा सधुक्कडी है।

यहाँ उनके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं —

1 राहुलजी ने 'हिन्दी-काव्य-धारा' मे तद्भव-प्रधान अपभ्रश को तत्सम रूप देकर तुलनीय रूप मे उपस्थित किया है। गोरखनाथ की भापा के लिए उन्हे इसकी आवश्यकता नही पडी। क्योकि वह बहुत परवर्ती भापा है।

सरहपा की दो पक्तियाँ तद्भव-रूप मे

जइ णग्गाविअ होइ मुत्ति, ता सुणह सिआलह
लोम उपाडण अत्थि सिद्धि ता जुवइ णिवम्बह।

तथा गोरख के समकालीन कण्हपा की किन्ही दो पक्तियो के असली रूप मे

लोअह गब्ब समुब्बहइ हउँ परमत्थें प्रवीण।
कोडिअ मज्झे एक्कु जइ, होइ णिरजण लीण।

राहुल के हाथ जाकर इस प्रकार दिखाई देती है—

यदि नगाये होइ मुक्ति तो शुनक शृगालहुँ।
लौम उपाटे होइ सिद्धि तो युवति नितम्बहुँ।

तथा

लोगा गर्व समुव्द है हौं परमार्थ प्रवीण।
कोटी मध्ये एक यदि होइ निरजन लीन।

अब गोरखनाथ की कोई दो पक्ति चुनकर देखिये —

षाये भी मरिये अणषाये भी मरिये।
गोरष कहे पूता सजमि ही तरिये॥

भेद स्पष्ट है। गोरखनाथ की भाषा राहुलजी वाले रूप के समीप है। अर्थात् तत्सम-प्रधान है।

2 इसके कुछ उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। विशेषतया सप्तमी का तथा द्वितीया का प्रयोग बहुधा मिल जाता है।

3 इसके अतिरिक्त हिन्दी के अनेक रूप उसमे मिले हुए दिखाई देते है। जाइवा, गाइबा, से लेकर करता, कथता, तथा जोइ, होइ सबकी बहुतायत है, जिसको देखकर रूप स्थिर करना अत्यन्त कठिन दिखाई देता है। यहाँ दो-एक उदाहरण देने से ही स्पष्ट हो जाएगा कि गोरषवाणी भी स्वय एक गोरखधन्धे के समान है।

खडीबोली-प्रयोग—

अगम अगोचर ऐसा, (पृष्ठ 1), माया का भोग, (पृष्ठ 16)
दषिणी जोगी रगा चगा पुरबी जोगी बादी।
पछमी जोगी बाला भोला सिध जोगी उतराधी। (पृष्ठ 16)

राजस्थानी-प्रयोग—

सुणि गुणवता सुणी बुधिवता, अनत सिधा की वाणी।
जागत रैणि विहाणी। (पृष्ठ 36)
नीझर झरणा अमीरस पीवणा, (पृष्ठ 58) बणिजीतथौ।
माहरा रे बैरागी जोगी (पृ० 105)
मूलम हारो म्हारा भाई (पृ० 86)

ब्रज भाषा-प्रयोग—

निहवै नरनै भए निरदद। परचै जोगी परमानद (पृ० 6)
धन जोबन की करै न आस। चित्त न राखै कामनि पास (पृ० 7)
तथा जोइ ने मिलणा और।

नग्रे के से प्रयोगो से पजाबी का प्रभाव दिखाई देता है। पुरानी बगाली का प्रयोग, एतै कछू कथीला गुरू, सबै भैला भोलै। सर्व रस षोईला गुरू बाघनी चै बोलै। भाइला जाइला इत्यादि प्रयोगो मे भोजपुरी प्रभाव प्रगट है। पथाल नी डीबी सुनि चढाई' तथा सतगुरि अम्हे, परणाव्या मे गुजराती का प्रभाव है। विद्वानो का मत है कि नैपाली के कुछ प्रयोग भी गोरखवाणी मे मिल जाते है।

4 रिजक रोजी सदा हुजूर, (पृ० 54)। दरवेस, दर, अलह (पृ० 61) पैकपर (पृ० 72)।

5 इमके उदाहरण देने की आवश्यकता नही। पुस्तक मे बिखरे पडे हैं।

6 बहुत कम है।

साराश यह है कि वस्तुत यह भापा उस युग की कदापि नही है जिनमे गोरखनाथ हुए थे। बहुत-से लोग उन्हे 12वी शती का मान लिया करते हे किन्तु तब भी यह निस्सदिग्ध रूप से नही कहा जा सकता कि यह भापा उसी काल की है। चेलो के हाथ मे पडी भापा के रूप मे अन्य ऐतिहासिक तथ्यो के रहते गोरख को इतना पीछे मानना भारी भूल होगी। जिस प्रकार आल्हा बदली है, गोरख की भापा भी बदल गई है। हस्तलिखित प्रतियाँ 17वी या 18वी शती की लिखी हुई हैं। इससे पुरानी नही मिलती अत उससे भी समय का अन्दाजा नही होता। वैसे सतो की यह भापा 14वी शती की सी प्रतीत होती है जिसमे लिखे जाने के पूर्व 15वी और 16वी सदी का भी प्रभाव आ गया है। इसका अर्थ यह निकलता है कि इनमे से कोई भी रचना गोरखनाथ की नही है। परन्तु यह याद रखना आवश्यक है कि शिष्यो ने गुरु वचनो को अत्यन्त सहेज कर रखने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार हम निम्नलिखित तथ्यो पर पहुँचते है

1 गोरख की बात बचाने का प्रयत्न किया गया।

2 उसके लिए शिष्यो के प्रयत्न भी उसमे मिल गये।

3 विचारो और अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से जो सभाव्य प्राचीन तथा अछूती रचना मिलती है उसी को प्राचीन मानना पडेगा कि गोरखनाथ की रचना उसका कोई मूल स्वरूप होगी।

विश्लेषण और प्रामाणिकता

निस्सदिग्ध रूप से उनके ग्रन्थो मे कौन-सा ग्रन्थ प्रामाणिक है, कौन-सा नही, यह नही कहा जा सकता। फिर भी जो अधिक सम्भाव्य हैं उनकी ओर यहाँ प्रकाश डाला जाता है। अब वास्तव मे हमारे सामने यह प्रश्न नही है कि किस ग्रन्थ को उनका प्रमाणित किया जावे। वरन् पहले उनकी रचनाओ मे क्या-क्या सम्भाव्य परवर्ती तत्व प्रतीत होते है उन्हे खोजकर निकाला जाय। इसमे निम्नलिखित तथ्य प्रकट होते हैं

(1) इस्लाम का प्रभाव।

(2) अन्य सम्प्रदायो का प्रभाव।

(3) गोरखवाणी मे परवर्त्तियो का उल्लेख।

(4) परवर्त्ती काल मे जिन देवताओ का महत्त्व बढता गया है, उनका उल्लेख।

(5) मछिन्द्रनाथ और गोरखनाथ की सम्भाव्य मूल सस्कृत रचनाओं के आधार पर जो उनके विचार हमने निर्धारित किये हैं, तथा उसी युग की उपज प्रतीत होते हैं, उनसे दूर हटते हुए विचारो की खोज।

(6) अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण ।

(7) उठते हुए और दृढतर होते हुए ब्राह्मणवाद का प्रभाव ।

सबदी—सबदी मे अनेक स्थलो पर इस्लाम का प्रभाव दिखाई देता है, अथवा इस्लाम का ससर्ग एक बढी हुई अवस्था मे मिलता है ।

वेद कतेब न षाणी वाणी । (पृ० 2)
बेदे न शास्त्र कतेबे न कुराणे। (पृ० 3)
महमद महमद न करि काजी .
.. काजी सो बल नही शरीर । (पृ० 4)
कलमा का गुर महमद होता पहलै मूवा सोई । (पृ० 5)
उतपति हिदू जरणा जोगी अकलि पीर मुसलमानी ।
ते राह चीन्हो हो काजी मुला ब्रह्मा बिस्नु महादेव मानी । (पृ० 6)
हिदू ध्यावै देहुरा मुसलमान मसीत ।
जोगी ध्यावै परमपद जहाँ देहुरा न मसीत ।
हिन्दू आपै राम को मुसलमान पुदाइ ।
जोगी आषै अलष को तहा राम अछै न पुदाइ । (पृ० 25)
काजी मुला कुराण लगाया, ब्रह्म लगाया वेद । (पृ० 33)

उपर्युक्त उद्धरणो से स्पष्ट होता है कि इस्लाम व अन्य सम्प्रदायो का प्रभाव तथा परवर्त्ती देवताओ का उल्लेख गोरषवाणी मे प्रचुर मात्रा से पाया जाता है । पूरी गोरखवाणी मे इस प्रकार के उद्धरणो की कमी नही है। वास्तव मे इसके लिए अभिव्यक्ति का दृष्टिकोण उत्तरदायी है । गोरखनाथ की जितनी भी रचनाएँ गोरखवाणी मे है उन्हे निम्नलिखित ढग से विभाजित कर लेने से सुभीता होता है

(1) स्वय गोरखनाथ की कही हुई ।

(2) वे रचनाएँ जहाँ गोरखनाथ अपने-आप अपने नाम के साथ श्री जोड लेते हैं ।

(3) सवाद—देवताओ से, महापुरुष या अवतारो से ।

(4) वे रचनाएँ जो स्पष्ट ही अन्यो की कही गई ।

(5) वे रचनाएँ जो शिष्यो द्वारा पढी जाती है । यह स्पष्ट कहा गया है और उनके प्रश्नो का उत्तर उन्हे दिया जाता है ।

(6) उपदेश या कथा रूप मे सुनाई हुई रचनाएँ ।

(7) तिलक या सूत्र-रूप मे लिखी गई रचनाएँ ।

इस विभाजन का प्रथम तथ्य हम आगे देखेगे । यहाँ शेष तथ्यो पर सक्षिप्त दृष्टिपात किया जाता है ।

गोरष के नाम के साथ कविता मे जहाँ श्री जोडा गया है उसके दो कारण हो सकते है

(1) शिष्यो ने उपदेश देते समय या प्रचार करते समय अपनी कविता को इस प्रकार सुनाया कि गुरु गोरपनाथ ऐसा कह गए है ।

(2) गोरपनाथ के पद को श्रद्धाभक्ति से सुनाते समय वे नाम के आगे बिना 'श्री' जोडे उनके नाम को उच्चारित करना अनुचित समझकर ऐसा साहस न कर सके ।

पथ बिन चलिबा अगनि बिन जलिबा, अनिल तृपा जहटिया ससवेद ।
श्री (गुर) गोरष (नाथ) कहिया बूझल्यौ पडित पढिया ।

तथा

जोगी होइ पर निद्रा झषै । मद मास अरु भाँगि जो भषै ।
इकोतरसै पुरिपा नरकहि जाई । सतिसति भाषत श्री गोरषराई ।

और

त्रिया न स्वाँति (साँति) वैद रु रोगी रसायषी अरि जाचि षाय ।
बूढा न जोगी सूरा न पीठि पाछे घाव यतना न मानै श्री गोरषराय ।

एक स्थान पर श्री की जगह जी का प्रयोग भी हुआ है .

मन पवना लै उनमन रहै, एते व्रत गोरषनाथ जी कहै । (पृ० 245 व्रत)

इन तथ्यो के आधार पर गोरषवानी मे दी हुई रचनाओ का विभाजन करने पर निम्नलिखित रूप दृष्टिगोचर होता है

(2) नरवै बोध, आत्म बोध, सप्तवार (सप्तवार नवग्रह), व्रत, पच अग्नि, रहरासि ।

(3) मछीन्द्र गोरष बोध, गोरष गणेश गुष्टि, गोरख दत्त गुष्टि, महादेव गोरष गुष्टि ।

(4) सिस्ट पुराण, दया बोध ।

(5) रोमावली, अष्टमुद्रा, चौबीस सिद्धि, अष्टचक्र ।

(6) प्राण सकली, पद्रह तिथि, ग्यान तिलक, पचमात्रा ।

(7) सिष्या दरसन, अभै मात्रा जोग, बतीस लछन ।

परिचय लिखते समय हम प्राय उन बातो का भी उल्लेख कर आये हैं जो परवर्त्ती जान पडती है । उनके अतिरिक्त इस्लाम के प्रभाव तथा कुछ अन्य प्रभावो को देखना आवश्यक होगा ।

एकसबदी मे परिवर्ती नामो का उल्लेख है :

मान्या सबद चुकाया दद । निहचै राजा भरथरी परचै गोपीचंद ।
निहत्रै नरवै भए निरदद । परचै जोगी परमानद ।

गोरखनाथ इनके पूर्ववर्त्ती तथा गुरु थे। शिष्य का उदाहरण देकर गुरु इस प्रकार नही समझा सकता। इसके लिए वह अपने पूर्ववर्त्तियो का ही उल्लेख कर सकता है

मरौ वे जोगी मरौ मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ जिस मरणी गोरष मरि दीठा॥

मे गोरखनाथ अपने-आपको उदाहरण बनाते हैं। यह भी ठीक नही मालूम देता। किसी शिष्य ने बाद मे गुरु भक्ति के आवेश मे आकर ऐसा कहा जान पडता है।

गोरप के युग मे यह विवाद नही था जो बाद मे जोडा गया लगता है।

हिन्दू ध्यावै देहुरा मुसलमान मसीत ।
जोगी ध्यावै परम पद जहाँ देहुरा न मसीत ।
हिंदू आपै राम कौ मुसलमान पुदाइ ।
जोगी आपै अलष को तहाँ राम अछै न पुदाइ ।

तथा

काजी मुला कुरान लगाया, ब्रह्म लगाया वेद ।

गोरष के अखड ब्रह्मचर्य के स्थापन मे, परवर्त्ती काल मे, शाक्त सम्प्रदायो का अवशिष्ट प्रभाव बचा रह गया था जिसका प्रभाव गोरखबानी मे भी दिखाई देता है :

बजरी करता अमरी राषै अमरी करता बाई ।
भोग करता जे व्यद राषै ते गोरष का गुर भाई ।
मग मुषि व्यद अगनि मुख पारा ।
जो राखै सो गुरू हमारा ।

गोरखनाथ की विशेषता मिलती है कि उन्होने सस्कृत-ग्रथो मे भी अपने से पुराने सिद्धो की कही अधिक प्रशसा नही की है। इसका स्पष्ट कारण है कि उनका विचार अन्यो से बहुत अलग था। एक स्थान पर तो वे स्वय कहते है -

अवधू ईस्वर हमारे चेला भणीजै
मछीन्द्र बोलिये नाती।
निगुरी पिरथी परलै जाती ताथै हम
उलटी थापना थापी ।

इस उलटी स्थापना के स्थापन से यह स्पष्ट होता है कि गोरखनाथजी स्वय अपने सत्य पर पहुँच चुके थे। मछिद्र को क्यो न छोड सके। एक स्थान पर वे उत्तर के सिद्धो की प्रशसा करते हुए पाये जाते है, दूसरी जगह

गिगनि मडल मे गाय बियाई कागद दही जमाया।
छाछि छाँडि पिडता पीवी सिधाँ माषरण पाया।

मेरे विचार मे यह सबदी परवर्त्ती है। अन्यो की तुलना मे सिद्धो ने मक्खन खाया है किन्तु इसमे गोरष ने अपनी बात नही कही। यह उस समय की सबदी है जब स्वय गोरषनाथ भी सिद्ध माने जा चुके थे। इसी प्रकार तुलनीय रूप मे गोरष की प्रशसा की गई है

असाध कद्रप बिरला साधत कोई।
सुर नर गरा गध्रप व्याप्या बालि सुग्रीव भाई।
ब्रह्म देवता कद्रप व्याप्या यद्र सहस्र भग पाई।
अठयासी सहस्र रपीसर कद्रप व्याप्या असाधि विप्न की माया,
यन कद्रप ईस्वर महादेव नाटारम नचाया।
विष्न दस अवतार थाप्या असाधि कद्रप जनी गोरषनाथ साध्या,
जनि नीझर झरता राष्या।

कबीर की भाँति यह गोरषनाथ की अहम्मन्यता भी हो सकती है। अधिक तो यह परवर्त्ती प्रशसा प्रतीत होती है। कबीर ने भी कहा है

मस्तानी धोबन हम जानी घूम घूँघरू बजार दीवार।
मार्कण्डेय लारे लागी शृगीऋषि के रग मे पागी।
नैन की सैन चलावै शारदा भस्मासुर किये छार।
नौ नाथ पलको मे राखे सिद्ध चौरासी झुक झुक झाके।
उद्दालक ऋषि तिरिया के कारण गये ब्रह्म दरबार।
मोहनी रूप धरा भगवाना, शकर हौद भरा हम जाना।
कच्छ देश रतनागर सागर किया गोरष सिर भार।[1]

---

1 परवर्त्ती युग में गोरख पथ को कबीर-पथ से बडी कडी टक्कर देनी पडी। एक बार कबीर और रामानन्द की गोरख से मुलाकात हुई। रामानन्दजी गोरख से जीत न पाने के कारण अन्तर्धान हो गये, किन्तु कबीर साहब ने हरा दिया।

साहिब कबीर तना एक ताना।
एक खूटी धरना में गाडी, दूसरी लै आकाश को जाना।
ढील भई पाई सूत उरझाता, ब्रह्मा विष्णु महेश भुलाना।
ताना तन सतगुर घर आये, डिगौढा में बैठ गोरख समझाना।
कहहिं धर्मदास सुनो भाई साधो बिनन बिनत अमोल बिकाना॥

गोरख ने पूछा—कबिरा का है उमिर तुम्हारी?

कबीर— जो बूझै सो बावरा क्या है उमर हमारी।
हम तो सदा मासूम है खेलैं युग चारी।

पडित हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस विषय पर लिखते समय दो बातो की ओर इगित किया है। यह परवर्त्ती लेखन था, अथवा यह सतो को पुरातन के 'इलहाम' का फल है। मेरे विचार मे यह निनात परवर्त्ती लेखन था और बहुतायत से शिष्यो का काम था। सबदी सख्या 95 भी परवर्ती है क्योकि उसमे नाल, बारूद और पलीता, गोला इत्यादि का वर्णन है। ऐतहासिज्ञो का मत है कि बदूक 'वंदिक सम्पत्ति' नही, वरन् बाद की आई हुई चीज है।

पदो मे भी परवर्ती दिखाई देने वाले पद मिलते है

ऊ नमो सिवाइ बाबू ऊ नमो सिवाइ (12) की भाषा तथा विचार इतने अधिक परवर्त्ती है कि उस पर विवाद व्यर्थ है।

30वे पद मे अन्तिम पक्तिया हे

उल्टै कमल सहस्त्रदल बास, भ्रमर गुफा महि जोति प्रकास।
सुणि मथुरा सिव गोरष कहै, परम तत लै साधू लहै।

कोटि विष्णु हो हो गये दम कोटि घनाइया।
अनत कोटि शभु भये मेरी एक पलाइया।
कोटि ब्रह्म हो हो गये महम्मदचारयारी।
देवतन की गिनती नही क्या है सृष्टि बिचारी।
नही बूढा नाही बालका नाही जगन भिखारी।
कहहि कबीर सुनो गारखा यह है उमर हमारी।
टोपी कुपीन झडा झोरी भेष,
जीना शब्द कबीर तब गोरख कौन आदेश।

गोरख ने नशा मागा तब कबीर ने कहा

अजमस्ता योगी नाम अमल मदमाता।
तन नर कूडी, मन कर सोटा, घोटौ दिन औ राता।
जतन जनन कर छान लेव तुम प्रेम की साफी हाथा।
रसन कटोरी भरि भरि पावौ पाचौ इन्द्री साथा।
रोम रोम रग भीन रहे हो क्या सोला क्या ताता।
गुरु का अग्नि का तिनका जब छेडा तब जगा।
शिर के साटे भक्ति कबूली क्या तन की कुशलाना।
कहहि कबीर मगन ह्वै नाचो क्या मन्या परमाना।

'गोरख वदगी करके चले गये। तब कबीर ने माया से कहा तूने ये छले हैं
(1) माकण्डेय (1) शृग ऋषि (1) भस्मासुर (1) शकर, गोरष कच्छ देश में।
(1) गौतम (1) उसकी स्त्री (1) चन्द्रमा (1) इन्द्र (1) अजनी (1) नारद।

नाथ सम्प्रदाय का 'कद्रप' कबीर-सम्प्रदाय में आते आते 'माया' हो जाता है। कुण्डलिनी भी प्राय माया का ही नाम पाती है।

—कबीर कसौटी, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग

इसमे मथुरा का क्या अर्थ है य ः स्पप्ट नही होता। डा० बडथ्वाल ने लिखा है इस प्रकार है मथुरा (1) सुन ।वै साधू (ऊपर कहे अनुसार साधना करने वाले) परमतत्व को प्राप्त करते है। इस प्रकार का सदिग्ध सबोधन इसमे होने से हम इसे परवर्त्ती पदो मे रखते हे।

31वे पद मे रावल योगियो का उल्लेख है। कनक रावलनाथ सम्प्रदाय मे गोरख के बाद आकर सम्मिलित हुए थे।

38वे पद मे

येक मुलानम् दोइ कुरानम् ग्यारह पुरसाणी हूवा।
अलह कौ तिन पार न पायौ बग देइ देइ मूवा।
नौ नाथ ने चौरामी सिधा आसणधारी हूवा।
जोग कर तिन पार न पायौ बन पडा भ्रमि भ्रमि मूवा।
पच तत्त की काया बिनसी राषि न सक्या कोई।
काल दवन जब ग्यान प्रकास्या बदत गोरष सोई।

स्पष्ट है कि गोरखनाथ अपने आपको नौ नाथो मे गिनकर या अपने को शिवावतार समझकर भी उनके लिए ऐसे अमर्यादाशील वचन नही कह सकते थे, क्योकि उनके गुरु भी तो इन्ही के अन्तर्गत थे।

सबदी और पदो के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थो का स्वरूप विचारणीय है। इन सब रचनाओ मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रचना मछीन्द्र गोरख बोध है। प्रारम्भ से अन्त तक मछीन्द्र गोरखनाथ के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देते जाते है, कि जो इन षटचक्रो के भेद को जानता हे वह अपने-आपको जानता है। जो योगी मन-पवन को साध लेता है, तो वह निरोगी हो जाता है।

मछीन्द्र के सस्कृत-ग्रन्थो को हम ऊपर कुछ उल्लिखित कर चुके है। मछीन्द्र के इन हिन्दी उपदेशो से उनमे कुछ भेद हैं। गोरपनाथ के अन्य ग्रन्थो मे जो कुछ है वही गोरख मछीन्द्र बोध मे भी प्रतिध्वनित है। क्या कारण हो सकता है कि मछीन्द्र ने वही कहा जो गोरष चाहते थे ? उत्तर है कि गुरु को अपनी राह पर लाने वाले गोरप थे। उन्होने ही यह मब उन्हे बताया होगा। निगरी पृथ्वी पर गोरखनाथ प्रलय नही चाहते थे, इसका उल्लेख हम ऊपर कर आये है।

मेरे विचार मे मछीन्द्र और गोरख के सम्बन्ध-विषयक अपनी मान्यताओ को जैसा उन्होने समझा, वैसा बाद मे लिखकर रख लिया। 'मछीन्द्र गोरख बोध' मे योग-सम्प्रदाय के बहुत से प्रश्नो का उत्तर है। इसके अतिरिक्त सवाद की यह परम्परा नाथ-सम्प्रदाय की रचनाओ की वह ऐतिहासिक कडी है, जो सस्कृत से सीधे उतरी और परवर्त्ती सन्त-काल मे उतर गई। नाथ-सम्प्रदाय की कविता के अन्तर्गत हम इस विषय को बिलकुल स्पष्ट करने का प्रयत्न करेगे।

सम्पादन

अत गोरषवाणी को सामने रखकर कहा जा सकता है कि ऊपर दिये तत्त्वो के आलोक मे उनकी निम्नलिखित रचनाएँ या उनके अश अमुक सीमा तक मूल ग्रन्थ रहे होगे और उन्हे अन्यो की तुलना मे हम प्राचीनता के निकटतम पाते है

(अ) 4, 6, 9, 10, 11, 14, 15, 22, 26, 68, 69, 95, 96, 118, 127, 129, 141 142, 159, 164, 167, 171, 173, 174, 182, 184, 196, 198, 199, 200, 204, 211, 225, 243, 249, 274, —इन पदो के विषय मे स्पष्ट कहा जा सकता है कि यह देखते ही परवर्त्ती प्रतीत होते है।

(आ) पद, 12, 13, 27, 30, 31, 33, 38, 45, 58, 59, 61 परवर्त्ती प्रतीत होते हैं।

(इ) नरवै बोध, आत्म बोध, सप्तवार, सप्तवार नवग्रह, व्रत, पच अग्नि तथा रहरासि, परवर्त्ती रचनाएँ है, जो गोरख के उपदेशो को उद्धृत करने के कारण उन्ही के नाम के साथ जोड दी गई है।

(ई) मछीन्द्र गोरख बोध, गोरष गणेश गुष्टि, गोरष दत्त गुष्टि, तथा महादेव गोरष गुष्टि, गोरखनाथ के बाद उनके शिष्यो की बनाई चीजे है जो सवाद की पुरानी परम्परा पर लिखी गई है। इन रचनाओ मे या तो उपदेश दिये गए है या भिन्न मतो का सामजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

(उ) सिस्ट पुराण तथा दया बोध प्राय. नरवै बोध इत्यादि इ की कोटि मे आ जाने वाली रचनाएँ है। किन्तु सेवादास का नाम इनके साथ मिल जाने से हमे इनको गोरखनाथ की रचनाएँ समझने का कोई कारण नही रह जाता।

(ऊ) रोमावली, अष्टमुद्रा, चौबीस सिद्धि तथा अष्टचक्र भी शिष्यो के परस्पर सम्वन्ध से उद्‌भूत रचनाये है। सिद्धगोष्ठी मे प्रश्न उठते थे और कोई गुरु उनका गुरु गोरखनाथ का प्रमाण देते हुए उतर देते थे।

(ए) प्राण सकली, पन्द्रह तिथि, ग्यान तिलक तथा पचमात्रा यद्यपि परवर्त्ती ग्रन्थ है तथापि इनमे गोरखनाथ का मूल रूप कुछ सीमा तक अधिक सुरक्षित लगता है। कही-कही जैसा कि ऊपर देखा गया है, ऐसी कथाएँ या वचन या अभिव्यक्तियाँ आ जाती हैं जो अपने-आप अपने को परवर्त्ती प्रमाणित कर देती है।

(ऐ) तिलक या सूत्र रूप मे लिखी गई रचनाएँ सिष्या दरसन, अभैमात्रा जोग तथा बतीस लछन या अष्ट पारछ्या नितान्त परवर्त्ती रचनाए है ।

(ओ) परिशिष्ट तीन के पदो को पहली पक्तियो मे से अनेक 'पद' मे आ गई है । निरजनी साधु कृत तिलक उस परम्परा को प्रगट और स्पष्ट कर देते हे जिनके आधार पर 'ऐ' को हम दृढतापूर्वक परवर्त्ती कह सकते है । गोरखनाथ यद्यपि एक मत की एक बडी परम्परा अपने साथ लिये हुए थे तथापि वे मूल प्रवर्त्तक के रूप मे माने गए है। 'ऐ' मे उन्ही को प्रमाण-स्वरूप उद्धृत किया है । यह कहना अत्युक्ति होगा कि गोरखनाथ अपने-आपको प्रमाण कहते थे । कबीर की आत्माभिव्यक्ति और विश्वास के साथ-साथ देखा जाय तो स्वसवेद्य मे सम्भव है कुछ सीमा तक गोरषनाथ भी कह सकते थे । यह सत्य है, और उनके पदो तथा सबदियो मे ऐसे विचार तथा अभिव्यजना का दर्शन होता है । किन्तु वह व्यक्ति-मूलक है । उपदेशो और सूत्रो मे, क्योकि व्याख्यात्मक सूत्रो का रूप है, वे शिष्यो की ही रचनाएँ अधिक प्रतीत होती है ।

गोरखनाथ के तीन पद (क—6) अपने तथ्य के अनुरूप गोरख के ही प्रतीत होते है ।

साराश मे यही निर्णय निकलता है कि गोरखनाथ के नाम से चलने वाली रचनाओ मे आज बहुत कम के विषय मे कहा जा सकता है कि उनकी मूल-रचनाओ का रूप निश्चय से सद्यप्राप्त रचनाओ का ही कोई पुराना स्वरूप रहा होगा । डा० बडथ्वाल ने उचित ही कहा है कि जो आज प्राप्त है वह भी शिष्यो की इस श्रद्धाभक्ति के कारण है जिसने अधिक मे अधिक प्रयत्न किया कि मूल रूप वैसा ही बना रहे।

टीका

टीका से हमारा आशय अर्थ लिखने का नही है, गोरखबानी के महत्त्व के प्रतिपादन से है, गोरखवानी की विशेषताओ से है । बाह्य रूप देखने के अनन्तर इसके भीतरी रूप को देखना आवश्यक है, तब हमे निम्नलिखित तथ्य महत्त्वपूर्ण दृष्टिगोचर होते हैं :

1. नाथ-सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि मे बौद्ध सिद्धो की हिन्दी कविता थी ।
2. नाथ-सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि मे सस्कृत मे अपार शैव साहित्य था ।
3. जनसाधारण तक पहुँचने का पथ यदि हिन्दी का माध्यम था, तो वह हिन्दी भी व्यक्तिवाद के प्रगटीकरण के कारण सहज अभिव्यजना नही थी ।

4 योग और साधना की विशेष भाषा-शैली थी जिसके अर्थ सम्भवत जो आज समझे जाते है वे उस समय वैसे ही नही थे।

5 गोरखबानी मे रूपक जहाँ आध्यात्मिक है वहाँ दूसरी ओर सासारिक कार्यो के उदाहरण देकर भी बात समझाने का प्रयत्न किया गया है।

6 साम्प्रदायिक होते हुए भी गोरखनाथ की कविता मे कवित्व का पुट है और ऐसे स्थानो पर आत्मानुभूति होने के कारण वह प्रभावोत्पादक है।

7 गोरखबानी एक दर्पण है जिसमे नाथ-सम्प्रदाय का बहुत-सा रूप अन्त साक्ष्य से प्रगट होता है।

8 नाथ-सम्प्रदाय ने गोरखनाथ के बाद हिन्दी मे अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की जिनकी शैली, भाषा, विचार तथा अभिव्यजना का अपने क्षेत्र मे बहुत काफी महत्त्व है।

9 सन्तकालीन साहित्य की भाषा, विचार, अभिव्यक्ति तथा पृष्ठभूमि नाथ-सम्प्रदाय की इन रचनाओ मे बिखरी पडी है।

इन बातो को हम कुछ विस्तार से कहेगे। नवे तथ्य मे भाषा की पृष्ठ-भूमि का विचार समझने मे कुछ कठिन-सा प्रतीत होता है अत सबसे पहले उसी पर प्रकाश डालना उचित दिखाई देता है।

गोरखनाथ की हिन्दी कविता का महत्त्व

गोरखनाथ की कविता अधिक प्राप्त नही, जो प्राप्त है उस पर अधिकार से कुछ कहना तनिक कठिन है। तथ्य के दृष्टिकोण से वह विशेषतया साम्प्रदायिक रचना है। उसमे काव्य के दृष्टिकोण से अधिक महानता नही है। तब गोरखनाथ की हिन्दी-कविता का महत्त्व क्या है?

जिस व्यक्ति के नाम पर सस्कृत के अनेक ग्रन्थ प्रचलित है, उसी के नाम के हिन्दी ग्रन्थ देखकर यह विचार उठता है कि इस व्यक्ति ने अपनी बात का जन साधारण मे प्रचार करने के उद्देश्य से ही हिन्दी का भी सहारा लिया था। किन्तु यह गुण केवल गोरखनाथ मे ही हो, ऐसा कहना अनुचित होगा। अन्य सिद्धो, बौद्धो ने भी ऐसा किया है। तब प्रश्न उठता है कि मध्य युग के सन्धि-काल मे स्वयभू आदि बडे-बडे कवियो के सामने गोरख का स्थान क्या है?

गोरखनाथ की कविता वास्तव मे भारतीय इतिहास की एक बहुत बडी कडी है। इसके अनुसार हमारे हिन्दी-साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन प० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार न करके इस प्रकार करना पडेगा

(1) अपभ्रश-काल।

(2) सन्धियुगीन नाथ-सम्प्रदायगत कविता।

(3) हिन्दी यग ।

अपभ्रशकाल की भाषा तद्भव-प्रधान है । हिन्दी युग की भाषा तत्सम-प्रधान है । राहुलजी ने कहा है कि हिन्दी-कविता 14वी शताब्दी से तत्सम-प्रधान हो गई और उसने अपना रुख बदलकर भाषा का दूसरा रूप धारण कर लिया । इस्लाम के आगमन से भारतीय जनता ने जो अपने को सगठित किया, इसमे उसकी भाषा का भी सगठित-स्वरूप दिखाई दिया, क्योकि सस्कृत से तत्कालीन देशभाषाओ ने अपना पल्ला जोड लिया ।

प्रश्न उठता है कि तद्भव-प्रधान भाषा को तत्सम-प्रधान होने मे जो लगभग 500 वर्ष बीत गये, इसमे किस प्रेरणा ने प्रधान कार्य किया ? गोरख नाथ निस्सन्देह सन्धियुग के सच्चे प्रतीक हैं । क्योकि इस प्रकार की भाषा का स्रोत उन्ही मे पहले-पहल प्राप्त होता है । यही सन्धियुगीन नाथसम्प्रदायगत कविता की भाषा है । यद्यपि इसका प्राप्त रूप केवल इस ओर इगित-मात्र ही करता है ।

आज वह तद्भव-प्रधान भाषा शीघ्र समझ मे नही आती । तत्सम-प्रधान भाषा समझ मे आती है । गोरखनाथ की भाषा के विषय मे निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :

(1) गोरख की कोई रचना अब अपने मूल रूप मे है ही नही ।

(2) पृथ्वीराज रासो की भाति उसका रूप भी बदल गया है, दोनो तथ्य गम्भीर हैं और काफी सीमा तक अखड दिखाई देते हैं । किन्तु फिर प्रश्न आता है कि भाषा का जब परिवर्तन हुआ, तो वह क्या आकस्मिक था ?

मेरे विचार मे तथ्य इस ओर इगित करते हैं

(1) नाथ-सम्प्रदाय की सस्कृत से जानकारी थी ।

(2) गोरखनाथ स्वय ब्राह्मण थे । उन्हे सस्कृत अच्छी तरह आती थी । सम्भवत उनकी भाषा का अन्य सिद्धो की भाषा से कुछ वैसा ही भेद रहा हो जैसा तुलसी और जायसी का अथवा कुछ सीमा तक जैसे आज सुमित्रानन्दन पत और बच्चन की भापा का ।

(3) उनमे ब्राह्मण प्रभाव शेष था । और बौद्ध-विरोध इसमे सहायक था ।

(4) उन्होने उच्च और निम्न समाजो मे अपना एक-सा प्रभाव रखने को सस्कृत और देश-भाषा का साथ नही छोडा ।

(5) नाथ-पथियो का सेश्वरवाद इस्लाम के आने से अधिक से अधिक 'हिन्दू' वातावरण की ओर खिचता गया, और जब सब धर्म किसी-न-किसी रूप मे वेद के नीचे आने लगे, तब यह सम्प्रदाय

बहुत लाभकर सिद्ध हुआ और इसने सस्कृत को जनता तक पहुँचाया ।

(6) इसी समय गोरख की मूल कविता का तद्भव रूप तत्सम भाषा से मजने लगा और तत्सम के लिए भूमि होने से वह तद्भव के स्थान पर चढने लगा ।

(7) सन्तो की बानी मे आते-आते हिन्दी इतनी शक्त हो गई कि तत्कालीन तद्भव और तत्सम दोनो को पचाने की उसमे सामर्थ्य हो गई और देश-भाषा भारत के प्राचीन ज्ञान-भडार को सम्भाल-कर वहन करने के योग्य हो गई ।

इस प्रकार हम देखते है कि भापा के दृष्टिकोण से गोरख की कविता का एक एतिहासिक मूल्य है जिसे समझ लेना आवश्यक है। रामानुज और शकर को यह महत्त्व नही दिया जा सकता, क्योकि उन्होने सस्कृत मे अपनी रचनाएँ की थी इसका कारण था कि वे ब्राह्मणवाद से घिरे हुए थे। गोरखनाथ को कोई ऐसे बधन नहीं थे। गोरखनाथ के युग मे अपभ्रश का रूप अलग-अलग स्थानो मे आज की भाति बहुत अलग-अलग नही था। भाषा व्यस्त होती जा रही थी और भेद बढते जा रहे थे। उस समय तद्भव के स्थान पर तत्सम का प्रयोग सम्भवत गोरखनाथ का ऊपर दिये कारणो से पहला प्रयत्न था जिससे परवर्त्ती युग मे लोगो को तिनके का सहारा मिल गया और भापा अपने-आप दूसरा रूप पकडने लगी।

हिन्दी के आदि रूप, अर्थात् अपभ्रश, की भी रचनाएँ अत्यन्त कठिनता से बाहर आ सकती है। सम्भव है खोज होने पर नाथ-सम्प्रदाय की रचनाएँ भी अपने-अपने वास्तविक स्वरूप मे मिल सकें—यद्यपि इसकी आशा अभी तक बहुत कम है क्योकि

(1) नाथ-सम्प्रदाय भारत के बाहर नही गया ।

(2) अपना रूप बदलता रहा ।

(3) अन्य सम्प्रदायो के साथ सघर्ष करने मे इसे बहुत-कुछ लेने-देने मे स्वरूप परिवर्त्तन करना पडा तथा

(4) इसका सशक्त रूप सन्त-परम्परा मे अन्तर्मुक्त हो गया ।

गोरखनाथ तथा नाथ-सम्प्रदाय के ग्रन्थ आज केवल इस ओर इगित करते है कि उनका वास्तविक स्वरूप कुछ और था। वह अपभ्र श और हिन्दी के बीच की भाषा थी, वह सन्ध्या भापा का परवर्त्ती रूप था। यह वह समय था जब तद्भव-प्रधान भाषा तत्सम-प्रधान होती जा रही थी। जाने और अनजाने ही नाथ-सम्प्रदाय की पस्तको की भाषा भी पीढी-दर-पीढी हाथों मे चलकर अपना वास्तविक स्वरूप खोती जा रही थी। प्रचार बढने के साथ-साथ उस

पर अन्तर्प्रांतीय भेद भी अपना प्रभाव डालते जा रहे थे।

भाषा और तथ्य के दृष्टिकोण के अनन्तर यद्यपि अनेक नए विचार उसमे घुस गए, हमने ऊपर दिए अधिक-मे-अधिक पुराने स्वरूप के विचारो को देखा। गोरख की कविता का कितना भाग हमारी हिन्दी तथा परवर्त्ती सन्त-परम्परा मे ज्यो का त्यो उत्तर आया है या परवर्त्ती विचार उसमे कितने घुस गए है, यह कहना कठिन है। फिर भी इसके पुराने होने से यही अधिक सम्भाव्य लगता है कि सम्भवत इसके ही विचार आगे चलकर औरो ने अंगीकृत किये हो।

पूर्ववर्त्ती समसामयिक तथा परवर्त्ती सिद्धों से समानता

गोरखवाणी मे अनेक स्थल ऐसे है जिनमे गोरखनाथ के पूर्ववर्त्ती समसामयिक तथा परवर्त्ती सिद्धो की रचनाओ से निकट साम्य दिखाई देता है इसके दार्शनिक पक्ष का पहले उल्लेख किया जा चुका है, यहाँ समानता का उल्लेख किया जाता है

1 सहजयान	2 निरजन तत्व	3 शून्य
4 आकाश	5 रहस्यवाद	6 साधना
7 उलटबासी	8 पाषड-खण्डन	9 रूढि-खण्डन
10 राजा-प्रजा-सम्मान	11 गुरु-प्रशसा	12 सदाचार-उपदेश
13 काया तीर्थ	14 सहज सयम	15 मन्त्र-देवता-विरोध

16. पंथ और पण्डित-निन्दा

यहाँ सिद्धो की रचनाओ के उद्धरण देते है

पूर्ववर्त्ती (अ) सरहपाद

जल्लइ मरइ उबज्जइ वज्झइ। तल्लय परम महामुह सिज्झइ।
सरहे गहण गुहिर भग कहिआ। पसू लोक निव्वहि जिम रहिआ।
ध्यान रहित का ध्यान करो। जो अवाक है उसको कौन बखान सकता है।

× × ×

चलिओ धम्म महासुह पइसइ। लवणो जिमि पाणीहि विलिज्जइ।
मन्तह मन्ते सन्ति ण होइ। पडिलमिति की उट्ठिउ होइ।

× × ×

जाव ण आप जणिज्जइ ताव ण सिस्स करेइ।
अन्धा अन्ध कढाव तिम वैणण वि कूव पडेइ।

× × ×

पिच्छी गहणे दिठ्ठ मोक्ख, ता मोरह चमरह।
उञ्छ मोअणें होइ जाण ता करिह तुरगह।

× × ×

किन्तहू तिथ्य तपोवरण जाई। मोक्ख कि लब्भइ पाणी न्हाई।
छाडहु रे आलीका बन्धा। सो मुचहु जो अच्छहु धन्धा।
जइ पच्चक्ख कि झाणे की अस्र। जइ परोक्ख अचारम धीअख।
सरहै णित्ते कहढिउ राव। सहज सहावण भावाभाव।

× × ×

बुद्धि विणासइ मण मरइ जहि तुठ्ठइ अहिमाण।
स माआमअ परम फलु, तहि कि बज्झइ झाण।

× × ×

चित्ताचित्ति वि परिहरहु, तिम अच्छहु जिम बालु।
गुरु वअणे दिढ मत्ति करु, होइ जइ सहज उलालु।

× × ×

विसआ सत्तिम वन्ध कर, अरे बढ सरहे वुत्त।
मीण पअगम करि भमर पेक्खह हरिणह जुत्त।
जत्त वि चित्तह विप्फुरड तत्त वि णाह सरूअ।
अण्ण तरग कि अण्ण जलु भव-सम ख-सम सरूअ।

समसामयिक (अ)—गोरखनाथ के पूर्ववर्त्ती मूसुकपा, विरुपा इत्यादि सभी मे इस प्रकार के कथन मिलते है। समसामयिक लुईपा, दारिकपा, डोम्बिपा, कण्हपा, कमरिपा, गुडरिपा इत्यादि मे भी कमी नही है।

मुसुक का एक पद है

णिसि अधारी मूसा कर अविचारा। अमिअ भखअ मूसा करअ अहारा।
मार रे जोइया, मूसा पवना। जेण तूटइ अवणा गवणा।
भव विदारअ मूसा खणअ गाती। चचल मूसा कलिआँ णासअथाती।
काला मूसा उहण बाण। गअणे उठि करअ अमिअ पाण।
तब्बे मूसा अचल चचल। सद्गुरु बाहै करह सो निच्चल।
जब्बे मूसा अचार तूटअ। मूसुक भणइ तब्बे बधण फिट्टइ।

लुईपा का रहस्यवाद

काआ तरुवर पच वि डाल। चचल चीए पइठा काल।
दिढ करिअ महासुइ परिमाण। लुई भणइ गुरु पुच्छिअ जाण।

दारिकपा कहते है—

अलक्ख लक्खइ चिए महासुहे। विलसइ दारिअ गअणत पारिम कूले।

कण्हपा पडित-पथ-निंदा मे कह उठते है

आगम वे अ-पुराणँ (ही) पणि्डअ माण वहन्ति।
पक्क सिरीफलँ अलिअ जिमि, वाहेरीअ भमन्ति।

× × ×

मण तुरु पाँच इन्दि तमु साहा, आसा बहल पात फल वाहा।
वर गुरु वअणे कुठारे छिज्जअ, काण्ह भणइ तरु पुण ण उइज्जअ।

× × ×

सुण्णा तरुवर गअण कुठार। छेवइ सो तरु-मूल ण डाल।

परवर्त्ती (इ)—गोरखनाथ के निकट परवर्त्ती टेडण पा, मही पा, मादे पा ही नही, 950 ई० और 1000 ई० तक ऐसे विचार बहुत ही स्पष्ट रूप मे हमे शान्ति पा के अतिरिक्त योगीन्दु और रामसिंह इत्यादि मे प्राप्त होते हैं जो स्वय सिद्धो की गणना मे नही आते। सम्भवत इन्ही कारणो से गोरक्षनाथ भी सिद्धो की सूची मे बौद्ध नामो के बीच मे ही बिना भेदभाव के गिना दिए गए है। करुणा और अहिंसा के ऊपर प्राय सभी की रचनाओ मे बहुत जोर दिया गया है। एक विषय के कारण ही बौद्ध सिद्धो और गोरखनाथ मे बहुत बडा भेद है और वह स्त्री के प्रति है। जहाँ बौद्ध सिद्ध वासना और मोह से परे होते हुए भी भोग मे ही निर्वाण खोजते है और इसे वे आध्यात्मिक रूपको मे भी प्रकट करते है, गोरखनाथ आध्यात्मिक रूपको मे तो स्वय भी इसे प्रकट करते है किन्तु वैसे साधना और व्यवहार मे वे इसके कट्टर विरोधी है। अपनी साधना के पथ को गोरखनाथ ने अपनी रचनाओ मे बहुत विस्तार से दिखाया हैं, किन्तु जहाँ साधना की निष्पत्ति का सुख उन्होने वर्णन किया है उसमे आनन्द की वैसी ही विभोर तन्मयता दिखाई देती है, जैसी भादेपा के इस पद मे

एत काल हाँउ अच्छिल स्वमोहे। एवें मइ बूझिल सद्गुरु बोहे।
उवैं चिअ राअमोकू णठा। गअण समुद्दे टलिआ पइठा।
पेखमि दह दिह सर्वइ सुन्न। चिअविहुन्ने पाप न पुन्न।
बाजुले दिल मो लक्ख मणिआ। मइ अहारिल गअणत पणिआ।
मादे मणइ अभागे लइला। चिअ राअ मइ अहार कइला।

तभी आगे चलकर जोगीन्दु ने उस निरजन योग की चर्चा करते हुए लिखा है:

देउ ण देउले णवि सिलएँ णवि लिप्पइ णवि चित्ति।
अखउ णिरजणु णाणमउ सिउ सठिउ सम-चित्ति।

गोरखबानी मे प्रयुक्त उलटबाँसियाँ

गोरख के वचनो मे अनेक स्थानो पर उलटबाँसी का प्रयोग किया गया है। उलटबाँसी के प्रयोग के निम्नलिखित कारण प्रतीत होते है

1. आत्मानुभूति स्वसवेद्य होने के कारण उसको सरलता से समझा देना अत्यन्त कठिन था। इसलिए ऐसे रूपको का सहारा लिया जाता था जिनमे कुछ असाधारणता का आभास मिले।

2 कबीर ने जैसे अवधूत से पूछा था। "अवधू अगनि जरै कै काठ ?" यहाँ अपने प्रतिद्वन्दी को परास्त करने के लिए अभिव्यजना के दुरूह माध्यम को अपनाया गया।

3. साधारण जनता पर अपना प्रभुत्व और भय जमाने के लिए अभिव्यक्ति का यह रूप काम मे लाया गया।

बात को उलटे ढग से कहना ही उलटबाँसी है। गोरखनाथ कहते है

गगन मडल मे ऊधा कूवा तहाँ अमृत का बासा।
सगुरा होइ सु भरि भरि पीवै निगुरा जाइ पियासा।

× × ×

गिगनि मडल मे गाय बियाई कागद दही जमाया।
छॉछि छॉणि पिडता पीवी सिधाँ माषण ष।या।

× × ×

थभ बिहूणी गगन रचीलै तेल बिहूणी बाती।
गुरु गोरष के बचन प तिआया तब द्यौस नही तहाँ राती।

× × ×

जाणाने जोसी जो ओ नै बिचारी।
पहला पुरिष कै नारी जी। (टेक)

बाइ नही तहूवा बादल नाही बिन थाभा बाबै मडप रचीया।
तिहा आप उर्पावन हारी जी।
बाप नही होतौ तिह्या बैठणडैरे, माता बाल कुवारी जी।
पीवनै पोढ्यो माभौ पालनै, तिहा हू ही ज हिडोलन हारी जी।
ब्रह्मा विष्न नै आदि महेस्वर, ये तीन्यू मैं जाया।
इन तिहुवा नी मै घर धरणी ढूंकर मोरी माया जी।
गगा जमुन मोरी षाडलडी रे, हसा गवन तुलाई जी।
धरणि पाथरणो नै आभ पहेवडो तो भी सौडी न माई जी।
षाडतडी माभौ जनम बदीतौ, चावल साबिन सारी जी।
मछिद्र प्रसादै जती गोरष बोल्या, ये तत जो ओ बिचारी जी।

योग का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है, पूर्णिमा और अमावस्या के सहारे 16 तिथियो के मिस यह वर्णन दिया गया है

अवधू बोल्या तत्त बिचारी, पृथ्वी मे बकवाली।
अष्टकुल परबत जल बिन तिरिया, अदबुद अचभा भारी। (टेक)
मन पवन अगम उजियाला, रवि ससि तार गयाई।
तीनि राजि त्रिविध कुल नाही, चारि जुग सिधि बाई।

पाच सहस्र मे पट अपूठा, सप्त दीप अष्ट नारी।
नव सड पृथी इकवीस माँही, एकादसि एक तारी।

शेष पद का भाग सरल है :

अवधू गागर कथै पाणीहारी, गवरी कथै नवरा।
घर का गुसाई कोतिग चाहे काहे न बधौ जौरा। (टेक)
लूँण कहै अलूँणा बाब् घृत कहै मै रूपा।
अनल कहै मै प्यासा मूवा अन कहै मैं भूखा।
पावक कहै मै जाडण मूवा, कपडा कहे मै नागा।
अनहद मृदग बाजै तहाँ पाँगुल नाचन लागा।
आदिनाथ बिहवलिया बाबा मछिन्द्रनाथ पूता।
अभेद भेद भेदीले जोगी बदत गोरष अवधूता।

× × ×

अवधू अहूठ परबत मँझार, बैलडी माड्यौ विस्तार।
बेली फूल बेली फल बेलि अछै मोन्याहल। (टेक)
सिष्टि उतपनी वेली प्रकास, मूल न थी चढी आकास।
उरध गोढ कियो विसतार, जाणैन जोसी करै बिचार।
आइसौ भील पारधी हाथ नही, पाइ प्यगुलो मुष दाँत न काही।
हयौ हयौ मृघलौ धुणही न तही, टटा सुर तिहाँ नाद नाही।
भीलडै तिहा ताणियो बाण मन ही मृघलौ बेधियौ प्रमाण।
हयौ हयौ मृगलो वेधियौ वाण, धुणही बाण न थी सर ताण।
भीलडी मातगी राणी मृघलौ आणी ठाणी।
चरण बिहूणौ मृघलो आण्यो, सीस सीग मुष जाइ न जाण्यो।
भणत गोरषनाथ मछिद्र ना पूता, मारयौ मृघ भया अवधूता।
याहि ट्यिाली जे कोई बूझे, ना जोगी कौ तृभुवन सूझे॥

× × ×

चीटी कैरा नेत्र मैं गज्येन्द्र समाइला।
गावडी के मुप मैं बाघला बिबाइला।
बारे बरसै बझ व्याई, हाथ पाव टूटा।
बदत गोरषनाथ मछिन्द्र ना पूता।

× × ×

नाथ बोलै अमृत बाणी,
बरिषैगी कबली भीजैगा पाणी[1]। (टेक)
गाडि पडरवा बाधिलै षूँटा, चलै दमामाँ बाजिलै ऊँटा।
कउवा की डाली पीपल बासै, मूसा कै सबद बिलइया नासै।
चलै बटावा थाकी बाट, सोवै डुकरिया ठौरे षाट।
ढूकिलै कूकर भूकिलै चोर, काढै धणी पुकारै ढोर।
ऊजड षेडा नगर मझारी, तलि गागर ऊपर पनिहारी।
मगरी[2] परि चूल्हा धूँधाइ, पोवणहारा कौ रोटी षाइ।
कामिनि जलै अँगीठी तापै, बिच बैसदर थरहर काँपै।
एक जु रढिया रढती आई। बहू बिवाई सासू जाई।
नगरी कौ पाँणी कूई आवै, उलटी चरचा गोरष गावै।।

तथा

चलि रे अबिला कोयल मौरी,
धरती उलटि गगन कूँ दौरी। (टेक)
गईया बपडी सिघ नै घेरै।
मृतक पसू सूद्र कूँ उचरै।
काटै ससत्र पूजै देव।
भूप करै करसा की सेव।
तलि कर ढकणी ऊपरि झाला।
न छीजेगा महारस बचैगा काल।
दीपक बालि उजाला कीया।
गोरष के सिरि परबत दीया।

यही योगी का भार है। वह अब ब्रह्म है। सब को उसे अब मुक्त करना है। ठीक इसी अनुभूति से तो वज्रयानी भी कह उठा था—सब को निर्वाण देना है, हे भगवान वज्री। सब को ही इसकी प्राप्ति होनी चाहिए।

आध्यात्मिक रूपक

उलटबासियाँ वास्तव मे आध्यात्मिक रूपको की एक खान है। यहाँ कुछ आध्यात्मिक रूपक अर्थ-सहित दिये जाते है।

---

1 जनसाधारण में

कबीरदास की उलटी बाणी।
बरसे कंबल भींगे पानी।

के रूप में कबीर की रचना मानी जाती है।

2 लकडी।

सख्या	गोरखबानी के रूपक	अर्थ	अन्य कवि	पंक्ति (तुलनीय-भेद और समता-दोनो के दृष्टिकोण से)
1	गगन सिषर	आकाश-मण्डल ब्रह्म-रध्र	सरहपा	सुण्ण तरुवर णिवकरुण, जहि पुणु मूलण साह। तहि अलमूला जो करइ, तसु पडिमिज्जइ बाह।
2	शून्य	,,		
3	अबर	,,		
4	अगम	,,	दारिकपा	अलक्ख लक्खइ चिए महासुहे
5	शिवपुरी	,,		विलसइ दारिअ गअणत, पारिम कूलें।
6	अतीत	,,	योगीन्दु	अत्थिण पुणगुण पाउ जसु, अत्थिण हरिसु विसाउ।
7	पुरुप	,,		अत्थिण एक्कुवि दोसु जसु सोजि णिरजणु भाउ।
8	डूगरि	,,	शबरपा	ऊचा ऊचा परवत तहि बसइ सवरी बाली।
9	दसम द्वार	ब्रह्मरध्र		
10	लोह	,,		
11	बालक	ब्रह्म निरजन	तिलोपा	खण आणद भेउ जो जाणइ।
12	हीरा	,,		सो इह जम्महि मोइ मणिज्जइ।
13	भण्डार	ब्रह्मसुख		हउ सुण्ण जगु सुण्ण तिहु अण सुण्ण, णिम्मल सहजे ण पाप स पुण्ण।
14	नगर	शून्य सुख		
15	विमल जल	अमृत	कण्हपा	विमल सलिल सौ स जाइ कालग्गि पइट्ठइ।
16	चन्दवा	,,		
17.	पूर्णिमा	,,		
18.	नीझर झरिया	,,		
19	षीर	,,		

20	दीपक	ब्रह्म-ज्योति		
21	ज्वाला	कुण्डलिनी	डोम्बिपा	गगा जउना माझै बहइ नाई।
22-23	देवी, धरती	,,		तह बुडिली मातगी पोइआ।
24	शक्ति	,,		लीले पार करेइ।
25	डीबी	,,	धामपा	कमल कुलिश माझे भमई लेली।
26	पाणी	वीर्य्य		समता जोऐहि जलिल चण्डाली।
27	अरध			डाह डोम्बिघरे लागेलि आगी।
28	अरद्यत	,,		ससधर लइ सिचहु पाणी।
29	अर्ध			णउ खरे जाला धूम ण दीसइ।
30	जल	,,		मेरु सिहर लइ गअण पईसइ।
31	व्यन्द	,,		दाढइ हरि हर ब्रह्मण नाडा। दाढइ नव गुण शासन पाडा।
32	मूल	,,		भणइ धाम फुड लेहु रे जाणी। पञ्चनाले उठे गेल पाणी।
33	मोती	ज्ञान		
34	हस्ती	मन	कण्हपा	
35	मृग	,,		मणतर, पाच इन्दि तसु साहा।
36	कौआ	,,		आसा बहल पात फल बाहा।
37	कुत्ता	,,		जो तरु छेबइ भेउण जाणइ।
38	ऊँट	,,		सडि पडियाँ मुढ नामव माणइ।
39	मद्दा(मत्स्य)	,,		
40	बिल्ली	माया	मूसुकपा	माआजाल पसारी बाधेलि माआ हरिणी।
41	बुगला	,,		
42.	डुकरिया	,,		
43.	बाँझ	,,	टेंडणपा	निति सिआला सिंहे सम जूझअ।

44	लोई	माया		
45	सुस्सा	,,		
46	मट्ठा	निस्सार मायिक वस्तु		
47-48	शिशुपाल शूद्र	काल	लुईपा	काश्रा तरुवर पचविडाल। चंचल चीए पइठ्ठा काल।
49-50	मद्गर बाज	मृत्यु		
51	निबोली	मायामय मूल		वेगस साप बड्हिल जाश्र।
52	गाय	आत्मा	टेडरणपा	दुहिल दुधु कि वेन्टे समाश्र।
53	नाला	नाडी		वलद विश्राश्रल गविया बाँझे।
54	अनली	पिगला		पिटहु दुहिश्रइ ए तिनो साँझे।
55-56.	घट भॉडा	शरीर	कण्हपा	काण्ह कपाली जोइ पइठ श्रचारे।
57-58.	अहूठ पटरण	,,		देहि न अरि विहरह एक कारे।
59-60	नगरी क्यारी	,,		
61	कामधेनु	आध्यात्मिक अनुभूति		
62.	चीता	आत्म-तत्त्व		
63	मूसा	सूक्ष्म अतर्मुख जीवन	मूसुकपा	मूसा। पवन। मार रे जोइया मूसा पवना। जेरण तूटइ अवरणा गवरणा।
64	पाताल	स्वाधिष्ठान चक्र		
65	मारिणक	कैवल्य		
66-67	शब्द, नाद	अनहद	कण्हपा	अनहा डमरु बजइ विरनाटे।
68	समुद्र	गुरु	सरहपा	नावहि नौका हानश्र गुरणे। सदगुरु बश्ररणे धर पतवाल।
69	पचदेव	पचन्द्रियाँ		
70-71	बद्दरा, राहु	मूलाधार सूर्य		

इनके अतिरिक्त अनेक रूपक पुस्तक मे बिखरे पडे हैं। जिनमे निम्नलिखित मुख्य है—कामदेव = चोर, पारिग = सिद्धि, हंसा = आत्मा, घाटी = द्वार, चन्द = सूर, गग, जमन = इडा, पिंगला, डोरी = समाधि, तेल = आयु, भुयगम = श्वास, सुरही घरि = सुषम्ना, दीया = जीवन, बाघरणी = स्त्री, पडरवा =

माया का पुत्र, कली, फूल=यौवन, जरा, लक्कड=ससार मे बहने वाला, नौ बछडा=नौ रन्ध्र।

लोकोक्तियाँ

देश भाषा मे लिखने का मुख्य कारण यह था कि जन साधारण उस भाषा को समझ जाएँ। सो गोरखबानी मे अनेक लोकोक्तियाँ है जो काव्य और साहित्य को अत्यन्त सजीव बनाने वाली है।

जब दूसरा आग हो तो स्वय को पानी के समान होना चाहिए यह सन्त-परम्परा का अत्यन्त प्राचीन कथन है

आगिला अगनी होइबा अवधू,
तो आपण होइबा पाणी।

माया को छोडकर दूर होना चाहिए, लका राक्षसो की नगरी है। उसके परे जाना ही ठीक है

लका छाडि पलका जाइबा।

प्राय अपने समय के प्रति सदैव ही चेतन की यह खीझ रही है।

यह जुग है काटे की बाडी देषि देषि पग धरणाँ।

निश्चिन्तावस्था का परिचय है

अपणी आत्मा आप विचारी।
तब सोवौ पाँव पसारी॥

पाँय पसारना अब भी चलता है।

गोरखबानी मे कुछ-एक सबदियाँ ऐसी है जिनको स्वय लोकोक्ति कहा जा सकता है

कहणि सुहैली रहणि दुहैली
कहणि रहणि बिन थोथी।
पढ्या गुण्या सूवा बिलाई षाया,
पडित के हाथ रह गई पोथी॥

तथा

कहणि सुहैली रहणि दुहैली,
बिन षायाँ गुड मीठाँ।
खाई हीग कपूर वषाणै,
गोरष कहै सब झूठा॥

और

हिरदा का भाव हाथ मैं जाणिये,
यहु कलि आई षोटी।
बदत गोरष सुनो रे अवधू
करवै होइ सु निकसै टोटी॥

जो लोटे मे होगा, वही तो टोटी से निकलेगा।

नासमझ के लिए कहते हैं

सूने जगल भटकत फिरही, मारि लिही बटमारै।

यदि आप ठीक है तो सब ठीक हे।

अवधू मन चगा तो कठौती ही गगा।

पढ-लिख कर खाली गुने बिना क्या लाभ .

सीपि सापि बिसाह्या बुरा,
सुपिने मे धन पाया पडा।
परषि परपि लै आगै धरा,
नाथ कहै पूता पोटा न खरा।

इसी से आगे उन्होने फिर कहा है

काची अगनी नीर न पीजै।

अब भी प्रसिद्ध कहावत है—बैठा बनिया तोले बाँट। अथवा—बेकार मत जिया कर, पजामा उधेड कर ही सिया कर। योगी कहता है—

चालिबा पथा कै सीबा कथा।

कबीर मे जैसा भाव है—लालो की नहिं बोरियाँ, साधु न चले जमात। यहाँ निम्नलिखित है

घटि घटि सूण्या ग्यान न होइ।
बनि बनि चदन रूप न कोई।

इसी से—

ग्यान सरीपा गुरु न मिल्या,
चित्त सरीपा चेला।
मन सरीपा मेलू न मिल्या,
तायै गोरप फिरै अकेला॥

गुरु को जिसने नम्र होकर खोजा

तिन सर की पोट उतारी।

अन्यथा लोगो की तो अद्भुत अवस्था है।

भिदर छाडै कुटी बँधावै,
त्यागै माया और मँगावै।
सुदरि छाडै नकटी वासै,
ताते गोरष अलगै न्हासै।

क्योकि,

बूढा न जोगी, सूरा न पीठि पाछै घाव।

और वे ससार को चेतावनी देकर कहते है

ऊजलमीन सदा रहै जल मै सुकर सदा मलीना।
आतम ग्यान दया विरिण कछु नाही कहा भयो तन पीरणा।

अपने शिष्यो को एक आदेश है

तीनि जरणै का सग निवारौ नकटा बूचा कारणा।

सक्षेप मे यह कहना उचित है कि गोरषबानी मे ऐसी अनेक लोकोक्तियाँ है जिनके कारण अथक सजीवता बनी रहती है।

गोरखनाथ के विचार, शैली तथा कवित्व

अनदेखे को देखना ही गोरप का काम है, और देखकर ही वह सन्तुष्ट नही होते, उस पर विचार भी करते है। उधर पाताल की गगा ब्रह्माण्ड मे चढ रही है और विमल जल पिया जा रहा है। यहाँ है अस्तित्व, यहाँ लय है, यहाँ ही तीनो लोको का सृजन हो रहा है वह अक्षय ब्रह्म सदैव साथ है, इसीलिए तो अनन्त सिद्ध योग-पथ मे योगेश्वर होते है।

अलष विनारणी दोइ दीपक,
रचिलै तीनि भवन इक जोती।
तास विचारत त्रिभवन सूझै,
चुरिणल्यौ माँरिणक मोती॥

वाद-विवाद व्यर्थ है, सार मे भी सार मिल गया है। गर्व न करो, सहज ही रहो। कबीर ने भी कहा था .

सहज सहज सब कोई कहै सहज न समुझै कोई।

गोरख बहुत पहले यही कह चुके है। आधाभरा ही 'झलझलन्ति' की उपाधि पाता है। भरा हुआ तो स्थिर है। शरीर एक मढी है। मन रूपी जोगी उसमे रहता है। उसने अपने लिए पच तत्व की कथा बनाई है। क्षमा खडासन है, ज्ञान उसकी अधारी है, अच्छी बुद्धि खडाऊँ है, विचार उसका डण्डा है

यहु मन सकती यहु मन सीव, यहु मन पाँच तत्त का जीव।
यहु मन लै जै उनमन रहै, तो तीन लोक की वार्ता कहै।

पण्डित, तुमने पढा ! ठहरो और उसका सार समझो। करनी के बिना कोई पार उतरा है ? गोरखनाथ कहता है मै किस को साक्षी बनाऊँ। घट-घट के भीतर दीपक जल रहा है। हाय पशु फिर भी आँखो से नही देख पाता। मुझे साक्षात् दर्शन हो रहे है। अब तो कोई भी सन्देह नही रह गया। सब पर विश्वास फैल गया है। नीचे के कवल मे से ऊपर वाले के बीच प्राण पुरुष का वास होने लगे तब प्राण-वायु ऊपर चढने लगेगा, तब ही ज्योति का प्रकाश होगा। आसन से बैठना, पवन का विरोध करना, स्थान और मान अपना महत्त्व रखते हुए भी वास्तव मे सब धन्धे है, जो आत्मा को विचारता है उसे ही सब कुछ ऐसे दिखाई देने लगता है जैसे जल मे चन्दा का स्वच्छ

प्रतिबिम्ब है। हे अवधूत, पाँचो इन्द्रियो का निवारण करो! अपनी आत्मा का स्वय चिन्तन करो, तब चिन्तारहित हो जाओगे, तब पाँव पसारकर सो सकोगे। बहुत दिन बाद कबीर ने कहा था कि जब तक गाया, तब तक ब्रह्म नही जाना था, जब ब्रह्म को जान लिया तब गाने को कुछ नहीं रहा। यह विभोर आनन्द है। इसकी तन्मयता अखण्ड है, आहार कम करो। नीद को तोड दो। शिव और शक्ति का मिलन करो जब अनाहत नाद उठने लगेगा, तब कथ को त्रिभुवन मे भी कोई बाधा नही होगी।

हे नाथ, जजाल छोडो! अमृत-पान करने से मनुष्य बालक हो सकता है। गोरषनाथ अद्भुत बात कहता है कि ब्रह्माग्नि से मूल को सिंचित करने से खिला हुआ फूल भी फिर से कली हो गया। नियम है कि खिला हुआ फूल सदा झर गया, किन्तु नाथ की तो कालवचिनी विद्या है। सोलह कला वाली नाडी मे सूर्य है। सहस्रदल मे प्राण पुरुष का मेल हो रहा है। वहीं असख्य कलामय शिव का स्थान है, देवालय यात्रा-शून्य यात्रा है, तीर्थ-यात्रा पानी की यात्रा है, सुफल यात्रा तो अतीत की यात्रा है। शिव और शक्ति का जब तक परिचय नही हुआ, तब तक किसने क्या पाया है! काल क्या साधारण है! भयानक है उसकी चुनौती। पुरुष को वह घेरे हुए है। उसने स्त्री बनाकर उसकी आयु क्षीण करने के लिए अपना जाल फैला दिया है। मूर्ख है वे जो पुरुप के बिना स्त्री और स्त्री के बिना पुरुष के कल्याण की चिन्ता भी नहीं कर सकते। स्त्री और पुरुप के इस अन्धविश्वास के कारण कि वे अखण्ड हैं, दोनो ही धोखे की सवारी पर नष्ट हो गए है। लोग कहते है कि पुरुप और स्त्री अपनी जननेन्द्रियो के भेद के कारण अलग-अलग है। मूर्ख है वे। यह तो नपुसकता का चिह्न है कि मनुष्य के ऐसे विचार हो। स्त्री क्या भग ही के कारण स्त्री है। नही, वह जाल मे डालने वाली है। स्त्री तो दीक्षित हो या योगिनी, पास बैठी अच्छी नही लगती। योगी को तो अकेला रहना ही ठीक है। निद्रा भी तो गोरख से हार मान गई है। अब न उदय है, न अस्त, न रात है, न दिन। इस चराचर विश्व मे भाव नही है। भिन्नता नहीं है। वही निरजन शेष है। मूल और शाखा के भेद-उपभेद भी कुछ नही। वह न सूक्ष्म है, न स्थूल। सर्वव्यापी है। ब्रह्माण्ड को फोड दो। फिर उस शून्य की नगरी मे लूट मचा दो। भेद नही समझ रहा है कोई भी। पहले शरीर-रूपी घर को घेर लो, तब ही पाँच देव अर्थात् इन्द्रियो को पकडा जा सकेगा।

जल के सयम से आकाश अटल हो जाता है। अन्न के सयम से प्रकाश, पवन के सयम से नवद्वार बन्द होते है। बिन्दु के सयम से शरीर स्थिर हो जाता है। हे अवधूत, शब्द को बीध लो, शब्द को प्राप्त करो! कोई निन्दा करता है कोई बन्दना, कोई हम से आशा करता है। पर गोरषनाथ कहता है

कि हमे कोई चिन्ता नही । हमारा पथ खरा हे । हम सब के प्रति निरपेक्ष हे । वही भाव है—भावाभावाविनिर्मुक्त । राह चलते-चलते पवन टूटता है, नाद, बिन्दु और वायु मे गडबड पड जाती हे । ओ भाई ! तू कहाँ जा रहा है ? अडसठो तीर्थ तेरे घट के ही भीतर है । कहा था, यही कहा था, सरहपा ने, सिद्धो ने । यही गोरख कह रहा है । कबीर ने फिर-फिर यही कहा । अखण्ड है यह धारा । ब्राह्मणवाद की नकल नही करना चाहते ये लोग ।

जहाँ गोरष हे वहाँ ज्ञान की गरीबी है । वह कभी अहकार नही करता । पर द्वन्द्व और वाद-विवाद वहाँ नही है । जो निस्पृह है, जो बिना दाँव के खेलता है, उसी को गोरप समझ लो ।

बिन्दु-बिन्दु सब कोई कहते है । किन्तु महाबिन्दु को तो कोई बिरला ही प्राप्त करता है । बिन्दु को वीर्य कहकर जो बध आदि क्रिया करते है, उनका कथ भी किसी ने स्थिर होते देखा है ! खाली वीर्य की रक्षा नही, स्वय ब्रह्म की अनुभूति की आवश्यकता है । अपने मस्तिष्क से काम लो । पाँच कटारें शरीर के भीतर-ही-भीतर तुम्हे घायल करती चली जा रही है । सृष्टि का तो एक ही द्वार है पुरुप बैसता है, पुत्र निकलता है । गोरख को यह अच्छा नही लगता । तभी उसने समार की स्त्रियो को माता कहकर वैराग्य ले लिया है । हे अवधू, सहज लो, सहज दो, सहज से प्रीत करो, उसी से लौ लगाओ ! सहज-सहज अगर चलोगे तो तुम्हारा पात्र स्वय बढता जाएगा, और अधिक तत्त्व तुम्हारे भीतर समा सकेगा । तूँबी मे तीनो लोक समाये हुए है । सूर्य, चन्द्र, त्रिवेनी सब उसी के भीतर है । हे ब्रह्मज्ञानियो, अभग अनाहत नाद को सुनो । समझो ! वह तूँबी माया की है । नाद से उसे काट डालो । मन को बाँधूँगा । पवन को बाँधूँगा । दोनो को एक-दूसरे से बाँधूँगा । और हे मन, मै तेरी माँ (माया) को मूँडूँगा । पवन को बहा दूँगा । मन ! जब तेरी माँ को शिष्या बना डालूँगा तब न मन का गमन रहेगा, न पवन का । वहाँ कोई भी नही पहुँच सकेगा, जहाँ गोरष लौ लगाकर बैठा होगा ।

नाथ कहता है—मेरे दोनो पथ पूरे है । शरीर भी, और मन भी । जत और सत के बिना कोई सूरवीर नही हुआ । यही जत-सत हमारी रहनी है । हे देवि ! हे माया ! हम नही, बलि और बकरे तुम्हारे है, वे माया मे फँसे हुए है ।

गोरषनाथ अन्य साधुओ की भाँति नही है

पावडियाँ पग फिलसै अवधू लोहै छीजत काया ।
नागा मूनी दूधाधारी एता जोग न पाया ।
दूधा धारी पर धरि चित, नागा लकडी चाहै नित ।
मौनी करै म्यत्र की आस, बिन गुर गुदडी नही बैसास ।

यदि योगी धूर्त है तो वह

धूतारा ते जै धूतै आप, भिष्या भेजन नही सताप।
अहूठ पटण मै भिष्या करै, ते अवधू सिवपुरी सचरै।
घरबारी सो घर की जाणै, बाहरि जाता भीतरि आणै।
सरब निरतर काटै माया, सो घरबारी कहिये निरजन की काया।
गिरही सो जो गिर है काया, अभिअतरि की त्यागै माया।
सहज सील का धरै सरीर, सो गिरही गगा का नीर।

सिद्ध की शोभा सब से अलग है

नग्री सोभत बहु जल मूल बिरषा,
सभा सोभत पडिता पुरषा,
राजा सोभत दल प्रवाण,
यू सिधा सोभत सुधि बुधि की बाणी।

उत्तराखण्ड जाने से कुछ नही होता। उत्तराखण्ड तो ब्रह्मरध्र है, वहाँ जाना चाहिए।

उत्तर पड जाइबा सुनिफल खाइबा, ब्रह्म अगनि पहिरबा चीर।
नीझर झरणे अमृत पीया यू मन हूवा थीर।

बन्धन-मुक्त योगी तो यह है

बैठा अवधू लौह की पूंटी,
चलता अवधू पवन की मूंठी
सोवता अवधू जागता मूवा,
बोलता अवधू प्यजरै सूत्रा।

मन हाथ क्यो नही आता ?

पडित ग्यान मरौ क्या झूझि, औरै लेहु परम पद बूझि।
आसण पवन उपद्रह करै, निस दिन आरम्भ पचि-पचि मरै।
उनमन जोगी दसवे द्वार, नाद व्यद ले धूं-धूं कार।
दसवे द्वारै देइ कपाट, गोरष षोजी औरै बाट।

फिर वह कौन-सा द्वार है वही तो गोरख का आतम-तत्व है

घट ही रहिबा मन न जाई दूर, अह निस पीवै जोगी बारुणी सूर।
स्वाद विस्वाद बाई काल छीन, तब जानिबा जोगी घट का लछीन।
परचय जोगी उनमन षेला, अहनिसि इछया करै देवता स्यूँ मेला।
षिन षिन जोगी नाना रूप, तब जानिबा जोगी परचय सरुप।

और गोरषनाथ का मनुष्य पुकार उठता है

निसपती जोगी जानिबा कैसा।
अगनी पाणी लोहा माने जैसा।

राजा परजा समिकरि देष,
तब जानिबा जोगी निसपति का भेष ।

तभी उसे सचमुच निष्पत्ति हुई ।

अभैमात्रा जोग से नाथ योगी के वेश पर प्रकाश पडता है । उसकी कुछ विशेषताओ पर भी जो निम्नलिखित वस्तु है

कोपीन, मेषली, जगौटा, मुद्रा, कथा, अकुलपथ, अकुल मार्ग, सहज आसन, सयम, पवन, युक्ति, सत्य, क्षमा, जरणा, अधारी, अन्तर्गति, झोली, धीरज, डडा, फाहुडी, चक्र, तप, कमण्डल, भोजन, रहस्यविचार, दया, पुस्तक, विचार, रसायण, सरबगी कला, विद्या, नगरी, निर्भयता, वनखण्ड, मढी, देवता जो अतीत है, ग्यान दीपक, अकल्प रहनी, अयाचित भिक्षा, शब्द, सीगी, अनाहत नाद, कीगुरी, सरोवर, प्याला, ऋद्धि, करामात, सिद्धि, मुक्ति, ध्यान, समाधि, पेड, पल्लव, युग है । अमृत ही फल है । वास्तव मे ये तुलनाएँ है । केवल यह दिखाने का प्रयत्न है कि नाथ योगी का वेश उसकी आवश्यकताएँ तथा चेष्टाएँ किस वातावरण मे किस प्रकार के शब्दो का प्रयोग करती थी ।

गोरखबानी मे ऐसे भी स्थल है तथा सम्प्रदाय की इन रचनाओ से यह अनुमान कर लेना सरल है कि साधना के किस स्तर पर पहुँचकर यह बानियाँ कही गई है । पापडियो पर कठिन प्रहार किये गए है

साग का पूरा ग्यान का ऊरा, पेट का तूटा डिंभ का सूरा ।
बदत गोरषनाथ न पाया जोग, करि पापड रिझाया लोग ।

वास्तविकता तो यह है ·

अगनि ही जोग अगनि ही भोग । अगनि ही हरे चौसठि रोग ।
जो इहि अगनि का जाणै भेव । सो आप ही करता आप ही देव ।

गोरखनाथ स्वय अपना परिचय देते है —

माता हमारी मनमा बोलिये,
पिता बोलिये निरजन निराकार ।
गुरु हमारे अतीत बोलिये,
जिन किया पिड का उधार ।

आपा मजिबा सतगुरु षोजिबा, जोग पथ न करिबा हेला ।
फिरि फिरि मनिषा जनमन पायबा करि लै सिध पुरिस सूँ मेला ।।

व्यर्थ समय नष्ट करने से कोई लाभ नही ।

अबूझि बूझिलै हो पडिता अकथ कथिलै कहाँणी ।
सीस नवाँवत सतगुर मिलीया जागत रैण बिहाँणी ।
विद्या पढि र कहावे ग्यानी ।
बिना अविद्या कहै अग्यानी ।

परम तत्त का होय न मरमी ।
गोरष कहै ते महा अधरमी ।

और योगी फिर एक अद्‌भुत प्रश्न पूछ उठता है

काया तै कछू अगम बतावै
ताकी मूडूँ भाई ।

जीव और ब्रह्म साथ रहते है इसलिए वध करके रुधिर और माम मत खाओ । हस का, अर्थात् प्राण का घात न करो, सब को 'करिवा गोत' अपने गोत्र का समझो । गोरख कहता है अपने पुत्रो को देखो अर्थात् सब को अपने पुत्र जैसा समझो

जीव क्या हतिये रे प्यड धारी, मारिलै पचभू अगला ।
चरै थारी बुधि बाडी, जोग का मूल है दया दाण ।
कथत गोरष मुकति लै मानवा मारिलै रे मन द्रोही ।
जाकै बप वरण माम नहीं लोही ।

नाथ कहता है

पढि पढि पढि कैता भुवा कथि कथि कथि कहा कीन्ह ।
बढि बढि बढि बहु घट गया पारब्रह्म नही चीन्ह ।

नाथ को इसका ध्यान रखना चाहिए क्योकि

पडित भडित अर कतवारी, पलटी सभा, विकल्ता नारी ।
अपढ बिपर जोगी घरबारी, नाथ कहै रे पूता इनका सग निवारी ।

और सबसे अलग रहने वाला जोगी स्वय अपने-आप से प्रश्न करता है

कोण देस स्यूँ आये जोगी, कहा तुम्हारा भाव ।
कोण तुम्हारी बहण भाणजी, कहा धरोगे पॉव ।।

उत्तर है । माया अर्थात्—

पछिम देस स्यूँ आए जोगी, उत्तर (ब्रह्मरध्र) हमारा भाव ।
धरती (कुण्डलिनी) हमारी बहिण भाणजी, पापी के सिर पॉव ।।

योगी पूर्ण विश्वास से कह उठता है —

कथणि कथै सो सिष बोलियै, वेद पढै सो नाती,
रहणि रहै सो गुरू हमारा हम रहता का साथी ।
रहता हमारे गुरू बोलियै हम रहता का चेला,
मन मानै तो सग फिरै नहिं तो फिरै अकेला ।
जिनि जाण्या तिनि परा पहेचाण्या,
बा अटल स्यूँ लौ ताई ।
गोरप कहै असे कान। सुणता
सो आप्याँ देष्याँ रे भाई ।।

ठीक, जैसे कालान्तर मे कबीर ने कहा था—'जिन खोजा तिन पाईया।' वही दुर्दम विश्वास जिस से अक्खड गोरखनाथ ने कबीर को एक कदम आगे बढाकर फक्कड भी बना दिया था। होगे लोग, उन्होने तो सिर्फ कानो से ही सुना था—गोरखनाथ ने उसे आँख से देख लिया है।

कबीर ने माया की चपेट मे गोरख को भी लपेट लिया था। किन्तु गोरख ने स्वय कहा था

कुम्हरा के घर हाँडी आछै अहीरा के घरि साँडी।
बह्मना के घरि राँडी आछै राँडी साँडी हाँडी।
राजा के घर सेल आछै, जगल मधै बेल।
तेली के घर तेल आछै, तेल, बेल, सेल।
अहीरा के घर महकी आछै देवल मध्ये ल्यग।
हाटी मध्ये हीग आछै हीग ल्यग स्यग।
एक सुन्नै नाना वणिया बहु भाँति दिखलावे।
भणत गोरष त्रिगुणी माया सतगुर होइ लषावै।

और

जडी बूटी का नाव जिनि लेहु, राज दुवार पाँव जिनि देहु।
थभत मोहन बसिकरन छाडौ उचाट, सुणौ हो जोगेसरो जोगारभ की बाट।
छोडौ बैद बणज व्यौपार, पढिबा गुणिबा लोकाचार।
पूजा पाठ जपौ जिनि जाप, जोग माहि बिटवौ आप।
जडी बूटी भूलै मति कोइ, पहली राँड वैदकी होइ।
जडी बूटी अमर जे करे, तो वैद धनतर काहे को मरे।
सोनै रूपै सीझै काज, तो कत राजा छोडै राज।
पसुवा होइ जपै नहि जाप, सो पसुवा मोषि क्यो जात।
नैण महारस फिरौ जिन देस, जटा भार बधौ जिनि केस।
रूष विरष वाडी जिनि करौ, कूवा निवाण पोदि जिनि मरौ।

समाज का गोरखनाथ के काव्य मे स्पष्ट प्रतिबिम्ब है। यह अवश्य है कि वह केवल आध्यात्मिक दृष्टिकोण से खीचा गया चित्र है, फिर भी उसमे विषमता प्रगट हो ही जाती है। ऊपर दिये गए अनेक उद्धरण सस्कृत के पहले दिये गए उद्धरणो से बहुत अधिक मिलते हे। परिस्थिति, चित्रण तथा अन्त -साक्ष्य भी कुछ अश तक दिखाई देते हे। प्राय इन वस्तुओ की मात्रा गोरख के काव्य मे उतनी ही है जितनी सिद्ध कवियो की कविता मे। इसमे साम्प्रदायिकता अधिक है। सामन्त-काल की विषमता का इसमे परिचय नही। सामन्तीय कविता यदि समाज के बाह्य का परिचय देती है तो सिद्ध और नाथ कविता मनुष्य के अन्तरग का। इन दोनो को मिलाकर देखने से समाज की वास्त-

विकता बहुत अश तक बाहर झलक आती है। सौन्दर्य-वैभव-परम्परा का गौरव यदि पहले रूप मे मुखर है तो दूसरे रूप को देखकर प्रश्न उठता है कि यह सब किसलिए। स्पष्ट उत्तर है कि पहले रूप का असामजस्य विषमता का कोई हल सामने नही रखता। क्या दूसरे रूप का व्यक्तिवाद ही इसका उत्तर देने मे समर्थ है ? वह तो रहस्य की ओर खिचा जा रहा है, वहाँ तो

अलेष लेपत अदेष देषत अरस-परस ते दरस जाणी।
सु नि गरजत बाजत नाद अलेखे-सेष्यत ले निज प्रवाणी।

उसकी बात का कौन विश्वास करे

गगनेन गोपत तेजेन सोषत पवने न पैलत बाई।
मही भारे न भाजत उदके न डूबत कहाँ तो को पति आई।

तथा

रमि रमिता सो गहि चौगान,
काहे भूलत हो अभिमान।
धरन गगन बिचि नही अतरा,
केवल मुक्ति मैदान।।

वह तिल की ओट मे था। मैं त्रिभुवन छान आया। नाक आया। पर जब उसने इच्छा की तब मै ही वह हो गया।

आम्ति कहू तो कोई न पतीजै,
बिन आस्ति क्यू सीधा।
गोरष बोलै सुणौ मछिद्र
हीरै हीरा बीधा।

हे पण्डितो, सुनो, समझो, गोरख क्या कह रहा है

बूझौ पडित ब्रह्म गियान,
गोरष बोलै जाण सुजान। (टेक)
बीज बिन निसपती मूल बिन बिरषा पान फूल बिन फलिया।
बाझ केरा बालूडा प्यगुला तरवरि चढिया।
गगन बिन चद्रम ब्रह्माड बिन सूर झूझ बिन रचिया थान।
ए परमारथ जे नर जाणै ता घटि चरम गियान।
सु नि न अस्थूल रूप नही पूजा धुनि बिन अनहद गाजै।
बाडी बिन पुहुप पुहुप बिन सामर पवन बिन भृगा छाजै।
राहु बिनि गिलिया अगनि बिन जलिया अबर बिन जलहर भरिया।
यहु परमारथ कहौ हो पडित रुग जुग स्याम अथरबन पढिया।
ससमवेद सोहं प्रकास धरती गगन न आद।
गग जमुन बिच पैले गोरष गुरु मछिन्द्र प्रसाद।

गोरख ने तो अपना कठिन पथ पार कर लिया

वदत गोरष राई परसि ले केदार,
पाणी पीओ पूता त्रभुवन सार। (टेक)
ऊँचे ऊँचे परवत विषम के घाट,
तिहाँ गोरषनाथ कै लिया सेबाट।
काली गगा धौली गगा झिलमिल दीसै,
काउरु का पाणी पुनि र गिर पई सै।
अरधै जोगेस्वर उरधै केदार,
भोला लोक न जाने मोष दुवार।
आदिनाथ नाती मछींद्रनाथ पूता,
काया केदार साधीले गोरष अवधूता।

अब तो सब पार हो गए

कहा बूझे अवधू राइ गगन न धरती,
चद न सूर दिवस नही रैनी।
उपजै न त्रिनसै आवै न जाई, जुरा न मरण वाकै बाप न भाई।
भणत गोरषनाथ मछींद्र नादाम्रा, भावभगति और आस न पासा।

अवधूत भी खेल देख ले। ऐसा खेल कभी नही देखा होगा

अवधू मनसा हमारी गीद बोलियै,
सुरति बोलियै चौगान।

इसी मस्ती मे,

अनहद ले षेलिबा लागा
तब गगन भया मैदान।

ब्रह्मरध्र मे से नीद निकलकर आती है और शरीर मे समा जाती है

गगन मडल मैं सुनि द्वार, बिजली चमकै घोर अधार।
ता महि न्यद्रा आवै जाइ। पच तत्त मैं रहै समाइ।

अनहद शब्द आकाश मे बज रहा है किन्तु नाद क्या सरल है ?

नाद बिंद है फीकी सिला । जिहि साध्या ते सिधै मिला।

और गोरख फिर एक ऐसी बात कहता है जिसका समझना सरल नही है :

बोल्य-गोरष घर जोई,
ये तत बूझै बिरला कोई, मेरे ग्यानी। (टेक)
जो ज्यौ जोज्यौ रे जहूवा बन जोज्यौ तत्त राष्यौ तरियाली,
आसण इद्री जेणै आष बसि राष्या,
तेणै पाया सर्व निरन्तर, मेरे ग्यानी।
मन माहै नेणै तन तार्या मन बिसवासै मिलणा

मन मे कुभ कलस रस भरिया तेणौ

मन वै अलष लषाया, मेरे ग्यानी ।

पँर जोई ने उब्दा पुरिष पधारया, पुरिष नी पाग्षा पाई ।

पुरिषै मिलि पुरिष रस राष्या,

पुरिषै पुरिष निपाया, मेरे ग्यानी ।

जिहि घरि चद सूर नहि ऊगै तिहि घरि होसी उजियारा ।

तिहा जे आसण पूरौ हौ सहज

का भरौ पिवाला, मेरे ग्यानी ।

मन माहिला हीरा वीधा सो

सो सोधी ने लीणा,

सो षाँणाँ सो पीवणाँ,

मछिन्द्र प्रसादै जती गोरष बोल्या,

विमल रस जोई जोई ने मिलणाँ, मेरे ग्यानी ।

अब गोरख जोगी तोले-तोले का व्यापार करने लगा है। आगे बढ-बढ कर वह अमूल्य रत्न को गाँठ बाँधता है। और गोरख की आवाज़ गूँज रही है।

सोना लो! मुझ से रस रूप सोना लो। मेरी जाति सुनार है। धौकनी को धौका, रस का जमाया, तब गगन मे महारस मिला है। अब ऊपर, मध्य नीचे सब स्थान पर सोना ही सोना हो गया।

ओ मेरी इच्छा, तू अपना व्यापार प्रारम्भ करदे। प्राणपुरुष उत्पन्न हो गया।

मनसा मेरी व्यौपार बाधौ, पवन पुरिष उतपना ।

जाग्यौ जोगी अध्यात्म लागौ, काया पाटण मे जाणा।

काया-रूपी नगर मे वह प्रवेश करेगा :

माहरा रे वैरागी जोगी,

अहिनिसि भोगी, जोगणि सग न छाडै ।

मानसरोवर मनसा झूलती आवै,

गगन मडल मठ माडे रे। (टेक)

कौंण अस्थानिकि तोरा सासू ने सुसरा,

कौण अस्थानक तोरा वासा ।

कौण अस्थानक तू नै जोगणि भेटी,

कहाँ मिल्या घर वासा ।

नाम अस्थानक मोरा सासू नै सुसरा,

ब्रह्म अस्थानक मोरा वासा ।

इला प्यगुला जोगण भेटी

सुषमन मिल्या घर वासा ।

आवागमन भ्रम का मार्ग है, पुरुषो (सिद्धो) का बताया हुआ मार्ग असली है।

सबद अतीत अनाहद बोलै अतरि गीत समाया।
विमल पथ बीजल ज्यूँ चमकै घरहरती धन गाजै।
ता रहनी मै जोगी का घर अनहद बाजा बाजै।
जा पद मदिर धजा फरहरै मढी सवारै चैला।
कोटि कला जहा अनहद वाणी गावै पुरिष अकेला।

'विकार' और 'भोग' के अनेक कारण आगे बने रहे, किन्तु फिर भी वासना घेरने मे असमर्थ हो जाए।

नौ लष पातरि आगै नाचै, पीछै सहज अषाडा।
ऐसे मन लै जोगी पेले तब अतरि बसै भडार।
जहाँ नही तहँ सब कुछ देख्या कह्या न को पतिआई।
दुबिधा भाव तबै ही गइया, बिरला पदा समाई।

शताब्दियो तक भारत के गगन मे गोरख का यही प्रश्न गूँजा किया।

बसती न सुन्य सुन्य न बसती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिषर महि बालक बोलै ताका नाव धरहुगे कैसा।

कोई न दे सका इसका उत्तर। सन्तो ने फिर पूँछा और थोडे दिन तक गूँजकर यह शब्द शून्य मे जाकर लय हो गया जो मनुष्य की मेधा से भी अधिक मौन, निस्तरग और निष्ठुर है। सन्धि-युग का धुँधलका इस्लाम की सेनाओ की पगध्वनि मे खो गया। स्वय जैसे महाकवि विस्मृत हो गए। गोरख की महत्ता को लोग भूल गए और भारत के इतिहास का एक महान् युग काल के गम्भीर समुद्र मे एक लहर बनकर खो गया।

गोरख का चेतन, ससार को जाग्रत करने के लिए बार-बार पुकार उठा है—क्यो है यह मनुष्य दुखी ? शकर ने भी पूँछा था—तूँ कहाँ से आया है, तूँ कौन है ? नलिनी-दल पर फिसलते जल की भाँति तरल है यह अतिशय चपल जीवन। सारा लोक शोक से आहत है। और गोरख ने अपनी समस्त शक्ति को एकत्र करके कहा—वीर्य पवन सब कुछ है, सब का अपना महत्त्व है, किन्तु सब से बढकर मनुष्य गगन के समान है, यदि निरपेक्ष दृष्टि से देखा जाए तो क्या यह सेश्वरवाद, यह निरजन महाशून्य की भावात्मक अथवा अभावात्मक अथवा दोनो से अतीत अनुभूति नही है ? शकर के विषय मे विवर्त्त और उनकी चरम लय की विचारधारा से सब लोग अत्यन्त प्रभावित है, किन्तु क्या गोरख का विचार उनसे कम है ? शकर का समाज असम है, पर बात सरल लगती है, वह तो अद्वैत पर ही रुक गए है। द्वैताद्वैत से परे गोरख का शरीर-जाल से परे होकर उनसे भी दूर जा बैठना कितना कठिन है ! इतिहास

मे ढूँढने पर भी भारत मे एक भी ऐसा महापुरुष नही मिलेगा, जिसका सेश्वरवाद अपनी चरमावस्था मे निरजन था, अथवा कहा जाय ईश्वरत्व वहाँ शेष नही था। वहाँ तन की आवश्यकता नही। पर काया से बढकर और क्या है ? कहाँ है ? गोरख स्त्री को त्याज्य समझता है, पर वह उसकी माँ है।

आवो माई धरि धरि जावो,
गोरष बाला भर भर षावो। (टेक)
झरै न पारा बाजे नाद,
सति हर सूर न वाद विवाद।
पवन गोटिका रहणि अकास,
महियल अतरि गगन विलास।
पयालनी डीवी सुनि चढाई,
कथत गोरषनाथ मछींद्र बताई।

यह राह मछिंद्र ने बताई है। हे मन, हीरे से हीरा बेध दिया है तो काया मे कौन जाए। क्यो जाए ? मगन मिपर मे चन्दा समा गया है सिद्ध गोरष तो भव जल नदी के पार उतर गया है और वह कह रहा है —

जागौ हो जोगी अध्यात्म लागौ,
जागतडा मूल म हारौ म्हारौ भाई रे।
अदरि बैठो अपणौ साहिब,
देषै सोधै सकल समाई रे।

परीक्षक भीतर बैठा है। हे योगी, जागते रहो ! जागृति के मूल को भूलो मत !

गोरखनाथ की काव्य-शैली का निम्नलिखित रूप से विश्लेषण करना उचित जान पडता है

(1) गोरखनाथ ने पद और सबदी का प्रयोग किया है। कुछ अन्य रचनाएँ उपदेश के रूप में है। भाषाएँ बहुत मिल गई है।

(2) गोरखनाथ की शैली मे जहाँ एक ओर बात सीधा प्रहार करती है, वहाँ दूसरी ओर सीधा प्रहार तो दूर उसका आसानी से समझ मे आना भी कठिन है, क्योकि वह रहस्य मे डूबी हुई भावनाओ को दर्शाती है। उलटबाँसियो का प्रयोग काफी हुआ है।

(3) रूपक बहुत प्रयुक्त हुए है, अलकार वही गिने हुए हैं जो घूम-फिर कर लौट-लौट कर आते है।

(4) पूर्ववर्त्ती सिद्धो से वह काव्य के क्षेत्र मे, सस्कृत हो या हिन्दी, अधिक नही बढे हैं। प्रायः उनकी शैली वही है जो पूर्ववर्त्तियो की थी।

(5) केवल विचार और दर्शन के भेद के कारण उनकी अभिव्यजना मे भेद आ गया है, जो अपने आप मे महत्त्वपूर्ण होते हुए भी तुलनीय रूप मे कोई अधिक महत्त्व नही रखता ।
(6) तत्कालीन जैन तथा ब्राह्मण धर्मों का दृष्टिकोण रखने वाली कविता जहाँ तक अपने-अपने सम्प्रदाय से ही सम्बन्ध रखती है, वहाँ वह गोरखनाथ के समान ही सकुचित और बद्ध है । किन्तु जो कवि सामतीय शासन के अन्न पर पलते थे, उन्होने कही अधिक अच्छी कविता की है, उनका दृष्टिकोण कही अधिक विस्तृत था ।
(7) सवाद की प्राचीन परम्परा का पहला उदाहरण नाथ-सम्प्रदाय की कविता ही हिन्दी मे उपस्थित करती है । इसके बीज गोरख की कविता मे भी मिलते है जहाँ योगी अपने-आप से प्रश्न करके स्वय उत्तर देता है ।
(8) रहस्य की भावना के कारण उत्पन्न दुरूहता मे ही काव्य का सौन्दर्य प्रस्फुटित हो सका है । अन्य तो सीधे-सीधे से उपदेश है जिनमे व्यजना नही, अभिधा ही मूल शक्ति है ।
(9) समाज तथा अन्य जो भी विषय गोरख की कविता मे प्रतिबिम्बित हुए है, वे इन्ही रूपको के सहारे आकर आकर्षक रूप मे उपस्थित हो सके है ।
(10) वस्तु-तथ्य के दृष्टिकोण से गोरख का बहुत बडा महत्त्व है, क्योकि उनके विचार ने ही भारत का इतिहास एक विशेष दिशा मे मोड दिया था । इस पर फिर लिखना अनावश्यक है, क्योकि हम दर्शन, विचार तथा उनकी देन को देख चुके है । भारतीय इतिहास मे उनका महत्त्व आगे कुछ विस्तार से देखना आवश्यक होगा ।
(11) काव्य की दृष्टि से शैली मे विशेष नवीनता नही होने पर भी यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि गोरखनाथ हिन्दी के एक सन्धि-युग के कवि थे । उनकी भाषा को एक विशेष देन थी, यह उनकी रचनाओ से ज्ञात होता है । इसके अतिरिक्त कबीर तक का इतिहास स्पष्ट हो जाता है । न केवल काव्य के दृष्टिकोण से, वरन् इतिहास के दृष्टिकोण से भी । सन्त-काल की पृष्ठिभूमि, सन्त कविता का मूल स्रोत तथा उसकी विशेष शैलियो का उद्गम स्पष्ट हो जाता है । सम्प्रदाय का इतने दीर्घ समय मे कितना बडा महत्त्व था, यह गोरख तथा उनके अनुयायियो की कविता की भाषा प्रकट करती है, जो आज उनके नाम मे हमे प्राप्त होती है ।
(12) हिन्दी-कविता की भक्तिकालीन शैलियो का स्रोत भी इसी कविता

मे है । ह्रस्वात और दीर्घान्त चौपाइयो का भी गोरखबानी मे प्रयोग हुआ है ।

(13) गोरखबानी का काव्य-सौन्दर्य यदि एक ओर उसकी लोकोक्ति-सदृश्य बानियो मे है कि वे उपादेयता के दृष्टिकोण से नैतिक साहस प्रदान करती है, तो दूसरी ओर सत्य की उस पुकार मे, जो जितनी ही दुरूह होती है उतनी ही ऊँची उडान लेकर व्यक्ति को विमोहक विस्मय मे डाल देती है ।

(14) निस्सन्देह गोरख की कविता एक अलकार-मात्र नही है, वह मनुष्य को ऊपर उठने की प्रेरणा देती है । सहमत न होकर भी मनुष्य यह अनुभव करता है कि बात ऊपरी नही है, उसके पीछे एक प्रेरणा है, विश्वास है, और वह विश्वास किसी का जीवित विश्वास है, जिसने कहने वाले मे अपार शक्ति भर दी है ।

नाथ-सम्प्रदाय की कविता

नाथ-सम्प्रदाय की कविता का गोरखनाथ की कविता से भी अधिक मूल्य है । गोरखनाथ की कविता मे योगी-सम्प्रदाय के चिन्तन का एक उत्कर्ष है । उनके पूर्ववर्त्तियो के विचारो का प्रतिबिम्ब उनमे स्पष्ट है । किन्तु नाथ-सम्प्रदाय की कविता एक व्यक्ति के नही, अनेक व्यक्तियो के परिश्रम का फल है जो गोरखनाथ के नाम के आगे अपने व्यक्तित्व को नही उठा सके और सम्प्रदाय के आचार्य के प्रभुत्व मे उनकी सत्ता विलीन-प्राय हो गई । यह कविता इसीलिए अधिक महत्वपूर्ण है । गोरखनाथ को अपने पूर्ववर्त्तियो का खण्डन करके अपने को उठाना पडा । परवर्त्ती शिष्यो ने गोरखनाथ को घर-घर मे पहुँचा दिया, इसमे उन्हे अनेकपथियो से टक्कर लेनी पडी । खण्डन, सामजस्य और मेल-मिलाप करते हुए लोग अपने पथ को फैलाने के प्रयत्न मे लगे रहे । गोरख के अनन्तर न केवल 1100 ई०, वरन् कबीर तक, ये ही लोग अपना प्रभुत्व जमाए रहे । जो मठ, मन्दिर अखाडे तथा अनेक जातिया गोरखनाथ के नाम से सम्बद्ध है उनके लिए वास्तव मे यही लोग उत्तरदायी है ।

इस्लाम का प्रवेश इनके युग मे अपनी दो परिस्थितियाँ सामने रखता है । 1100 ई० तक इस्लाम का साधु-रूप जिसमे इनसे उन लोगो की खूब बहसे होती होगी । दूसरा रूप इस्लाम का विजयी शासक बनकर बढना । इस्लाम ने जो भारत के धर्मों के भेद को न समझकर भारत मे रहने वाले मात्र को हिन्दू कहा, प्रारम्भ से ही जोगी ने इसका विरोध किया । यह आवश्यक था कि—

उतपति हिन्दू जरणा जोगी अकलि पीर मुसलमानी ।
ते राह चीन्हो हो काजी मुला ब्रह्मा विस्नु महादेव मानी ।

हिन्दू तो जोगी जन्म से है। अपने पचाने की शक्ति से वह अब जोगी हो गया, हिन्दू नही रहा। पीर अर्थात् गुरु-भक्ति को समान रूप से स्वीकार करने के कारण वह मुसलमान है। उस राह को पहचानो जिसे, हे मुल्लाओ और काजियो ! ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव तक ने माना है।

स्पष्ट ही पृष्ठभूमि मे भारत की सस्कृति और इतिहास बोल रहा है।

राम-सम्प्रदाय बढता जा रहा था। उधर मुसलमान बढ रहे थे। तभी योगी ने कहा

हिंदू ध्यावै देहुरा मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परम पद जहाँ देहुरा न मसीत॥

कबीर की भी इससे मिलती-जुलती एक सबदी मिलती है। योगी अपने को हिन्दू-मुसलमान के पचडे मे नही डालना चाहता। हिन्दू का अर्थ स्पष्ट ही यहाँ ब्राह्मणधर्म का अनुयायी है। अद्भुत है वह सहिष्णुता ! भारत जैसे पहले विभिन्न जातियो को पचा गया था, क्या वैसे ही अब भी कोई सम्प्रदाय इसके लिए तत्पर हो रहा है ? क्या जो काम पहले आर्य-सामाजिक व्यवस्था मे स्थित ब्राह्मणधर्म अथवा बौद्ध सम्प्रदाय करते थे, वह अब आर्य-सामाजिक व्यवस्था के बाहर स्थित एक सम्प्रदाय पूरा करना चाहता है ? जातियो की भीषण उथल-पुथल हो रही है। इस्लाम दुन्दुभि नाद, बराबरी का जय-घोष गुजारित करता हुआ बढा आ रहा है, किन्तु नाथ-सम्प्रदाय के सामने विरोधाभास है :

(1) वह अपने को ब्राह्मण धर्म के समान सकुचित नही पाता, इस्लाम भी उसमे आ जाय तो उसे स्वीकृत है।

(2) किन्तु इस्लाम तो सब-कुछ बदल देना चाहता है। योगी अपनी सास्कृतिक पृष्ठभूमि नही छोडना चाहता। उसे इतिहास से जड मोह नही है, वह चेतन है। लेकिन जिस पथ को ब्रह्मा, विष्णु और महादेव मान गए, जोगी और किस को उससे बढकर स्वीकार कर सकता है !

वास्तव मे यह एक त्रिकोण युद्ध था। अंग्रेजी का यह वाक्याश ही इस स्थान पर अनूदित करना पडा है। एक ओर इस्लाम, दूसरी ओर ब्राह्मणवाद, तीसरी ओर जोगी। एक बराबरी का सामाजिक स्वरूप, सामन्तवाद की ओर अग्रसर, दूसरा घोर असाम्य और सामन्तवाद का गढ, तीसरा बराबरी का रूप लिये, किन्तु व्यक्तिवादी। जहाँ समूह भी है तो दुनियादारी से दूर। इस सम्प्रदाय को घृणा नही। पहला इसे भी दूसरे से अलग नही मानता। यह स्वय दूसरे से ऐसी घृणा नही करता कि हर परिस्थिति मे उसका विरोध करे। इस्लाम की विजय हुई। बराबरी का नारा हिन्दुओ पर भी असर करने लगा और

दक्षिण से उठी लहर से जा मिला । उधर पूर्व मे ह्रासप्राय बौद्ध मत की अन्तिम लहर बढकर इसमे मिल गई । जोगी को ब्राह्मण-व्यवस्था पचाने लगी । इस्लाम भी सामन्तवाद से हार गया । अब इतिहास बदल गया । यह है नाथ-सम्प्रदाय की कविता मे ऐतहासिक प्रतिबिम्ब, जो किसी भी तथ्य से अधिक सशक्त है । यही नई शक्ति मर कर कबीर मे बार-बार फूट पडी है ।

सहिष्णु जोगी मुहम्मद को पीर मानता है—

महमद महमद न करि काजी,
महमद का विषम विचार ।
महमद हाथ करद जे होती
लोहै घडी न सार ।
सबदै मारी सबद जिलाई ऐसा महमद पीर ।
ताकै भरमि न भूलौ काजी सो बल नही सरीर ।

यह शान्तिपूर्ण अनुनय है । मुहम्मद ने लोहे से नही, शब्द से काम लिया था । तुममे वह शक्ति कहाँ है ! यह उठी हुई तलवार को चुनौती देने का साहस भारत के बिरले ही महापुरुषो के वचनो मे रहा है, जिसने युग-युग से इस देश के गौरव को अक्षुण्ण रखा है । खाली कहने से क्या होता है

नाथ कहता सब जग नाथ्या गोरष कहता गोई ।
कलमा का गुर महमद होता पहलै मूवा सोई ।

कलमा के गुरु मुहम्मद ही सबसे पहले चल बसे । तभी बाबा रतन हाजी ने कहा है

ऊ लोहा पीर,
ताँबा तकबीर,
रुपा मोहम्मह सोना षुदाई ।
दुहु बिचि दुनिया गोता षाई ।।
हम तो निरालभ बैठे देखत रहै ।
ऐसा एक सुष्न बाबा रतन हाजी कहै ।।

गुरु लोहा है, युक्ति ताँबा है, मुहम्मद चाँदी और खुदा सोना है । चाँदी और सोने के बीच दुनियाँ गोते खा रही है । पर हम निरालम्ब देखते हुए बैठे है । हमे क्या ! हम तो इन सबसे अलग है ।

नाथ-सम्प्रदाय ने जहाँ योगी-सम्प्रदाय का सगठन किया, निम्न जातियो को शक्ति दी, बौद्धो को आत्मसात् करने की चेष्टा की, ब्राह्मणो को चुनौती दी, तथा भारतीयता का गर्व, उसका अभिमान उसकी अच्छाइयो को लेकर स्थापित रखने का प्रयत्न किया, वहाँ इस्लाम पर भी उसने गहरा प्रभाव डाला । इस पर हम आगे कुछ विस्तार से विचार करेगे । किन्तु वह शक्ति

बिखरकर इधर-उधर डूब क्यो गई ? इसका उत्तर है—रहस्य की वह व्यक्ति-वादी भावना, जो गोरख-मछीन्द्र के सवाद मे प्रगट है ।

गोरष —स्वामी कहाँ थे उठत सास उसास, कहाँ परम हस का बास ।
कौण धरमन थिर होइ रहै, सतगुर होइ सु बूझया कहै ।
मछीद्र—अवधू अरधै उठत सास उसास, उरधै परम हस का बास ।
सहज सुनि मै मन थिर रहै, ऐसा विचार मछीद्र कहै ।
गोरष—स्वामी कैसै आवैं कैसे जाइ, कैसै चीया रहै समाइ ।
कैसै मन तन सदा थिर रहै, सतगुर होइ स बूझया कहै ।
मछीद्र—अबधू सुने आवै सुने बाइ, सुनै चीया रहै समाइ ।
सहजि सुनि मन तन थिर रहै, ऐसा विचार मछीद्र कहै ।

शून्य ! चारो ओर शून्य ! भीतर-बाहर सब ओर शून्य ! तभी शिव और शक्ति अन्दर ही मिल गए परम लक्ष्य सिद्ध हुआ । तब योगी को और कुछ भी नही चाहिए । अब वह जन्म से छूट गया । मृत्यु से डर हट गया ।

नूभै सनोष अनभै विचार । दुह मे ध्यान काया कै पार ।

सब प्राप्त हो गया ! निश्चल मन मे 'दरियाव' समा गया है !

मन मे समाया हुआ यह 'दरियाव' नाथ-सम्प्रदाय के कवियो मे ही नही रुका, वरन् सन्त कवियो मे भी बहता रहा । शून्य का अर्थ बदल गया । नई नई कल्पनाएँ बन गई परन्तु उसने पीछा नही छोडा ।

नाथ-सम्प्रदाय का परवर्त्ती सन्तो पर प्रभाव

कबीर ने नाथपथियो को बहुत-कुछ भला-बुरा कहा है किन्तु अनेक चक्रो के स्थान पर अनेक लोको का सृजन हुआ ।

आहूत	सहज द्वीप	सहज पुरुष स्थान
राहूत	अकुर ,,	अकुर ,, ,,
साहूत	इच्छा ,,	इच्छा ,, ,,
बाहूत	सोहग ,,	सोहग ,, ,,
हाहूत	अचित्य ,,	अचित्य ,, ,,
लाहूत	आरण्य ,,	अक्षर स्थान सायुज्य मुक्ति
जबरुत	झाझरी ,,	सारूप्य मुक्ति निरजन स्थान
मलकूत	बैकुण्ठ विष्णु स्थान	सामीप्य मुक्ति
नासूत	दह्म अश का स्थान	सालोक्य मुक्ति
देवपुरी सिद्ध स्थान	पृथ्वी और नासूत के मध्य	

यहाँ सापिन है, पिड-ब्रह्माड एक है। एक ही स्वरूप है। (पृ० 327)

आहूत से ऊपर शून्याकार, फिर सत्य लोक। हिन्दू और मुसलमान का सामजस्य योगि-सम्प्रदाय के परवर्त्ती स्वरूप मे जाकर इस प्रकार हुआ।[1]

'ब्राह्मण प्रयोजन सिद्ध करने के लिए झूठ बोलेगे। ब्रह्मा से जब आद्या मिली तब आद्या ने पिता को खोजने के लिए कहा। ब्रह्मा ने पिता निरजन को न खोजकर झूँठ कह दिया, आद्या ने शाप दिया। (पृष्ठ 35)

"विष्णु सिद्ध साधको को बन्दर की भाँति नचाते है।" (पृष्ठ 40) परवर्त्ती युग की बदलती विचारधारा का अच्छा आभास है।

आगे, आकाश मे एक तप्त शिला है। काल पुरुष उसी पर सब जीवो को भून-भून कर खाया करता है। (पृ० 45)

कबीर हस हैं (पृ० 57)। इजील यजुर्वेद है (पृ० 56)। किन्तु यह भावना बहुत परवर्त्ती है। यह विचार इतना आगे बढ गया कि इस्लाम की असहिष्णुता के सामने ब्राह्मण धर्म स्थित तथा बाहर के सम्प्रदाय सब आपस मे मिल गये।

नाथ-सम्प्रदाय का प्रभाव वास्तव मे कबीर मे अधिक मुखर है। तब ही कहा गया है कि मनुष्य जितनी स्त्रियो के साथ सम्भोग करता है, उतने ही गर्भों से उसे जन्म लेना पडता है (पृ० 64)। कबीर से स्वय धर्मराज ने कहा —वेदशास्त्र, तीर्थ, व्रत, मूर्तिपूजा, मन्त्र, यन्त्र, हवन, यज्ञ, आचार्य, बलिप्रदान, मास-भक्षण, मदिरापान, परस्त्रीगमन मैने फन्दे बनाए है।

कबीर-पथ के धार्मिक नियम तुलनीय है—

1 एक अविगत, अतीत, ब्रह्म, सत्य पुरुष की सेवा। जो गुरु पथ-प्रदर्शन से ही ज्ञेय है।
2 सत्यपुरुष और कबीर एक ही है।
3 गुरु-सेवा, उपार्जन का 10वा भाग गुरु का।
4 साधु-सेवा।

---

1 कबीर मसूर, वैंकटेश्वर प्रेम 1902। यह पुस्तक न केवल कबीर ही की है बल्कि इसमें कबीर पथी साहित्य भी है, अत अधिक महत्त्वपूर्ण है।

5 समान दयाभाव ।
6 मास-आहार त्यक्त ।
7 मदिरा आदि वर्जित ।
8 व्यभिचारी नरक को जाता है ।
9 12 तिलक, तुलसी-माला, कठी आवश्यक ।
10 यत्र मत्र तत्र व्यर्थ ।
11 स्वसवेद्य के बिना अन्य पुस्तके अविश्वसनीय ।
12 नवधा भक्ति । 4 प्रकार की मुक्ति-बन्धन ।
13. हिन्दू-मुसलमान एक-से ।
14 मुक्ति मार्ग साँकरा, नरक मार्ग चौडा ।

तब कबीर ने कहा है—

हम वासी वहि देश के जहाँ जाति वरण कुल नाहि ।
शब्द मिलावा होइ रहा देह मिलावा नाहिं ।

साहित्य मे सम्वाद की एक परम्परा चल पडी । देवदत्त तथा अविनाशी का सम्वाद, कबीर-गोरख सम्वाद प्रसिद्ध है । इनके अतिरिक्त गोष्ठी का विवरण बहुत मिलता है । कबीर की गोरख और नानक दोनो ने प्रशसा की है ।

गोरखनाथ-वचन—

नौ नाथ चौरासी सिद्ध इनका अनहद ग्यान ।
अविचल घर कबीर का, यह गति बिरला जान ।
झोली झण्डा कूबरी, शेली, टोपी साथ ।
दया भई जब कबीर की, चढाई गोरखनाथ ।

तथा नानक-वचन—

वाह गुरु समरथ गुरु वह गुरु जन्दा ।
काट देव तुम भवजल फन्दा ।
धन्य कबीर परम गुरु ज्ञानी ।
अमर भेद भाखी निज बानी ।

पूछे गोरख कबीर ताई—

कर्ता को स्वरूप कौन है ? अण्ड को स्वरूप कौन है ? अण्डपार कौन है ? नाद बिन्द योग कौन है ? जीव ईश्वर भोग कौन ? भूमि औतार कौन ? निराकार कौन ? पाप पुण्य करै कौन ? वेद और वेदान्त कौन ? वाच और अवाच कौन ? चन्द्र, सूर्य भास कौन ? पच मे प्रपच कौन ? ओह सोह कौन ? स्वर्ग-नरक, वसै कौन ? जरा मरण काल कौन ? गुरु सिख बोध कौन ? क्षर अक्षर निरक्षर कौन ?

कहै कबीर, हे गोरख !

जाते भयो स्वप्न अण्डमाह, मूरत बसै अण्ड माहि, सो कर्त्ता को स्वरूप

नाहि, अड कौ स्वरूप है। नाद बिन्द योग स्वप्न, जीव ईश्वर भोग स्वप्न, भूमि औतार स्वप्न, निराकार स्वप्न है । पाप पुण्य करे स्वप्न, वेद और वेदान्त स्वप्न । वाचा अवाच स्वप्न । चन्द, सूर्य श्वास स्वप्न । पच मे प्रपच स्वप्न । ओह सोह स्वप्न है । स्वर्ग, नरक बसे स्वप्न । पिड और ब्रह्माण्ड स्वप्न । आत्मा परमात्मा स्वप्न, जरा मरण काल स्वप्न, गुरु शिष्य बोध स्वप्न, क्षर-अक्षर निरक्षर गोरख स्वप्न है । कहै कबीर, सुन गोरख, स्वप्न पार सत्य समरत्थ है । सो सत्य नाम सत्य लोक सत्य समरत्थ है। (पृ० 568-69)

कुण्डलिनी महामाया वासना विष से भरी है, फुर्ना से मन प्रकट होता है। निश्चय से बुद्धि । अह होने पर अहकार । चिन्तन से चित्त । स्पर्श से मुख, वायु, देखने के लिए अग्नि, रस के लिए जल, सूंघने को पृथ्वी । इस प्रकार 5 तन्मात्रा, 4 अन्त करण, 14 इन्द्रियाँ तथा सब नाडियाँ इसी से उत्पन्न होती है।

लिग देह, सूक्ष्म शरीर, अँगूठे के बराबर है । ऊकार मात्रिका, शुक्ल वर्ण है । विष्णु देवता, श्री हठ स्थान, मध्यमा वाचा, ऊर्द्ध शून्य, यजुर्वेद, वैकुण्ठ लोक, कण्ठ स्थान, पालन क्रिया, आप तत्व, भूचरी मुद्रा, विहग मार्ग, द्वितीय पद गायत्री, क्षर निर्णय, मदाग्नि, कोऽह अहकार, सामीप्य मुक्ति, पचभूत, सूक्ष्म प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, 4 अन्त करण मन, बुद्धि, चित्त अहकार, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गध, यह सूक्ष्म 9 तत्त्व हैं। 5 ज्ञानेन्द्रियाँ, 5 कर्मेन्द्रियाँ, यह जड अर्थात् अनुपम है, जिसकी सत्ता से चैतन्य होते है उसको जीव कहते है। (पृ० 1135)

और सन्त-साहित्य एक स्वर से गूँज रहा है। विषया, घेरने वाली माया का प्रभाव भयानक है।

योगी के योगन ह्वै बैठी राजा के घर रानी।
घट ही माँहि चबूतरा घट ही माँहि दिवान।
सुमरन मारग सहज का सतगुरु दिया बताय।
स्वाँसहि स्वाँस जो सुमिरता एक दिन मिलसी आय।
आग लगी आकाश मे झरि झरि परै अँगार।
कबिरा जरि कचन भया, काच भया ससार।
सूर्य समाना चद मे, दोऊ किया घर एक।
जब लागी जोगी हुआ, मिटि गई ऐंचातान।
उलटि समाना आप मे, अब भया ब्रह्म समान।
गगन मडल के बीच मे बिना कमल की छाप।
पुरुष एक तहँ रमि रहा, नही मत्र नहिं जाप।

गगन गरजै बरसै अभी बादल गहर गभीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी भीजै दास कबीर।
गगन मंडल के बीच मे तहवाँ झलकै नूर।
निगुरा महल न पावई पहुचेगे गुरु पूर।
उनमुनि लागी सुन्न मे दिन दिन रहे गलतान।
तन मन की कुछि सुधि नही, पद पाया निरबान।
उनमुनि सो मन लागिया गगनहि पहुँचा जाय।
चाँद विहूना चाँदना, अलख निरजन राय। (कबीर)

और मीरा ने कहा है

सहज मिले अविनासी रे।
सतगुर भेद बताईया, खोली भरम किवारी हो।
सब घट दीसै आतमा सब ही सू न्यारी हो।
दीपक जोऊ ज्ञान का, चढू अगम अटारी हो।
त्रिकुटी महल मे बना है झरोखा, तहाँ से झाकी लगाऊ री।
सुन्न महल मे सुरत जमाऊ सुख को सेज बिछाऊ री।

× × ×

'बावन कसनी' मे वही भाव है।

सुन्य सिषर पर बाजी लाया, शब्द भेद कोई बिरला पाया।

तथा सुन्य स्वभाव आकास भरो है।
तूँ नहि जानत चेतन साई। (शब्दावली)

दादू, सुन्दरदास तथा अन्य अनेक कवियो मे यही प्रतिध्वनि है, किन्तु कबीर ने नाथ-सम्प्रदाय का ऐतहासिक निर्णय किया है

उलट समाना गैब मे कहाँ रहेगा ऐब।
मध्य माहिं वासा करै ताको काल न खाय।

बसै अपिंडी पिंड मे।

धरती और आकास मे दो तू बरी अबद्ध।
षट दरसन धोखे पडे औ चौरासौ सिद्ध।
दत्तात्रेय मर्म नहिं जाना मिथ्या स्वाद भुलाना।
सलिलामथि कै घृत को काढ्यौ ताहि समाधि समाना।
गोरख पवन रखै नहिं जाना योग युक्ति अनुमाना।
ऋद्धि सिद्धि सयम बहुतेरा पारब्रह्म नहिं जाना।

तथा, अन्तिम विश्लेषण

योगी जगम सेबरा, सन्यासी दुरवेश।
बिना प्रेम पहुँचे नही दुर्लभ हरि का देश।

उपसंहार

समसामयिको पर गोरख का प्रभाव, सम्प्रदाय भेद, इस्लाम पर प्रभाव, बाद का बिगडना, ग्राज का पथ, स्थान, सिद्धान्त ग्रौर व्यवहार, 600 से 1100 तक के तीन पक्ष, भारतीय समाज के दो पक्ष लोक तथा व्यक्ति, गोरक्ष का महत्त्व, बौद्ध ग्रौर मुस्लिम, कबीर ग्रौर तुलसी, गोरख लुप्त, भूलने के कारण, भारतीय सस्कृति की धारा ।

उपसंहार

समसामयिको पर गोरख का प्रभाव

गोरखनाथ का प्रभाव भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण चरण है। इस प्रभाव-क्षेत्र को हम दो भागो मे विभाजित कर सकते है

(1) उनके समय मे उनका प्रभाव ,

(2) उनकी मृत्यु के बाद उनका प्रभाव।

दोनो ही परस्पर एक-दूसरे से गुँथे हुए है, उन्हे अलग-अलग नही किया जा सकता। इस अध्ययन के लिए निम्नलिखित तथ्यो की ओर देखना आवश्यक है—

(क) कितने मत उनसे प्रभावित हुए।

(ख) कितने प्रभावित मतो के मिलने से एक-दूसरे पर क्या प्रभाव पडा।

(ग) इन मतो को मानने वाली कौन-कौन-सी जातियाँ थी। उनका स्थान क्या था।

(घ) समाज मे जातियो की उथल-पुथल का परिणाम क्या हुआ।

(ङ) अन्यधर्मो पर इसकी क्या प्रतिक्रिया हुई। उन्होन उसका प्रभाव रोकने को क्या किया।

(च) प्रभाव का क्षेत्र क्या था।

सान्तिपा जैसे विक्रमशिला के द्वार-पण्डित भी नाथ-सम्प्रदाय मे ही थे। राहुलजी ने उन्हे वज्रयान का सब से बडा पण्डित माना है। ऊपर हमने पूर्ववर्त्ती प्रकरण मे जो सिद्धो की तालिका बनाई थी, उससे ज्ञात होता है कि निम्नलिखित सिद्ध उनके समसामयिक थे या कुछ परवर्त्ती थे

> चामरी नाथ, चौरगीनाथ, धोबी, विरुपा, कनखल, कमारी दारिपा, तन्तिा, अचित, चुणकर, मादे, चम्पक, ढेन्ढस, धर्मपायतग, कामरी, सान्ति, सबर, भद्र, सिपारी, चर्पटी तथा कमल कगारि इत्यादि।

विस्तार मे न जाकर कहा जा सकता है कि ये उन सम्प्रदायो के व्यक्ति थे जो ब्राह्मण धर्म के वाहर थे। यह अवश्य है कि कुछ व्यक्ति इनमे से ब्राह्मण थे। अधिकाश बौद्ध तथा शैव प्रभाव मे समाज की निचली जातियो के व्यक्ति थे।

सम्प्रदाय भेद

गोरखनाथ के बारह प्रधान सम्प्रदाय है। प्रत्येक पथ का एक-एक स्थान

है तथा ये उसे अपना पुण्य क्षेत्र मानते है। प्रत्येक पथ मे एक पौराणिक देवता या महात्मा को अपना आदि-प्रवर्त्तक माना जाता है।

हजारीप्रसाद ने गोरख के एक प्रसिद्ध सिद्ध महन्त बाबा गम्भीरनाथ के एक बगाली शिष्य गोरखपुर द्वारा दिये हुए वर्णन को आधार बनाकर लिखा है—

1 सत्यनाथी, मूल प्रवर्त्तक सत्यनाथ, स्थान पाताल भुवनेश्वर, प्रदेश उडीसा। सत्यनाथ स्वय ब्रह्मा का ही नाम है, इसीलिए ये लोग ब्रह्मा के योगी कहलाते है।

2 धर्मनाथी, धर्मराज युधिष्ठिर, दुल्लुदेलक, नेपाल।

3 रामपथ, श्री रामचन्द्र, चौक तप्पे, पचौरा, गोरखपुर (युक्तप्रान्त) इस समय ये लोग भी गोरखपुर के (स्थान) को ही अपना स्थान मानते है।

4 नाटेश्वरी, लक्ष्मण, गोरखटिला, झेलम (पजाब)। इनकी दो शाखाएँ है—नाटेश्वरी और दरियापथी।

5 कन्हड, गणेश, मानफरा, कच्छ।

6 कपिलानी, कपिलमुनि, गगासागर, बगाल। इस समय कलकत्ते (दमदम) के पास 'गोरखवशी' इनका स्थान है।

7 वैरागपथ भर्त्तहरि, रतढोडा, पुष्कर के पास (अजमेर)।

8 माननाथी, गोपीचन्द। अज्ञात, अज्ञात। इस समय जोधपुर का महा-मन्दिर मठ ही इनका स्थान है।

9 आई पथ, भगवती विमला, जोगी गुफा, या गोरख कुई, बगाल के दिनाजपुर जिले मे।

10 पागल पथ, चौरगीनाथ, पूरन भगत, अबोहर, पजाब।

11 धजपथ, हनुमान जी।

12 गगानाथी, भीष्म पितामह, जखवार, गुरुदासपुर (पजाब)।

शिव तथा गोरखनाथ द्वारा शिव के अठारह या बारह और अपने बारह सम्प्रदायो मे से, पुनर्गठित सम्प्रदाय इस प्रकार हैं

शिव द्वारा प्रवर्त्तित	गोरख द्वारा प्रवर्त्तित
1 भुज (कच्छ) कठरनाथ।	1 हेठनाथ।
2. पेशावर और रोहतक के पागलनाथ।	2 आईपथ के चोली नाथ।
3. अफगानिस्तान के रावल।	3 चाँदनाथ कपिलानी।
4 पख या पक।	4 रतढोडा, मारवाड का वैराग-पथ और रतननाथ।
5 मारवाड के बन।	5 जैपुर के पाव नाथ।
6 गोपाल या राम के।	6 धजनाथ महावीर।

कर लिया जैसे अन्य अनेक जातियो को। गोड यद्यपि ब्राह्मण के हाथ का छुआ भी नही खाते, किन्तु कहलाते हिन्दू ही है। यह दृष्टिकोण केवल मुसलमान के सामने होता है। परस्पर हिन्दू और गोड अभी तक भेद करते है।

अपनी अन्दरूनी व्यवस्था पर भी धीरे-धीरे छाते हुए ब्राह्मण-प्रभाव को योगी एकदम ही रोकने मे समर्थ हो गए है, ऐसा नही कहा जा सकता। इस्लाम के प्रति उनमे बराबर अनेक स्थानो पर विद्वेष बना रहा। योगी सम्प्रदाय की दार्शनिकता और चितन के पीछे वह विराट् परम्परा थी, जिसने ब्राह्मण धर्म से हजारो वर्ष तक टक्कर ली थी। उसका उच्चतम रूप भी था, और निकृष्टतम भी। अब वह इस्लाम को कैसे स्वीकार कर लेता ?

दूसरे योगी-सम्प्रदाय, अर्थात् वह भूमि जिस पर आर्य सामाजिक व्यवस्था के बाहर के भारतीय प्राचीन विश्वास थे, उनम एक रहस्य की भावना बहुत तीव्र थी। अन्य जितने सम्प्रदाय या धर्म थे उनका समाज से अधिक सम्बन्ध था। इसी कारण यदि एक ओर योगी-समाज अधिक एकागी था तो दूसरी ओर उसमे अन्य धर्मो की अपेक्षा कही अधिक कट्टरता थी।

बगाल के ब्राह्मण, जो आर्येतर विश्वासो के प्रहार बहुत पहले से सहते हुए काफी कट्टर है, वे जोगियो को नीचे दर्जे पर ही बिठाते थे। बगाल मे वेदबाह्य धर्मो का अधिक प्रचार रहा। क्योकि वहाँ नाग, मगोल, द्राविड आदि अनेक जातियो का जीवन व्यतीत हुआ है। वे स्वय अधिक कट्टर थी। वहाँ योग-परम्परा भी प्राचीन थी और यक्ष-प्रभाव भी पूरा पडा था। अत जब कालान्तर मे बहुत-से बगाली मुमलमान हो गए तब जो योगी-सम्प्रदाय गोरख के झण्डे के नीचे आये वे भी काफी सशक्त रहे। उनमे शाक्त प्रभाव भी कुछ सीमा तक बना रहा। यही कारण है कि बगाल मे योगी-सम्प्रदाय का प्रभाव तथा मत्स्येन्द्र का सम्बन्ध देखकर गोरखनाथ को भी बगाली साबित करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

प० हजारीप्रसाद ने लिखा है—वर्तमान नाथ-सम्प्रदाय के 12 मुख्य रूप हैं। जिनमे आधे शिव के द्वारा प्रवर्तित हैं, और आधे गोरखनाथ द्वारा। इनके अतिरिक्त और भी बारह या अठारह सम्प्रदाय थे जिन्हे गोरक्षनाथ ने नष्ट कर दिया। उन नष्ट किये जाने वालो मे कुछ शिव के सम्प्रदाय थे, कुछ स्वय गोरक्षनाथ के। अर्थात् गोरक्षनाथ की जीवित अवस्था मे ही ऐसे बहुत-से सम्प्रदाय थे, जो अपने को उनका अनुवर्त्ती मानते थे और उन अनधिकारी सम्प्रदायो का दावा इतना भ्रामक हो गया कि स्वय गोरक्षनाथ ने ही उनमे से बारह या अठारह को तोड दिया। क्या यह सम्भव है कि कोई महान् गुरु अपने जीवन-काल मे ही अपने मार्ग को विभिन्न उपशाखाओ मे विभक्त देखे और भेदो को दूर न करके पथो की विभिन्नता को स्वीकार कर ले ?

आगे आपने वेदबाह्य धर्मों का वर्णन करते हुए (जब वे 11वी सदी के बाद श्रुति-सम्मत होने का प्रयत्न करने लगे थे) लिखा है—स्पष्ट ही ये लोग वेदो की परवाह करने वाले न थे। इन सब के शिष्य और अनुयायी भारतीय धर्म-साधना के इस उथल-पुथल के युग मे गोरक्षनाथ के नेतृत्व मे सघटित हुए। परन्तु जिनके आचरण और विचार इतने दूर विभ्रष्ट थे कि वे किसी प्रकार के योगमार्ग का अग बन ही नही सकते थे, उन्हे उन्होने स्वीकार नही किया। शिवजी के द्वारा प्रवर्तित बने सम्प्रदाय उनके द्वारा स्वीकृत हुए वे निश्चय ही बहुत पुराने थे। एक सरसरी निगाह से देखने पर भी स्पष्ट हो जाएगा कि आज भी उन्ही सम्प्रदायो मे मुसलमान योगी अधिक है जो शिव द्वारा प्रवर्तित और बाद मे गोरक्षनाथ द्वारा स्वीकृत थे।

साख्य-प्रवर्त्तक कपिल मुनि का कपिलानी सम्प्रदाय, जो भागवत मे भी पाया जाता है, वह भी योग-साधना के माध्यम के कारण गोरक्षनाथ के साथ आकर जुड गया है। इससे यही इगित होता है कि गोरक्षनाथ के प्रभाव मे कालान्तर मे वैष्णव योग भी आकर सम्मिलित हो गया होगा।

उपर्युक्त तथ्यो को देखते हुए यह साराश निकालना उचित प्रतीत होता है

(1) गोरक्षनाथ की प्रभाव भूमि, जैसी कि ऊपर देखी जा चुकी है बहुत विशद थी।

(2) अनेक योगमार्गी शाक्त, बौद्ध, जैन आदि पर उनका प्रभाव पडा ?

(3) उनकी मृत्यु के बाद या उनकी जीवितावस्था मे ही अनेक उन्हे गुरु मानने लगे।

(4) अनेक सम्प्रदायो ने आश्रय पाने को उनसे नाम जोड दिया और इस प्रकार नाथ-सम्प्रदाय का एक विराट् रूप हो गया।

(5) इनमे अधिकाश निम्न जातियाँ घुसी, जो वेद-बाह्य थी।

(6) जो नही मिले वे भारतीयता खो बैठे। मुसलमान हो गए।

इस्लाम पर प्रभाव

(7) मुसलमानो के आने पर जब 'हिन्दू'-सगठन हुआ, तब ब्राह्मण धर्म-व्यवस्था के अतिरिक्त अनेक वेद-बाह्य गोरक्षनाथ के झण्डे के नीचे खडे दिखाई दिए।

(8) कालान्तर मे अपने भीतरी आचार-व्यवहार को अपने भीतर रख कर गोरखनाथी भी ब्राह्मण-द्वेषी नही रहे।

(9) इस्लाम पर भी गोरक्ष का प्रभाव पडा। यद्यपि हम देखते हैं कि इस्लाम के आने के पूर्व ही इस्लाम का प्रभाव भारतीय धर्मसाधना पर पडना प्रारम्भ हो गया था, तथापि अब हमे देखना चाहिए कि

इस्लाम पर भारतीय धर्म-साधना का कैसा प्रभाव पडा । इसको हम तीन भागो मे विभाजित कर सकते है

(क) प्रारम्भिक इस्लाम जो रहस्यवाद और प्रेम की भावना को लेकर, केवल धार्मिक और परलोकवाद को लेकर, भारत मे आया, उस पर भारतीय योग-साधना का गहरा प्रभाव पडा। हो सकता है कि अधिकाश सूफी उत्तर द्वार से आने के कारण पहले ही मे योग-साधना के किसी गोरक्ष के पूर्ववर्ती रूप से परिचित अवश्य रहे हो, क्योकि ऊपर देखा जा चुका है कि उस देश मे पाशुपत, बौद्ध आदि का प्रभाव था। भारत मे हठयोग का प्रचलन सूफी कवियो मे नाथ-सम्प्रयाय का ही प्रभाव था।

(ख) जब इस्लाम विजयी रूप मे आया और वह यहाँ बस गया, उसने मत-परिवर्त्तन कराये, तब धीरे-धीरे उस पर जिस भारतीयता का प्रभाव पडा, वह वेद-बाह्य व्यवस्था का नही, वरन् वेद-प्रवृत्त या वेद-ग्राह्य समाज-व्यवस्था का प्रभाव था। मुसलमानो ने सामन्ती व्यवस्था को ग्रहण किया, उन पर धीरे-धीरे ब्राह्मण धर्म का प्रभाव पडा। जाति आदि के विचार उनमे सब तरह की बाह्य समानता के प्रदर्शन के होते हुए भी घर कर गए। यह विषय हमारे आलोच्य काल के बाहर का है।

(ग) वास्तव मे यह रूप दूसरे से पहले का है। यह दोनो के बीच की चीज़ है। हमारे आलोच्यकाल मे इसका वर्णन आवश्यक है। मुसलमान विजयी रूप मे छाने लगे। उन्होने मत-परिवर्त्तन किया। इनमे कई सहर्ष इस्लाम मे मिल गए। योगी भी इस प्रभाव से अछूते नही रहे, बहुत-से मिल गए। यह ब्राह्मणवाद के विरोध की भावना थी। किन्तु वे अपने पुराने योग-मार्ग को नही छोड सके। इसी से गोरख उनसे नही छूटे। प० हजारीप्रसाद का मत है कि वे शिव-प्रवर्तित पुराने सम्प्रदाय इस्लाम की छाया मे आकर फिर गोरखनाथ की ओर आकर्षित हुए। मुझे इसमे एक आपत्ति है कि गोरक्ष का समय यदि नवी शती का अन्त और दसवी का प्रारम्भ है, तो इस्लाम उस समय ऐसा विराट् खतरा नही बन पाया था, बीज भले ही पड गए हो। उस समय वेद और अवेद का सघर्ष था। ब्राह्मण धर्म उठ रहा था, छाये जा

रहा था। यह भारतीय साधना की आपसी लडाई थी। गोरक्ष ने वेद-बाह्यो को इकट्ठा किया। किन्तु वे जिन्हे लेना चाहते थे, उन्हे पहले शुद्ध करके ही। अधिकाश सम्प्रदाय उनके मत मे उनकी मृत्यु के बाद आ एकत्र हुए। वेद और अवेद दो मुख्य परिष्कृत रूपो मे बँटने लगे, जो छूटे वे इस्लाम मे चले गए। यदि ये बाते स्वीकृत नही होती तो यह समझना कठिन लगता है कि गोरखनाथी होने का दावा इस्लाम की छाया मे आने के बाद शिव-प्रवर्तित सम्प्रदाय क्यो करने लगे ? स्पष्ट है गोरख ने योग और साधना को परिष्कृत मात्र किया था। ब्राह्मणो से मिला देना उनका ध्येय न था। अत कुछ योग-मार्ग गोरखनाथी मत मे मिल तो गए फिर भी अपने पहले ब्राह्मण-विरोध को न छोड सके। इस्लाम का प्रभाव तनिक अधिक पडा। काफी लोग मुसलमान हो गए। इसके अतिरिक्त गोरखनाथ के सामने हिन्दू-मुसलमान का कोई प्रश्न नही था। मुसलमान भी उनके सरलता से, शिष्य हो सकते थे। ऐसे व्यक्ति अवश्य कम थे।

धीरे-धीरे पथ का बिगडना प्रारम्भ हुआ। बिगडने का तात्पर्य यहाँ केवल इतना ही है कि गोरक्षनाथ जिस विचारधारा को लेकर चले थे, उस पर अन्य प्रभाव मुखर होने लगे और उन्होने धीरे-धीरे उनके सम्प्रदाय को ढँक लिया। इस प्रकार हम देखते है कि जो सम्प्रदाय गोरखनाथ द्वारा चलाया गया था, वह एक शताब्दी ही, सम्भवत, अपने उसी रूप मे चल सका।

बाद का बिगड़ना

पहली बात है कि सम्प्रदाय-भेद बहुत हो गए। इन सम्प्रदायो की बहुतायत का एक कारण यही है कि गोरखनाथ के नाम पर अनेक सम्प्रदाय अपने बाहरी भेद भावो को छोडकर एक होने का प्रयत्न करने लगे। इस्लाम का मुखर प्रभाव ग्यारहवी शताब्दी से प्रारम्भ होता है, तब इसके क्या कारण हो सकते है ? (1) सम्प्रदाय का आचार्य जिस महान् व्यक्तित्व को धारण करता है उसके अनुयायी उसे प्राप्त करने मे प्राय असमर्थ सिद्ध होते ही देखे गए हैं ? (2) गोरख ने अपने युग मे एक ऐसी भूमि बना दी थी जो इतनी विस्तृत थी कि उस पर बहुत-से लोग खडे हो सकते थे। (3) ब्राह्मण धर्म से बचने का अभी भी आर्य समाज से बाहर रहने वाले प्रयत्न कर रहे थे। यहाँ आर्य समाज शब्द से ब्राह्मणो की वर्णाश्रम-व्यवस्था समझनी चाहिए। यह

ब्राह्मण-धर्म क्यो प्रबल हो गया था ? क्योकि भक्ति और ज्ञान को अनजाने ही गोरक्षनाथ ने योग के शुद्ध रूप की स्थापना से सहायता दे दी थी।

इस सधि-काल के अन्तिम समय मे दो प्रवृत्तियाँ बढ चली—एक तो समस्त शाक्त-सम्प्रदायो की हिम्मत टूट गई। वे अपने को वेदोक्त साबित करने का प्रयत्न करने लगे। पहले तो कहते थे कि वैदिक कर्म अधम है, अब शूद्र और द्विज के हिसाब से अपने भीतर परिवर्तन करने लगे। उनकी वह दार्शनिकता टूट गई थी। अब उन्हे सब तरफ से अलग रहकर भी अपना आश्रय खोजने को आवश्यकता आ पडी थी। इसी से वेद का सहारा लिया गया। शाक्त सम्प्रदाय भी वैसे ही पराजित हुआ, जैसे बौद्ध मत। कौवे अपनी मुखरस्वरूपता छोडने को बाध्य हो गए।[1]

आज का पथ

ठीक यही परिस्थिति नाथ-सम्प्रदाय की भी होने लगी। कही बचत का मार्ग नही था। यद्यपि योगी अपने को हिन्दू और मुसलमान से अलग मानने का दावा करते थे, तथापि उनको अपनी जगह बनाने को उद्यत होना पड रहा था। दार्शनिक दृष्टिकोण से वे अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा के थे, किन्तु इस्लाम का प्रहार काफी भयानक था। वे राष्ट्र मे भी इकट्ठा हो रहे थे और यही ब्राह्मण-व्यवस्था की विजय हुई। ससार छोडकर घूमने वाले मठ बनाकर बैठने लगे। वे माया मे फँस गए। कबीर ने इसका खूब मजाक उडाया है। इनके पास धन इकट्ठा होने लगा। अब योगियो की क्रान्तिकारी भावना धीरे-धीरे समाप्त होने लगी। अनेक सम्प्रदायो मे बैठकर योगी-सम्प्रदाय अपने भीतर बहुत आत्मसात् करता चला जा रहा था, किन्तु अब पुजारी-वर्ग की भाँति योगी-सम्प्रदाय भी अवरुद्ध हो चला था। ठीक बौद्धमत की सी पराजय है। स्त्रीहीन गिरोहो के प्रभाव मे अब जुलाहा आदि जातियाँ आई तो एक तो उनमे पहले ही शाक्त प्रभाव शेष था,[2] दूसरे योगी होकर स्त्री सब कैसे छोड

1. (वा चूडामणि)

> पूजकाले महेशानि यदि कोऽप्यत्र गच्छति।
> दर्शयेद्वैष्णवी मुद्रा वष्णुन्यास तथा स्तवम्।
> अन्त शाक्ता ब हि शैवा सभाया वैष्णवा मता।
> नानारूपधरा वीरा विचरन्ति महीतले।

2 आगे का एक रूप।

अथ गोरक्षनाथ मत्र

(कल्पद्रुमतन्त्रे) गर्ग उवाच—

> गोरक्षस्य मनु जप्वा योगीन्द्रो भविता नर·।
> बिना गोरक्षमन्त्रेण योगसिद्धिर्न जायते।
> गोरक्षस्य प्रसादेन सर्वकार्य्याणि साधयेत्।

सकते थे, अत गृहस्थ भी होने लगे । इसके साथ ही मन्त्र-तन्त्रो ने गोरखनाथ को भी जकड लिया । देखते-देखते आकाश को लेकर चलने वाला स्त्री से अपनी रक्षा नही कर सका । विकार की अति की प्रतिक्रिया गोरक्ष ने स्त्री का अपमान करके, यह असाम्य खडा करके, दूसरे प्रकार की अति मे की थी । वह जब काँटे से काँटा निकाल चुकी, तब रक्त बाहर वह आया और उससे वह व्यवस्था प्रकट हुई जिसका अवशेष आज तक शेष है । यहाँ पत्नी पत्नी ही थी । उसे माता कहकर सृष्टि को रोकने का कोई प्रयत्न न था । अस्वाभाविक बात कहाँ तक चलती ? और स्त्री के लिए धन की भी आवश्यकता थी । तब कबीरदास आगे चलकर यदि गोरखनाथ की तारीफ करते है तो उनके 'अवधू' को खूब तग करते है । गृहस्थ योगी अपनी जाति मे ही तथा साथ ही गोत्र छोडकर विवाह करते है । वे दूध वाले, दर्जी, खेतिहर इत्यादि सब काम करते है । विवाह के पूर्व और अनन्तर दोनो अवस्था मे स्त्री योगिनी बन सकती है । जिसके कान पहले फट जाते है उसका हिन्दू रीति से विवाह नही होता । वह जाति से खरीद ली जाती है ।

निम्न जाति के लोग भी पथ मे लिये जाते है । 1901 मे उनके विषय मे कहा गया कि वे मुसलमानो को भी दीक्षित कर लेते है ।[1] दीनौघर मे अनाथ,

---

मन्त्र यथा—

ऊ ली श्री हु फट् स्वाहा ।
ऊ ह्री श्री गो गोरक्ष हु फट् स्वाहा ।
ऊ ह्रीं श्री गो गोरक्ष हु हु निरञ्जनात्मने हु फट् स्वाहा ।
ऊ श्री गो ली ह हा गोरक्षनाथाय निरञ्जनात्मने ह म फट् हस ।

इसके अनन्तर गायत्री—

ऊ ली श्री गो गोबीजाय विद्महे गोरक्षाय धीमहि तन्नो निरञ्जन प्रचोदयात् ।

फिर ऋष्यादिन्यास, करागन्यास के बाद ध्यान है—

शुद्धस्फटिकसकाशो जटाजूटा त्रिलोचन ।
निरञ्जनो निराकारो निर्विकल्पो निरामय ।

तदनतर पुरश्चरण है—

लक्ष शताधिक जप्त्वा साधक शुद्धमानस ।
साधयेत सर्वकार्याणि नामकार्या विचारणा ।
ध्यायेदयो नरो नित्य मन्त्रेमेन विशेषत ।
स योगसिद्धिमाप्नोति गोरक्षस्य प्रसादत ।

1 ब्रिग्स, पृ० 26 विभिन्न सूत्रों से ब्रिग्स द्वारा सगृहीत तथ्यों का यहा उल्लेख किया जाता है ।

असहाय बालक, काहिल और सुस्त दिल, यहाँ तक कि गार्हस्थ कष्टो मे फँसे तथा वृद्ध भी दीक्षित कर लिए जाते है। खरी-गडरिए अधिक दीक्षित होते है। पहले कच्छ मे ढेढ जाति भी स्वीकृत थी, किन्तु बाद मे उसे अलग कर दिया गया। ढेढ मेघवाल भी कहे जाते है। गोरखमण्डी मे हिन्दू के अतिरिक्त मुसलमान, ढेढ और ईसाई आदि और किसी को भी नही लिया जाता। कन्थडनाथी अहीर, राजपूत इत्यादि जातियो से शिष्यो को चुन लेते है। टिला मे खत्री, अरोडा और ब्राह्मण अधिकाश लिये जाते है कही-कही उन बालको को भी लिया जाता है जिनके पिता पहले से ऐसे दान की प्रतिज्ञा कर चुकते है।

गोरखपुर मे शिष्य बनाने से पहले पुलिस के थाने ले जाकर जाँच की जाती है कि कही शिष्य बनने वाला कोई अभियुक्त या अपराधी तो नही है। सम्प्रदाय के निर्बल हो जाने का यह बहुत बडा चिन्ह है। बौद्धमत के अन्तिम दिनो के सघ के नियमो को दुहरा लेना चाहिए। सम्प्रदाय जब सासारिकता के अच्छे-बुरे से दूर हो जाता है तब बहुधा ऐसा हो जाता है।

दीक्षा की प्रारम्भिक अवस्था मे शिष्य औघड कहलाता था, बाद मे योगी। योगियो की जाति नही होती, वे साथ-साथ खाते-पीते है, साथ ही धूम्रपान कर सकते है। लेकिन हिन्दू और मुसलमान अब अलग हैं। हिन्दू उन हाथ का नही खाते। यह स्पष्ट गोरख से अलग हो जाना है। वैसे तो स्त्रियो को समानता का अधिकार नही दिया गया, पर स्त्रियाँ सग ही खाती-पीती हैं।

पूस, माह, फागुन और चैत शुभ माने जाते है। इन्ही दिनो दीक्षा और इन्ही दिनो उत्सव होते है। शिष्य बनाने के पहले 40 दिन तक गुरु खूब अच्छी तरह शिष्य की परीक्षा लेकर पहले अपने को सन्तुष्ट कर लेता है। योगी अहिसा का व्रत लेता है फिर उसके बाल घुटवाकर योगीवस्त्र पहना दिए जाते है। योगी चुटिया नही रखता। बाल गगा मे फैंके जाते हैं और एक दावत दी जाती है। बाल कटने का अर्थ जाति-बन्धन के टूटने से लगाया जाता है। कान फाडे जाते है। वस्त्रो मे कफनी, लगोटी और एक टोपी दी जाती है। मैने देखा है कि टोपी के स्थान पर, कही कही कपडे का एक टुकडा बाँध लेते है। बाद मे कही बाल, कही चुटिया बढाने की आज्ञा मिल जाती है, जिसे तीर्थ-यात्रा करके गगा को समर्पित कर देना पडता है। फिर गुरु शिष्य को सिंहनाद जनेऊ पहिनाता है। भस्म शरीर पर मली जाती है। औघड साधारण हिन्दुओं-जैसे वस्त्र पहनते है। औघड सिर पर अस्त-व्यस्त केश भी धारण करते है। योगी का सा सम्मान औघड को नही मिलता। उसे आधी दक्षिणा या भिक्षा मिलती है।

गोरखनाथ के भारतवर्ष मे अनेक मठ है। अखाडे, अस्थल, इत्यादि नाम भी प्रयुक्त होते है। स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि योगी सम्प्रदाय शकराचार्य की रीति की भाति ही सगठित रूप धारण करके रहा था। आज मठाधीशो के पास अपार सम्पत्ति है, गॉव के गॉव उनके हाथ लगे हुए है। गोरखपुर के आधुनिक महन्त एक प्रसिद्ध व्यक्ति है। श्री दिग्विजयनाथ राजनीति मे भी भाग लेते है। वे आधुनिक शिक्षा से परिचित है और स्वय सासारिक व्यापारो मे भाग लेते हैं। वे हिन्दू धर्म के सहायक है। अब सम्भवत उनमे यह विद्वेष कम हो गया है क्योकि ब्राह्मण-व्यवस्था स्वय टूट रही है।

यहॉ हम सक्षेप मे योगी के कार्य, भेद, स्थान इत्यादि की झलक देते है

1 भिखारी 'अलख-अलख' पुकारते है, गाते नही।
2 दर्शनी भीख नही मॉगते, जगल आदि मे रहते है।
3 योगी यात्रा मे भिक्षा लेता है, जब भीख नही मिलती, तब धूनी की भस्म पानी मे मिलाकर पी जाता है।
4 बेलगॉव मे स्त्री-पुरुष दोनो भीख मॉगते है।
5 वे सबके हाथ का, या हिन्दुओ के हाथ का, या उच्च जातियो के हाथ का खाते हैं। सब तरह के पाये जाते है।
6 मास, गौमास, शूकर मास, सब खाने वाले तथा उनमे से कुछ भी न खाने वाले भी मिलते है।
7 चावल, साग-भाजी, फल, बकरे का मास, भेड का मास, मछली आदि सब खाते है।
8 कोई गाय को तथा कोई सूअर को पवित्र या अपवित्र समझकर नही खाते।
9 नैपाल, सयुक्त प्रान्त, पजाब, दीनौघर इत्यादि मे धर्मनाथ की परम्परा है। भीख देते है, यह दान वे भीख माँगकर एकत्र करते है इसी से उन्हे भूमि प्रदान की गई।
10 वे सबको खिलाते हैं—उच्च जाति हिन्दुओ को पक्का या बिन पका, नीच जाति को पका, मुसलमानो को बाहर बगीचे मे। जो भूखा हो खा ले।
11 दीनौघर मे अब भी ब्रह्मचर्य-नियम है। अधिकाश मठो मे ब्रह्मचर्य का प्रभाव है। ब्रह्मचारी अधिकाश मठधारी कहलाते हैं।
12 गोरखनाथियो मे कही-कही शाक्त उपासना मिलती है।
13 कहीं-कही वे अपने विवाह मे ब्राह्मणो को भी बुलाते हैं। विवाहित योगी विन्दिनागी, सयोगी और गृहस्थ भी कहलाते है।

14 योगी गृहस्थ की सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए उसके एक पुत्र को योगी बनना आवश्यक है।

15 कुछ जातियाँ जो गोरखनाथियो से सम्बन्ध जोडती है (शिमला पर्वत) श्मशान मे मुर्दा जलाने का काम करती है। इस काम के लिए पैसा लेती है। ये कनफटो मे निम्न कोटि मे गिनी जाती है।

16 पजाब के रावल रास्तो पर गाते-फिरते है। भाग्य बताते है। पहले सम्भवत वे योगी थे।

17 कुल्लू मे सयोग जातीय नाथ है, अम्बाला मे जोगी जातीय पाध, नाभा मे हिन्दू बच्चो को पढाना कार्य है। लहरु मे वे जाटू कहलाते है।

18 सक्षेप मे भिन्न-भिन्न स्थानो पर भिन्न-भिन्न काम करते है। जो निम्न तालिका से स्पष्ट है—

संख्या	स्थान	धर्म	जाति	पथ	कार्य	नाम	विशेषता
1	अम्बाला		नीच	12	नीच कोटि के देवताओ के प्रसाद प्राप्त करना, गाना-बजाना ।	सयोग	
2	कागरा	हिन्दू		अदरला बाहरला	औघड, दर्शनी केवल औघड		कुछ दर्शनी नग्न रहते है ।
3	मध्यप्रान्त		नीच बरवा गारपगारी मनिहारी रीतबिकनाथ पत बिना		तुपार रोकने मे कुशल शीशे-कघे बेचना बम्बई के मूँगे बेचना सन बॅटना गीदड का शिकार करके उसका मास खाना		विधवा विवाह ब्राह्मण पुजारी तलाक-प्रथा
4	बगाल आसाम		नीच	मास्य	जुलाहे, खेतिहर, चूना बनाना, भीख, गदा एकादशी खाना, मुर्दा दफनाना		परस्पर योगियो मे विवाह नही
				कुछ हल्वाह जुगी	अशिक्षित, कुछ सुनार कुछ सरकारी नौकर		

सख्या	स्थान	धर्म	जाति	पथ	कार्य	नाम	विशेपता
5	रगपुर			अब ये जुलाहे नही	गीत गाना		ये शिव गोत्र के कहे जाते है।
6	वृन्दावन मथुरा गोकुल बनारस गया सीताकुण्ड	मास्य योगी इन स्थानो पर पाये जाते है					मास्य अष्ट सिद्ध और आठ शक्तियो के सयोग से, या बनारस के सयासी और वैश्य स्त्री से उत्पन्न
7.	हैदराबाद	पहले मराठा कुनबी थे			विवाहो मे नृत्य गीत	दवरे रावल राउल सिवजोगी कनियालनाथ	कुमारभैरवी अधिकाश भैरव को सर्मपित बच्चे
8.	बम्बई	माली राजपूत	गुजरात मराठा कन्नड कर्नाटक		भैरव उपासना 12 सम्प्रदाय उप	नाथ	

पृष्ठ 251-252 परन्दी गई तालिका से ज्ञात हो जाता है कि उनका आज प्रधान रूप से क्या स्थान है। हमने विशेष कुछ छोड दिया। केवल विशेष तथ्यो की झलक दी है।[1]

स्थान

कनफटा[2] योगी प्रयाग (त्रिवेनी), बनारस (काशी), अजुध्या (अयोध्या), गोदावरी के उद्गम त्रिम्बक, द्वारका, हरद्वार, वदरीनाथ, केदारनाथ, वृन्दावन, पुष्कर, रामेश्वर, दार्जिलिग (सम्भवत कामरूप के निकट) नैपाल और आसाम, काश्मीर मे अमरनाथ, पश्चिम मे हिंगलाज को अपना पवित्र स्थान मानते है। लक्कड बाबा ने मुझे बताया कि हिंगलाज के अधिकारी असल मुसलमान अर्थात् 'मलग' ही हो सकते है। मलग का अर्थ उनके अनुसार ब्रह्म-चारी के समान ही कुछ था।

सिक्किम मे चागचिलिग मठ मे गोरखनाथ की मूर्ति बताई जाती है। पश्चिम नैपाल मे गोरखा नामक स्थान मे एक गुफा-मन्दिर है जो गोरखनाथ का कहा जाता है। लेडन के अनुसार यह गुफा इतनी छोटी है कि मनुष्य घुटनो के बल चल कर ही उसमे प्रवेश कर सकता है। इसी गुफा पर नगर तथा जाति का नाम गुरखा कहा जाता है।

काठमाडू जो 'काष्ठ-मन्दिर' का अपभ्र श समझा जाता है, वहाँ 1600 ई० मे लक्ष्मी-निर्मित गोरखनाथ का एक मन्दिर है। काठमाडू से तीन मील दूर बागमती मे मत्स्येन्द्र का मन्दिर है जिसे गोरखनाथी स्वीकार करते है। यहाँ एक शिव का पशुपतिनाथ का भी मन्दिर है जिसमे कनफटो का आवागमन है। नैपाली शैव, शम्भुनाथ, पशुपतिनाथ इत्यादि के मन्दिर भी मत्स्येन्द्र के नाम से जुडे है। किर्त्तीपुर के भैरव मन्दिर तथा काठमाडू के काल-भैरव के मन्दिर भी प्रभावक्षेत्र मे स्वीकृत है। कागडा ताग पहाड नामक पाषाण मे गोरखनाथ की आत्मा का निवास समझा जाता है। रतननाथ के सवारी-कोट के इस मठ का देवी-पाटन से निकट सम्बन्ध माना जाता है यह स्थान देवी-पाटन के अधिकार मे माना जाता है।

कुमायूँ और गढवाल के पर्वतो मे, भैरव के अनेक मन्दिरो मे कनफटे योगी पाये जाते है। ऐसे स्थानो पर वे योग-सिद्धि किया करते है। गढवाल मे, तथा श्रीनगर मे गोरक्ष शिव का अवतार समझे जाते है। यहाँ कनफटा-मन्दिर है। श्रीनगर के नीचे एक गुफा गोरक्ष की समझी जाती है जिसमे लिंग-योनि स्थापित है और सामने भैरव का मन्दिर है। यहाँ राम के सम्प्रदाय हैं।

---

1 ब्रिग्स की पुस्तक में विस्तारपूर्वक दिया है।

2. वही।

नैनीताल मे नन्दी देवी का मन्दिर है। वही एक भैरव का भी मन्दिर है। वहाँ कनफटो का आवागमन है। वही ब्रिग्स को एक कपलानी पथ का भी योगी मिला था, जो गृहस्थ योगी कुटुम्ब मे जन्मा था। कनफटा योगी मन्दिर मे गणेश, भैरव, योनि, शालिग्राम-लिग इत्यादि भी मिलते है। योगियो की समाधियाँ बहुत होती है। अलमोडे मे भैरव पार्वती के अतिरिक्त बहुत बडे कुण्डल वाली गोरक्ष की भी एक फुट की मूर्ति है। यह सतनाथी है।

द्वारहाट के निकट काम मे धर्मनाथी पीर की गद्दी है। इसे नागनाथ का मन्दिर कहा जाता है। किवदन्ती है कि जब गोरखाली जाति ने अलमोडा जीता, तब उन्होने किला बनाकर अलमोडा नगर की भूमि समतल कर दी।

हरद्वार मे धनी आई-पथी है। दरयापथी मठ मे भी कनफटे रहते है।

सयुक्त प्रान्त मे चुनार दुर्ग मे भरथरी-सम्प्रदाय के योगियो का मन्दिर है। प्रयाग मे गोरखनाथियो का मन्दिर है।

महत्त्वपूर्ण स्थान गोरखपुर, तुलसीपुर और काशी है। बनारस मे वे निर्बल होते जा रहे है। बनारस की लाट उनके हाथ से बिक चुकी है, क्योकि एक महन्त मालिन के प्रेम मे पडकर जुआरी हो गया था।

गोरखपुर का असली मठ अलाउद्दीन ने मसजिद बनवा दिया था। दूसरी बार जो बना, उसे औरगजेब ने मसजिद बनवा दिया। तब बुद्धनाथ ने तीसरा मठ बनवाया है। अन्य स्थानो की अपेक्षा अब भी गोरखनाथी योगी मुसलमानो के बहुत विरुद्ध है। यहाँ मन्दिर मे काली की मूर्ति है। त्रिशूल बहुत रखे है। ये योगी अवश्य योद्धा रहे होगे जिन्होने मुसलमानो का सशक्त विरोध किया होगा।

देवी-पाटन के मन्दिर के पास एक मुसलमान की कब्र पर सूअर का रक्त चढाया जाता है। कहा जाता है मुसलमानो ने गोरक्ष मठ को नष्ट किया था, यह उसका ही प्रतिशोध है।

अनेक मेले इनसे सम्बद्ध है। गगाजल, चदन, चावल, बेल, फूल, दूध आदि समाधियो पर चढाए जाते है।

इनके अतिरिक्त स्यालकोट, बातरा, टकसाल दरवाजा लाहौर, अमृतसर, लभड्वा, बोहर, किरान, पजाब का टिला, नगर थाठ इत्यादि प्रमुख स्थान है।

हिंगलाज मे हिंगलाज देवी, जिसे मुसलमान बीबी नानी कहते और हिन्दू पार्वती आदि कहते है, बहुत महत्त्वपूर्ण पीठ माना जाता है। कहते है पहले एक मुसलमान स्त्री सब को वहाँ मुसलमान बनाती थी। उसका नाम चाण्डाल माई था। उज्जैन मे भरथरी की समाधि है।

आज योगी निस्सन्देह मठाधीश होने के नाते धनवान हैं।

सिद्धान्त और व्यवहार

गोरखनाथियो का कथन है कि वे द्विजो को ही दीक्षा देते है। वैसे शूद्र भी स्वीकृत है। सक्षेप मे हम यहाँ उनके आज के सिद्धान्तो पर प्रकाश डालते है।

चन्द्रनाथ योगी ने अत्यन्त खेद के साथ योगिसम्प्रदायाविष्कृति मे योगियो के पतन के विषय मे लिखा है, कि वे सुस्त, काहिल, झूँठे, धर्मांधविश्वासी, नशेबाज इत्यादि हो गए है। प्रारम्भिक नाथ-पथ मे यह सब नही था।

सच तो यह है कि किसी भी सम्प्रदाय के प्रवर्तक-आचार्य को अपने बाद अपने अनुयायियो के कृत्यो के लिए उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता।

सिद्धान्त रूप मे आज भी गोरक्षनाथ की ही बातो को स्वीकार किया जाता है जिनका हम अनेक स्थलो पर उल्लेख कर चुके है। सिद्धान्त अपने काम मे तभी पूर्ण है जब व्यवहार मे आज उनका कोई प्रभाव पडे। उनका प्रभाव है कि वे भारतीय चिंतन मे जीवित है। किन्तु बाकी राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियो मे उनका कोई महत्त्व दिखाई नही देता।

गोरखनाथियो की सबसे बडी गद्दी पजाब टिला की समझी जाती है। आज अलग-अलग गद्दियाँ, अलग-अलग पथो के हाथ मे है और वे प्राय सब एक-दूसरे से स्वतन्त्र है। मुख्य बडी गद्दियो का प्रभाव अवश्य चलता है। 12 पथो के 12 चुने हुए व्यक्तियो की सस्था भेक बारह पथ कहलाती है जो सारे झगडो को तय करती है। इनमे महन्तो का चुनाव होता है। यह प्रतिनिधि सस्था समझी जाती है। चुनाव प्रति-बारहवे वर्ष कुम्भ-मेला के अवसर पर हरद्वार मे होते है। जो व्यक्ति इस सस्था का प्रधान होता है उसे 1200 रुपये जमा करने पडते है वह जोगेश्वर कहलाता है और समस्त गोरखनाथियो का प्रधान स्वीकार किया जाता है।

गोरखपुर के प्रधान महन्त के चुनाव के बाद उनकी राजगद्दी की जाती है।

दीनौघर के गुरु को पीर कहते है।

ब्रिग्स ने एक किवदन्ती का उल्लेख किया है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। एक बार हिन्दुओ और मुसलमानो मे इस बात पर झगडा हुआ कि इस धरती का मालिक कौन है ? गोरखनाथ ने मुसलमानो के दावे को झूठा साबित करने के लिए एक काम किया। उन्होने अपना भोजन और सामान अपने पास रखा और वे पृथ्वी पर बैठकर पृथ्वी से बोले कि यदि उनका धरती मे कोई हिस्सा हो, तो वह उन्हे स्थान दे। धरती फट गई और गोरख पृथ्वी मे उतर गए। तब से कनफटो मे शव को गाडने की प्रथा चल गई। किन्तु कनफटो के अतिरिक्त भी अन्य योगी सम्प्रदाय हैं जिनमे शव को गाडा ही जाता है।

योगियो मे श्राद्ध नही होता। जब योगी की बरसी मनाई जाती है तब

योगी रात को जागकर देवी के लिए ढोल बजाते है । भोर के पहले पकौडी या खीर या पुलाव बाँटा जाता है । छ या सात गद्दियाँ बनाई जाती है । पीर, जोगिनियो, साख्य, बीर, घन्दारी (गोरखनाथ के रसोईए), गोरखनाथ और नेक के लिए वे स्थान समझे जाते है । मन्त्र बोले जाते है, कपडे, सोने-चाँदी के सिक्के, गाय इत्यादि पीर को दिए जाते हैं । योगियो को भी दान होता है । साख्य को चाँदी, बीर को ताँबा, पीर को गाय तथा गोरक्षनाथ को पानी पहुँचता है ।

योगियो मे विधवा को भी गाडा जाता है ।

इस प्रकार हमने सक्षेप मे देखा कि पथ, सिद्धान्त, स्थान सबके प्रति आज योगियो में वह सब नही रहा है जो प्राचीन काल मे रहा होगा । अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है यह आधुनिक तथ्यो की जानकारी, क्योकि प्राचीनता का आभास अधिकाश इन्ही के आधार से ज्ञात हुआ है । जातियो का यह उत्थान-पतन भारतीय सस्कृति का वास्तविक इतिहास है । साराश के रूप मे हम इतना निश्चय पूर्वक कह सकते है कि योगि-सम्प्रदाय का ब्राह्मण-विरोधी स्वरूप धीरे-धीरे लुप्त हो गया और मुसलमानो ने उन्हे भी कालान्तर मे हिन्दू नाम से ही पुकारा ।

अब एक सिहावलोकन की आवश्यकता है । तथ्यो का जो कुछ साराश निकलता है, उस पर दृष्टिपात करना चाहिए ।

600 ई० से 1100 ई० तक के तीन पक्ष

हमारा आलोच्य काल, जैसा कि पहले कहा जा चुका है 500 वर्षो का एक लम्बा समय है । सब तरह से इसके देखने पर तीन विभाग किए जा सकते है

(अ) शाक्त मत के दृष्टिकोण से—

(1) शाक्त मत की प्रबलता ।

(2) शाक्त मत पर प्रबल प्रहार ।

(3) शाक्त मत के चढकर थमे हुए ज्वार का उतरना । धीरे-धीरे शक्ति क्षीण होने के साथ-साथ निर्बल होते जाना ।

(आ) कौल तथा वज्रयानी दृष्टिकोण से—

(1) बौद्ध मत के ह्रासकालीन रूप का खूब फैलाव मे रहना ।

(2) सहसा उस पर दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रबल प्रहार ।

(3) दार्शनिकता से हीन रूप मे उसका भारतीय होने के कारण अन्य तत्कालीन धर्मों मे अपना सामजस्य खोजना ।

(इ) इस्लाम के दृष्टिकोण से—

(1) पहले व्यापारी के रूप मे आना ।

(2) विजयी और आक्रमणकारी तथा फकीरो के रूप मे आना ।
(3) फकीरो का भारतीयता से प्रभावित होना तथा आक्रमण-कारियो मे जुगुप्सा का बढना ।

(ई) ब्राह्मण धर्म के दृष्टिकोण से—
(1) शाक्त प्रभाव का उस पर छा जाना ।
(2) चौककर विरोध करना ।
(3) और अन्ततोगत्वा बहुत-सी बौद्धमत और अन्य मतो की प्रभावकारी बातो को अपने भीतर मिलाकर शाक्त मतो पर भयानक प्रहार करना और जन-समाज को अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रबल प्रयत्न करना और एक बहुत बडी सीमा तक अपने इस प्रयास मे सफल होना । जातियो को आत्मसात् करके वर्णाश्रम की फिर स्थापना करना ।

(उ) सामन्तवाद के दृष्टिकोण मे—
(1) चक्रवर्ती सम्राट् के मर जाने पर साम्राज्य खण्ड-खण्ड होने पर एक दम स्वतन्त्र हो जाना और अपने को दृढ करना ।
(2) राज्य फैलाना ।
(3) परस्पर गृह-युद्ध करना ।

(ऊ) नाथ-सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से—
(1) सिद्धमत रूप मे अन्य शाक्त मतो से कुछ मिला-जुला-सा रहना ।
(2) गोरख के युग मे अपने को अलग करके अन्य मतो की अच्छाइयाँ लेने का प्रयत्न करते हुए अपनी प्रतिष्ठापना करना ।
(3) अपने विस्तार मे लगना और मत मे निर्बलताएँ रोक पाना ।

(ए) जन समाज के दृष्टिकोण से—
(1) शाक्त युग मे घोर वासना तथा साम्राज्य खण्डित होने पर घबराया-सा रहना ।
(2) घोर धार्मिक विवाद देखना । युद्धो मे अविचलित-सा रहना ।
(3) अपने धर्म को ठीक तरह से निर्णीत करने के प्रयत्न मे पुन. उद्यत होना ।

(ऐ) अन्य धर्मो के दृष्टिकोण से—
(1) ब्राह्मणवाद को खोदने के प्रयत्न मे फैलना ।
(2) फिर सकुचित होकर स्तब्ध रहना ।

(3) और अन्त मे अपनी कमजोरियाँ देखकर भारतीयता के नाते सामाजिक परिस्थितियो मे समझौता करने की चेष्टा मे रत रहना। अपनी रक्षा मे सतर्क रहना।

(ओ) भाषा के दृष्टिकोण से—

(1) सस्कृत और देशभाषाओ का साथ-साथ चलना। धर्म का दोनो मे प्रचार।

(2) सस्कृत का कुछ भारी होना। देशी भाषाओ का जनसमाज मे अधिक फैलना।

(3) निम्न जातियो के हाथ देशी भाषाओ का पलडा भारी होना, धार्मिकता की गद्दी लेने हेतु ब्राह्मण सम्प्रदायो का सस्कृत को पकडे रहना किन्तु देश भाषाओ के महत्त्व को समझना।

(औ) कला के दृष्टिकोण से—

(1) सस्कृत रीति से आच्छन्न रहना। दरबारी सस्कृति का फैलना।

(2) योगी विद्रोह से सस्कृति का एकागी ढगो मे विकीर्ण होना।

(3) उभय पक्ष मे जीवित रहना किन्तु सन्त और योगी हाथो मे जनसमाज के निकट पहुँचने का प्रयत्न करना।

सक्षेप मे यही योगी गोरखनाथ के समय का चित्र है।

भारतीय समाज के दो पक्ष : लोक तथा व्यक्ति

भारतीय समाज को समझने के लिए यह याद रखना आवश्यक है कि यहाँ की धार्मिक साधना के वास्तव मे दो पक्ष रहे है—एक लोक पक्ष, दूसरा व्यक्ति पक्ष। इसलिए कोई भी मत हो यहाँ 'हिन्दू' नाम मे प्रायः सभी धर्मो का इगित हो जाता है। ऐसा विदेशी प्राय एक हजार वर्ष से समझते रहे है। सक्षेप मे इसे यो कहा जा सकता है—एक शिव पक्ष, दूसरा विष्णु पक्ष। शिव पक्ष व्यक्ति पक्ष मे ही प्रधान है। विष्णु पक्ष प्रधानत समाज पक्ष है।

जब आर्यों से आर्येतरो ने प्राचीन काल मे लोहा लिया था तब धीरे-धीरे शिव ने समस्त आर्येतर देवताओ को ग्रस लिया था। सम्पूर्णानन्द ने अपनी गणेश नामक रचना मे दिखाया है कि गणेश कालातर मे शिव के पुत्र कहलाने लगे। प्राचीनतम युग मे वे अलग थे। महाभारत के आरम्भ से अन्त तक आते-आते तो शिव के इतने विराट् रूप की कल्पना है, जो प्राय आत्मसात् करती चली जाती है। मै इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ कि शिव ने आर्येतर तत्त्वो और साधनाओ को अपने भीतर इतनी तत्परता से ग्रस लिया था कि अन्त मे

आर्यो को उन्हे अपनी त्रिमूर्ति मे स्वीकार करना पडा। यहाँ इस विषय पर विचार करना एक विशेष कारण से प्रयोजनीय है। जिस प्रकार अंग्रेजो के आने पर भारत मे आए परिवर्त्तन को तब तक नही समझा जा सकता जब तक आर्यों से लेकर अंग्रेजो तक के इतिहास की आर्थिक व्यवस्था को ठीक तरह नही समझ लिया जाता। इसी तरह गोरक्षनाथ को समझना तब तक असम्भव है जब तक आर्यो से पूर्व से लेकर उनके युग तक की धर्म साधना का एक रेखा-चित्र नही समझ लिया जाता। इसलिए कि हजारो साल के इतिहास का साराश गोरक्षनाथ और शकराचार्य ने निकालकर अलग रख दिया। यदि ये दोनो भारतीय इतिहास मे न होते तो सम्भवत आज भारतवर्ष अपने इस रूप मे नही होता। क्या होता यह विवाद मे समय नष्ट करना होगा।

गोरक्ष का महत्त्व

शिव ने आर्येतर देवताओ में किसी को पत्नी, किसी को पुत्र, वाहन, सारथि, सेवक और न जाने क्या-क्या कहकर स्वीकार कर लिया। आर्य तत्व ने उन्हे भारत की सर्वोच्च जगह कैलाश पर आसन दिया। किन्तु वे फिर भी दो काम नही कर सके। (1) आर्य कल्पना का पालक स्वरूप वे ग्रहण नही कर सके। इसमे उनका विष्णु से युद्ध भारतीय पुराणो मे बिखरा पडा है। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनो मतानुयायियो ने अपनी-अपनी जगह के अतिरिक्त बाहर का स्थान ग्रहण ही नही किया वे दोनो साथ-साथ रहने लगे। (2) शिव ने आर्येतर विश्वासो को ग्रस लिया किन्तु यक्षवाद उनसे छूटा रह गया। वह मत पार्वत्यप्रदेशो मे किसी-न-किसी रूप मे पलता रहा। कालातर में जब उसे समय मिला तब वह फूट निकला। हर्षवर्द्धन के बाद भारत मे एक अद्भुत परिस्थिति पैदा हो गई। उस समय आर्य विश्वास, आर्येतर विश्वास और यक्ष विश्वास सभी आकर इस देश मे फिर फैल गए।

यह केवल अनुमान नही है, भारतीय इतिहास को गहराई से देखने पर यह एक अत्यन्त सरल तथ्य प्रतीत होगा। यहाँ दो बाते प्रकट होती हैं।

(1) आर्य विश्वास मे व्यक्ति-पक्ष आर्येतर विश्वासो का प्रभाव था। आर्य विश्वास उसे पूर्णतया आत्मसात नही कर सका, किन्तु उसने उनकी महानता को विवश होकर स्वीकार कर लिया।

(2) आर्येतर विश्वासो ने, जब आर्य विश्वासो का विचार कौलीन्य उसपर छाया, तब यक्ष विश्वास को भी आत्मसात कर लिया। किन्तु उसने आर्यों की सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार न करते हुए भी अपने को इतना एकागी और व्यक्तिपक्ष पथगामी बना लिया कि आर्य विश्वासो की एक सामाजिक व्यवस्था को वह रोक नही सका।

यह व्यक्तिपक्ष मे शक्ति बना, समाज पक्ष की जगह आर्य विश्वासो ने ले ली। यक्ष प्रभाव को आत्मसात करने की क्षमता, जो शकराचार्य मे नही थी, गोरक्षनाथ मे थी। गोरक्षनाथ इतिहास का कितना महान् व्यक्ति था, कितना अद्भुत कार्य किया था उसने, यह भारतीय सस्कृति की पूरी बहती धारा को देखने पर ही इगित होता है।

सक्षेप मे यही गोरक्षनाथ का महत्त्व था। उसने दार्शनिक रूप मे एकता का पथ उपस्थित कर दिया। अन्य साधनाओ को गौण कर दिया और नीचे के स्तर पर बैठा दिया।

बौद्ध और मुस्लिम

इस युग मे सब से अधिक महत्त्वपूर्ण, बौद्धमत और इस्लाम—इन्ही दो मतो का हाथ है। बौद्धमत अपने हीनयान, महायान, मन्त्रयान, वज्रयान और कालचक्र यान जैसे स्वरूपो को बदलता हुआ अन्त मे यहाँ आकर शक्ति प्रभाव मे बिलकुल डूब गया था। दूसरी ओर इस्लाम यूरोप, अफ्रीका, ईरान इत्यादि देशो मे अपनी नवीन सामाजिक क्रान्ति को फैलाकर, अपनी क्रान्तकारी भावना को समाप्तप्राय कर इस देश मे विजयी के रूप मे घुसने लगा।

भारतवर्ष मे चन्द्रगुप्त मौर्य से हर्षवर्द्धन तक जो भारतीय मध्ययुग का, हिन्दू साम्राज्यो का युग था, वह युग जो गणतन्त्रो की समाप्ति के समय से प्रारम्भ हुआ था बौद्ध प्रभाव मे आकर समाप्त हुआ। इसमे निम्न जातियो ने घोर विद्रोह किया।

इस्लाम के आने पर भारतीय मध्य युग के मुस्लिम साम्राज्यो के काल के प्रारम्भ होन के पूर्व यहाँ उसका प्रभाव पडना प्रारम्भ हो चुका था। बीच के सधिकाल मे बिलकुल बीच मे गोरक्षनाथ है। उनके एक ओर शकर है दूसरी ओर रामानुज।

यह भारतीय सस्कृति का अधकारमय सधियुग इतना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि उसके बिना इतिहास शृखलाबद्ध नही होता। इस युग मे हमारे योगी गोरखनाथ का कार्य है। तब हम देखते है कि गोरखनाथ के नाथ सम्प्रदाय को दो बातो का असर झेलना पडा। बौद्धमत ने निम्न जातियो को उठाने का प्रयत्न किया। दूसरे पक्ष मे इस्लाम ने भी यही प्रभाव डाला।

कबीर और तुलसी

भारतीय इतिहास का यह युग वर्ग सघर्ष का युग है। बौद्धपक्ष मे साधना व्यक्तिवादी हो गई। उत्तर पक्ष मे हिन्दू सगठन हुआ क्योकि मुसलिम विजयी समझौता नही करना चाहते थे, वह ध्वसात्मक बन कर आए थे। इसलिए

वर्णाश्रम के विरुद्ध चलन वाला युद्ध अब जातीयता के युद्ध मे जाकर परिणत हो गया। गोरखनाथ का कार्य उभय पक्ष मे अपना प्रभाव डाल सका। उन्होने समाज को शुद्ध किया। किन्तु व्यक्ति कठिन हो गया। तदनन्तर निम्न जातियो को उन्होने जातीयता मे उठाकर जाति बन्धनो से परे वर्णाश्रम से परे उठने का सकेत किया। किन्तु व्यवस्था ब्राह्मण कृत थी। इस्लाम भी इसीलिए जीवित रह सका क्योकि उसने उसे स्वीकार कर लिया। धार्मिक रूप से अस्वीकार करने के कारण उसका न केवल ब्राह्मणो वरन् अब्राह्मणो ने भी बहिष्कार कर दिया। जो बौद्ध प्रभाव तथा ब्राह्मण प्रभाव के कट्टर विरोधी थे वे इस्लाम मे जा घुसे। इनके भीतर घुसे यक्षवाद को इस्लाम ने ठोक-पीटकर निकाल दिया। गोरक्ष की साधना व्यक्तिगत रही थी, इससे आगे चलकर कबीर जैसे सत हुए जिन्होने एक अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखा। किन्तु उनके चिन्तन का आधार सर्वथा व्यक्तिमार्गी था।

इस बीच मे भक्ति मार्ग की आड मे अब ब्राह्मणवाद फिर जाग्रत हो गया था। इसका ज्वलन्त प्रतीक तुलसीदास है। जिन्होने तत्कालीन समाज मे न केवल सामन्तकालीन व्यवस्था की दुन्दुभि बजाई वरन् 'हिन्दू' शब्द का सगठन किया और आपस मे भेद हटाकर मुसलमानो को दुगनी कट्टरता से छेक दिया। स्मरण रहे उस समय राजनैतिक शक्ति (अकबर) अपने आपको कायम रखने के लिए, यहाँ की सामन्तशाही को खूब लालच और सम्मान दे रही थी। किन्तु ब्राह्मणवाद उससे समझौता करके भी पूर्ण स्वाधीन नही होने के कारण उससे बिलकुल ही सन्तुष्ट हो ऐसा नही कहा जा सकता। विषय बढने वाला है अत आलोचना काल के बाहर होने के कारण इसे यही छोड देना चाहिए। यह एक सत्य है कि गोरक्ष का व्यक्ति तुलसी के समाज पक्ष मे एक अडगा था, तभी तुलसी ने उसके प्रभाव को मिटा देने के लिए कहा था—

बरन धरम गयो आश्रम निवास तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परोसो है।
करम उपासना कुवासना विनास्यो ज्ञान,
वचन विराग वेस जतन हरो सो है।
गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग,
निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है।
काय मन वचन सुभाय तुलसी है जाहि,
राम नाम को भरोसो ताहि को भरोसो है।

(कवितावली उत्तरकाड 84)

गोरख लुप्त

आज का बुद्धिवादी सदैव यह सुनकर अविश्वास करता है कि गोरक्षनाथ सचमुच इतने महान् व्यक्ति थे। इसका कारण है कि इतिहास भारत मे मुख्यत तीन दृष्टिकोणो से लिखे गए है—

(1) ब्राह्मण सत्ताधारियो ने अपने तथा सामतवादी समाज की रक्षा के दृष्टिकोण से।

(2) मुसलमानो ने अपने मत को ऊँचा उठाने के दृष्टिकोण से।

(3) विदेशियो ने, जो या तो जिज्ञासु मात्र या अपना साम्राज्यवादी दृष्टिकोण सामने रखकर जाने या अनजाने हिन्दू और मुसलमानो को अलग-अलग रखने के दृष्टिकोण से।

अब एक नया इतिहास लेखक वर्ग उत्पन्न हो रहा है जो भावावेश मे अपनी निर्बलताओ को छिपाता है या धार्मिक दृष्टिकोण के कारण तथ्य की जगह श्रद्धा से काम लेता है।

कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि इतिहास ने गोरख को किस लिए भुला दिया ? उत्तर है कि गोरख को भुला देने का स्वप्न देखने वाले आज तक उनका प्रभाव मिटाने मे असमर्थ साबित हुए है। गोरखनाथ को ब्राह्मण-वाद ने अपने विरोध मे जानकर पीछे धकेल दिया। ऐसा वह तभी कर सके जब स्वय गोरखनाथ जीवित नही रहे थे। यद्यपि गोरख के कारण अनजाने ही ब्राह्मणवाद को सबसे अधिक लाभ हुआ तथापि जब सन्तकालीन नीच जातियो का विद्रोह एक दम उठ खडा हुआ और कालान्तर मे उसकी कम-जोरियो की राह से ब्राह्मणवाद फिर उच्च वर्गों की विजय के साथ आ घुसा और उन पर छा गया तब उसने एकबारगी अपने प्रभाव को अक्षुण्ण रखने के लिए अपने समस्त प्रतिद्वद्वियो को राह से हटा देना चाहा। चार्वाक के अनुयायियो को बौद्धो के साथ मिलाकर देखने की कट्टरता उसमे पुरानी चीज थी। जिनका सर्बदर्शन सग्रह मे मुखर रूप मे भिन्नत्व दिखाने पर भी अन्यत्र ऐसा वर्णन किया गया है उससे इतनी आशा करना कोई विस्मय की बात नही है।

भूल के कारण

तब यह कहना ठीक ही है कि गोरखनाथ को भुलाने वाले उच्चवर्गीय व्यक्ति थे जिनको गोरख का जाति-पाति विरोध, प्रजा राजा को समानता की दृष्टि से देखने की बात कभी भी रुचिकर नही लग सकती थी। जन-समाज जिसने उस व्यवस्था की विषमता को पहचाना, उसने गोरखनाथ को सदैव अपने सामने रखा। क्या यह एक अद्भुत बात नही है कि जिस व्यक्ति के

नाम पर इस विराट् भूखड मे इतने मठ और मन्दिर है, जिसने सम्पूर्ण नेपाल को बौद्ध से शैव मत मे बदल दिया, जिसने समस्त निर्गुण सम्प्रदाय पर इतना सशक्त प्रभाव डाला, जो हिन्दी साहित्य के आदि-काल का एक सशक्त भाषा प्रचारक था, वह बुद्धियादी वर्ग मे प्राय नही के ही समान ज्ञात है।

ब्राह्मणवाद के अतिरिक्त इसमे एक कारण और था। योगियो का असामाजिक रूप से रहना और इतिहास की ओर अधिक रुचि न रखना, इन सबको सासारिक कहकर व्यर्थ समझना।

तदुपरान्त इस्लाम के भीषण प्रहार ने रहा-सहा काम पूरा कर दिया—जैसे बौद्ध भारत से अपने ग्रन्थो को लेकर तिब्बत चले गए, वैसे ही योगी सम्प्रदाय भी भीषण उथल-पुथल मे अपना वह स्वरूप खो बैठा जिसकी गोरखनाथ ने कल्पना की थी। ऊपर लकीर के फकीरो का वर्णन हो चुका है। हिन्दू और मुसलमान दो वर्गो मे योगी सम्प्रदाय का विभाजित हो जाना, गोरखनाथ के यश रूपी वृक्ष की जड पर सबसे भयानक कुल्हाडा था। इसके औचित्य और अनौचित्य पर हम विवाद नही करना चाहते क्योकि उस समय की समस्त ऐतिहासिक परिस्थिति को सामने रखकर ही इसे समझा जा सकता है, यह बात काफी स्पष्ट है। इस पर विस्तार से जाना एक सरल बात को दुहराने के समान होगा।

सबसे बडी बात थी कि गोरखनाथ का कार्य जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है अपने आप मे इतना कठिन और दुरूह तथा जटिल था कि वैज्ञानिक ढग से समाज का विश्लेषण न कर सकने मे उसके महत्त्व को समझ लेना भी कठिन ही था, और फिर, गोरखनाथ जो सिद्धान्त या रूप लेकर चले थे क्योकि वह वही स्थिर नही हुआ बल्कि उसने अपना ऐतिहासिक कार्य किया और वह निरन्तर भारतीय विचार-धारा मे अपना विकास करता रहा। कुछ दिन के बाद उसकी आवश्यकता ही नही रह गई।

भातीय संस्कृति की धारा

अत हमने यह स्पस्ट रूप से देखा कि जिसे भारतीय सस्कृति कहा जाता है वह किसी मत विशेष की अपनी सकुन्वित सीमा नही। इसमे अनेक मत उठते है, फैलते है, विखर जाते हैं, या फिर सकुचित होकर लय और लुप्त हो जाते है। इसमे कीर्ति और यश मिलना जितना कठिन है उससे अधिक उसका बना रहना है। विराट् है यह देश, नाना रूप है इसके जीवन का व्यापार, अत किसी का भुला दिया जाना कोई विस्मय की बात नही है। जब अश्वघोष जैसे बौद्ध और स्वयभू जैसे जैन कवियो को यहाँ लोग भूल सकते हैं तब गोरखनाथ को ही भूल जाना क्या आश्चर्य की बात है। किन्तु सत्य

यह नही है। सस्कृति की धारा मे अपना कार्य कर चुकने के बाद भी जो गोरख के नाम पर मन्दिर, मठ, अस्थल और अखाडे है उनके बचे रह जाने का क्या कारण है ? ऊपर हम देख चुके है कि यह मन का प्रताप था। इसके अतिरिक्त एक और कारण है। भारतीय सस्कृति की धारा मे जो योग धमनी मे बहते रक्त के समान व्याप्त है, वही इसके लिए उत्तरदायी है, अपनी समस्त निर्बलताओ के होते हुए भी यह अत्यन्त तीव्र प्यास रही है और उसकी ओर लोग समय-समय पर आकर्षित होते रहे है, इस आकर्षण का केन्द्र भारतीय समाज व्यवस्था, विदेशियो के शब्दो मे यहाँ की जलवायु का परिणाम है।

मेरा विचार है कि यह रहस्य की भावना ही भारत मे ब्राह्मणवाद को जीवित रखने के लिए उत्तरदायी है। सब कुछ झूँठ कहकर, शरीर मे ही ब्रह्माण्ड रखकर, उमी मे ब्रह्म को सत्य मानकर जो सस्कृति पृथ्वी और काल की अवधि को आज से सहस्र वर्ष पूर्व खडित और दूसरे पक्ष मे एकत्र कर खडी हुई वह कितनी सशक्त थी और कितनी निर्बल थी यह आगे की सदियो ने प्रकट किया और इस सस्कृति का ही एक अगु थे गोरक्षनाथ।